प्रस्तावना ।

नावद्गर्जन्ति शास्त्राणि जंबुका विपिने यथा ।
न गर्जंति महाशक्तिर्यावद्वेदांतकेसरी ॥ १ ॥

हे मुमुक्षुहितेच्छु आत्मज्ञानी महाशयो ! आपही लोगोंके प्रसन्नताके लिये इस परमोपयोगी अलभ्य अमूल्य रत्नरूप पुस्तकका प्रादुर्भाव कियागया है, इस ग्रंथमें विविधप्रकारकी प्रक्रियाएँ आत्मज्ञानके लाभार्थ लिखीहैं और न तो द्वेषभावसे किसी भी मार्गकी निंदा लिखीहै तद्वत न पक्षपात करके किसीभी पंथका मण्डन है केवल साररूप वस्तु जो आत्मज्ञान है उसीको अनेकानेक उक्ति प्रत्युक्तिद्वारा सिद्ध किया है प्रस्तुत पुरुषमात्रके धर्म कर्मसंबंधी जो अनेक प्रकारकी शंकाएँ हृदयमें उत्पन्न होतीहैं वह सब इसके पठन श्रवणसे नाशको प्राप्त होंगी । यह एकही ग्रंथ ऐसा उत्तमोत्तम है कि, जो कोई मोक्षकी इच्छा रखनेवाले पुरुष इसको भली प्रकार विचारेंगे वे अल्पसमयमेंही अपने स्वरूपको अच्छी तरहसे जानेंगे फिर उनको मोक्षमार्गके अवलोकनार्थ किसीभी दूसरे पुस्तकके देखनेकी अपेक्षा न होगी-क्लिष्टविषय, सुबोध होनेके कारणका यह ग्रंथ पाठकोंके समझमें यथावत् आजाय इसलिये इसकी टीका अत्यंतही सुगम सरलरीतिके अनुसार ग्रंथकर्ताने स्वयं की है इस ग्रंथके अनुकरणसे बहुत विद्वान् वेदांतकी प्रक्रियाओंको जानकर ब्रह्मनिष्ठताको प्राप्त हुये हैं. अत एव यह सर्वमान्य ग्रंथ सब जिज्ञासुजनोंके लाभार्थ प्रकाशित कियाहै.

आपका—कृपाकांक्षी—

खेमराज श्रीकृष्णदास "श्रीवेङ्कटेश्वर" यन्त्रालयाध्यक्ष—बंबई.

श्रीविचारसागरप्रारंभः।

प्रथमस्तरङ्गः १.

अनुबन्धसामान्यनिरूपण।

वस्तुनिर्देशरूप मंगल।

दोहा—जो सुख नित्य प्रकाश विभु, नाम रूप आधार ॥
मति न लखै जिहिं मति लखै, सो मैं शुद्ध अपार॥१॥
अब्धि अपार स्वरूप मम, लहरी विष्णु महेश ॥
विधि रवि चंदा वरुण यम, शक्ति धनेश गणेश॥२॥
जो कृपालु सर्वज्ञको, हिय धारत मुनि ध्यान ॥
ताको होत उपाधिते, मोमैं मिथ्या भान ॥३॥
है जिहिं जाने बिन जगत, मनहु जेवरी साँप ॥
नशै भुजग जग जिहिं लहै, सोऽहं आपै आप ॥४॥
बोध चाहि जाको सुकृति, भजत राम निष्काम ॥
सो मेरो है आतमा, काकूं करूं प्रणाम ॥५॥
भरचो वेद सिद्धांत जल, जामैं अतिगंभीर ॥
अस विचारसागर कहूं, पेखि मुदित ह्वै धीर ॥६॥
सूत्र भाष्य वार्तिक प्रभृति, ग्रंथ बहुतसुखानि ॥
तद्यपि मैं भाषा करूं, लखि मतिमंद अजानि ॥७॥

टीका—यद्यपि सूत्र भाष्य, वार्तिकसे प्रभृति कहिये आदि
सुरवानि कहिये संस्कृतग्रंथ बहुत हैं, तथापि संस्कृतग्रंथोंसे मंदबु
पुरुषोंको बोध नहीं होवे, और भाषाग्रंथोंसे मंदबुद्धि पुरुषोंको
बोध होवै है; यातैं भाषाग्रंथका आरंभ निष्फल नहीं किंतु संस्कृ
ग्रंथनके विचारनेमें जिनकी बुद्धि समर्थ नहीं है, उनके निमित्त ग्रं
का आरंभ सफल है ।

दोहा ।

कविजनकृत भाषा बहुत, ग्रंथ जगतविख्यात।
बिन विचारसागर लखे, नहिं संदेह नशात ॥

टीका—यद्यपि भाषाग्रंथ बहुत हैं, तथापि विचारसागर
और भाषाग्रंथोंसे आत्मवस्तुमें संदेह दूर नहीं होता. इसमें
हेतु है कि, कितने तौ श्रवण करिके भाषाग्रंथ रचे हैं, जैसे पंचभ
हैं, तिनकी प्रक्रिया किसी अंशमें तौ शास्त्रके अनुसार है; औ
श्रवण किया अर्थ यथार्थ ग्रहण नहीं हुआ, उस अंशमें शास्त्रसे
है. यासे श्रोता कृत ग्रंथसे संदेहरहित बोध नहीं होता. और क
भाषाग्रंथ किंचित् शास्त्र पढकर रचे हैं जैसे "आत्मबोध" है उनसे
भी संदेह रहित बोध होवै नहीं. क्योंकि तिनमें वेदांतकी प्रक्रि
संपूर्ण नहीं है. और विचारसागर ग्रंथमें संपूर्ण प्रक्रिया है, और
दांतशास्त्रके अनुसार है काहू स्थानमें भी विरुद्ध नहीं है.
आत्मज्ञानमें उपयोगी जो पदार्थ हैं तिनका निरूपण विस्तारसे
या है; यातैं और भाषाग्रंथोंके समान यह ग्रंथ नहीं है, किं
भाषाग्रंथों में यह ग्रंथ उत्तम है ।

चौपाई।

नहिं अनुबंध पिछानै जौलौं। ह्वै न प्रवृत्त सुघर नर तौलौं ॥
जानि जिनै यह सुनै प्रबंधा। कहूं ब याते ते अनुबंधा ॥ ९ ॥

टीका—अधिकारी, संबंध, विषय, प्रयोजनका नाम अनुबंध है. अधिकारी आदि ग्रंथके अनुबंध जाने विना सुघर कहिये विवेकी पुरुषोंकी ग्रंथमें प्रवृत्ति होती नहीं, यासे जिन अनुबंधोंको जानिकै प्रबंध कहिये ग्रंथोंको सुनै, तिन अनुबंधोंको ब कहिये अब कहूं हूं ॥ ९ ॥

सोरठा।

अधिकारी संबंध, विषय प्रयोजन मेलि चव ॥
कहत सुकवि अनुबंध, तिनमें अधिकारी सुनहु ॥ १० ॥

दोहा।

मल विछेप जाके नहीं, किंतु एक अज्ञान ॥
ह्वै चवसाधन सहित नर, सो अधिकृत मतिमान ॥ ११ ॥

टीका—अंतःकरणमें तीन दोष होते हैं—एक तो मल होता है, दूसरा विक्षेप होता है और तीसरा आवरण होता है. निष्कामकर्मसे अंतःकरणका मलदोष दूरि होता है, उपासनासे विक्षेपदोष दूरि होता है, ज्ञानसे आवरणदोष दूरि होता है जिस पुरुषने निष्कामकर्म और उपासना करिके मल और विक्षेप दोष दूरि किये हैं और एक अज्ञान कहिये स्वरूपका आवरण जाके चित्तमें होवे और चिरसाधनसंयुक्त होवे सो पुरुष अधिकृत कहिये अधिकारी है॥ १०॥ ११॥

अथ साधनचतुष्टयनाम वर्णन-दोहा।

प्रथम विवेक विराग पुनि, शमादि षट् संपत्ति ॥
कही चतुर्थ मुमुक्षुता, ये चव साधन सत्ति ॥ १२ ॥

अथ विवेकलक्षण-दोहा।

अविनाशी आतम अचल, जग जाते प्रतिकूल ॥
ऐसो ज्ञान विवेक है, सब साधनको मूल ॥ १३ ॥

टीका—आत्मा, अविनाशी कहिये नाशरहित है और अचल कहिये क्रियारहित है और जगत् आत्माते प्रतिकूल कहिये विपरीतस्वभाववाला विनाशी है, और चल है, इस ज्ञानका नाम विवेक है. यह विवेकही सर्वसाधनका मूल है. काहेतें, प्रथम विवेक होवै तो वैराग्यसे आदिलेके उत्तरसाधन होवैं हैं. और विवेक नहीं होवै तो उत्तरसाधन होवैं नहीं. यातैं वैराग्य शमादि षट्संपत्ति, मुमुक्षुता; इनका विवेक हेतु है ॥ १२ ॥ १३ ॥

अथ वैराग्य लक्षण-दोहा।

ब्रह्मलोकलौं भोग जो, चहै सबनको त्याग ॥
वेद अर्थ ज्ञाता मुनी, कहत ताहि वैराग ॥ १४ ॥

अथ शमादि षट्नाम दोहा।

शम दम श्रद्धा तीसरी, समाधान उपराम ॥
छठी तितिक्षा जानिये, भिन्न भिन्न यह नाम ॥ १५ ॥

१—इसजगे षट्शमादि संपत्ति यह पाठ उत्तम है।

अथ शम दम लक्षण-दोहा।

मन विषयनते रोकनों, शम तिहिं कहत सुधीर॥
इंद्रियगणको रोकनों, दम भाषत बुधवीर॥ १६॥

अथ श्रद्धा समाधान लक्षण-दोहा।

सत्य वेद गुरु वाक्य है, श्रद्धा अस विश्वास॥
समाधान ताकूं कहत, मन विछेपको नाश॥ १७॥

अथ उपरामलक्षण।

चौपाई-साधनसहित कर्म सब त्यागै।
लखि विष सम विषयनते भागै॥
हग नारि लखि ह्वै जिय ग्लाना।
यह लक्षण उपराम बखाना॥ १८॥

अथ तितिक्षालक्षण-दोहा।

आतप शीत क्षुधा तृषा, इनको सहनस्वभाव॥
ताहि तितिक्षा कहत हैं, कोविद मुनिवरराव॥ १९॥
शमादिषट् संपत्तिको, भाषत साधन एक॥
इम नव नहिं साधन भनै, किंतु चारि सविवेक॥ २०॥

टीका-शमादि षट्क जो संपत्ति कहिये प्राप्ति सो एक साधन करिके गिनियें है, यातैं नवसाधन नहीं. किंतु सविवेक कहिये विवेकी जन चारसाधन कहैं हैं॥ २०॥

अथ मुमुक्षुतालक्षण-दोहा।

ब्रह्मप्राप्ति अरु बंधकी, हानि मोक्षको रूप॥
ताकी चाह मुमुक्षुता, भाषत मुनिवरभूप॥ २१॥

टीका—ब्रह्मकी प्राप्ति और अनर्थकी निवृत्ति, मोक्षका स्वरूप है. ताकी इच्छाका नाम मुमुक्षुता है. मुमुक्षुताका मुमुक्षुत्व पर्यायशब्द है ॥ २१ ॥

दोहा ।

ये चव साधन ज्ञानके, श्रवणादिक त्रय मेलि ॥
तत्पद त्वंपद अर्थको, शोधन अष्टम मेलि ॥ २२ ॥

टीका—विवेकादिक चार, श्रवण, मनन, निदिध्यासन ये तीनि तत्पदके अर्थका और त्वंपदके अर्थका शोधन; ये आठ ज्ञानके साधन हैं ॥ २२ ॥

दोहा ।

अंतरंग ये आठ हैं, यज्ञादिक बहिरंग ॥
अंतरंग धारे तजै, बहिरंगनको संग ॥ २३ ॥

टीका—पूर्वदोहेमें कहे विवेकादिक आठ अंतरंगसाधन कहाते हैं और यज्ञादि कर्म बहिरंगसाधन कहाते हैं. उनमें बहिरंगोंको जिज्ञासु त्यागै और अंतरंगोंको धारै. जिनका श्रवणमें अथवा ज्ञानमें प्रत्यक्ष फल होवै सो अंतरंग साधन कहियें हैं. विवेकादिक चारिका श्रवणमें उपयोग हैं. काहेतें, विवेकादिक विना बहिर्मुखको श्रवण बनै नहीं. तैसे श्रवण, मनन निदिध्यासनका ज्ञानमें उपयोग है; श्रवणादिक विना ज्ञान होता नहीं तैसे तत्पदका अर्थ और त्वंपदका अर्थ जाने विना भी अभेदज्ञान होता नहीं, इसरीतिसे विवेकादिक चारसाधनोंका श्रवणमें उपयोग है. और श्रवणा-

दिक चारिसाधनोंका ज्ञानमें उपयोग है. यातैं आठ अंतरंग साधन हैं।

जिसका ज्ञानमें अथवा श्रवणमें प्रत्यक्षफल नहीं होता किंतु अंतःकरणकी शुद्धि जिसका फल होवै सो ज्ञानका बहिरंगसाधन कहाता है. ऐसे यज्ञादिक कर्म हैं. यद्यपि यज्ञादिक कर्म संसारके साधन हैं, तिनते अंतःकरणकी शुद्धिभी कहना संभव नहीं. तथापि सकामपुरुषको संसारके हेतु हैं और निष्कामको अंतःकरणकी शुद्धिके हेतु हैं. इसरीतिसे निष्कामपुरुषके अंतःकरणकी शुद्धिद्वारा ज्ञानके हेतु हैं, यातैं बहिरंगसाधन कहियें हैं, और विवेकादिक अंतरंगसाधन कहियें हैं. बहिरंग नाम दूरिका है, और अंतरंग नाम समीपका है. यज्ञादिक कर्म और उनके साधन स्त्री, धन, पुत्रादिकोंको त्यागै; सो ज्ञानका अधिकारी है, ज्ञानके अधिकारीमें यज्ञादिक संभवैं नहीं, यातैं दूरि हैं।

विवेकादिक ज्ञानके अधिकारीमें संभवैं हैं, यातैं समीप हैं. उनमें भी इतना भेदहै. विवेकादिकनका श्रवणमें उपयोग है, और श्रवणादिकोंका ज्ञानमें उपयोगहै, यातैं विवेकादिकोंकी अपेक्षासे श्रवणादिक अंतरंग हैं. तिनकी अपेक्षाते विवेकादिक बहिरंग हैं. यद्यपि विवेकादिकभी ज्ञानके अंतरंगसाधनही सर्वग्रंथोंमें कहे हैं बहिरंग नहीं कहे. तथापि विवेकादिकोंका ज्ञानके साधन श्रवणमें प्रत्यक्षफल है. और श्रवणादिकोंके सदृश विवेकादिक जिज्ञासुको उपादेय हैं यज्ञादिकोंके समान जिज्ञासुको हेय नहीं, यातैं अंतरंग कहे हैं. और यज्ञादिकनकी अपेक्षाते भी अंतरंग हैं, यातैं भी अंतरंग साधनोंमें कहे हैं।

और विचारसे देखिये तो ज्ञानके मुख्य अंतरंगसाधन (तत्त्वमसि) आदि महावाक्य हैं, श्रवणादिक भी नहीं काहेतें युक्तिसे वेदांत वाक्यों का तात्पर्य निश्चय श्रवण कहिये है. जीवब्रह्मके अभेदकी साधक और भेदकी बाधक युक्तियोंसे अद्वितीय ब्रह्मका चिंतवन मनन कहिये है, अनात्माकारवृत्तिका व्यवधानरहित ब्रह्माकारवृत्तिकी स्थिति, निदिध्यासन कहिये है। निदिध्यासनकी परिपाक अवस्थाकोही समाधि कहैं हैं। यातें समाधिका भी निदिध्यासनमें अंतर्भावहै पृथक् साधन नहीं, ये श्रवण मनन निदिध्यासन ज्ञानके साक्षात् साधन नहीं, किंतु, बुद्धिके दोष जो असंभावना और विपरीत भावना ताके नाशक हैं संशयको असंभावना कहतेहैं. विपर्ययको विपरीतभावना कहैं हैं।

श्रवणसे प्रमाणका संदेह दूरि होता है, और मननसे प्रमेयका संदेह दूरि होता है. वेदांतवाक्य अद्वितीय ब्रह्मके प्रतिपादक हैं, अथवा अन्य अर्थके प्रतिपादक हैं ऐसा प्रमाणमें संदेह होवै सो श्रवणसे दूरि होता है. और जीवब्रह्मका अभेद सत्य है, अथवा भेदसत्य है ? ऐसे प्रमेयमें संदेह होवै सो मननसे दूरि होवै है. देहादिक सत्य हैं और जीवब्रह्मका भेद सत्य है; ऐसे ज्ञानको विपरीतभावना कहैं हैं. उसीको विपर्यय कहैं हैं; उसको निदिध्यासन दूरि करै हैं. इसरीतिसे श्रवणादिक तीनों असंभावना और विपरीतभावनाके नाशक हैं. और असंभावना और विपरीतभावना ज्ञानके प्रतिबंधक हैं. यातें ज्ञानका जो प्रतिबंधक ताके नाश द्वारा श्रवणादिक ज्ञानके हेतु कहियें हैं; साक्षात हेतु नहीं।

ज्ञानके साक्षात्साधन श्रोत्रसंबंधि वेदांतवाक्य हैं. सो वेदांत वाक्य दो प्रकारके हैं. एक अवांतरवाक्य हैं, एक महावाक्य हैं, परमात्माके अथवा जीवके स्वरूपका बोधक जो वाक्य सो अवांतरवाक्य कहिये हे जीवपरमात्माकी एकताबोधक वाक्य, महावाक्य कहियेहै. अवांतरवाक्यसे परोक्ष ज्ञान होता है, महावाक्यसे अपरोक्ष ज्ञान होता है. "ब्रह्म है" इस ज्ञानकूं परोक्षज्ञान कहें हैं "ब्रह्म मैं हूं" इस ज्ञानकूं अपरोक्षज्ञान कहें हैं. "त्वं ब्रह्म" ऐसा आचार्यने उच्चारण किया जो वाक्य तिसका श्रोताके कर्णसे संबंध होतेही "मैं ब्रह्म हूं" ऐसा अपरोक्षज्ञान श्रोताकूं होवे है. और श्रोताके कर्णसे वाक्यका संबंध हुए विना ज्ञान होवे नहीं. यातैं श्रोत्रसंबंधी वाक्यही ज्ञानका हेतु है. श्रोत्रसंबधी अवांतरवाक्य परोक्षज्ञानका हेतुहै. और श्रोत्रसंबंधी महावाक्य अपरोक्षज्ञानका हेतु है. महावाक्यसे सर्वकूं अपरोक्षही ज्ञान होवै है. परोक्ष नहीं होता।

और एकदेशीका यह मत है—श्रवण, मनन, निदिध्यासन सहित वाक्यसे अपरोक्षज्ञान होवे है. केवल वाक्यतैं परोक्षज्ञान होवै है; अपरोक्ष नहीं. जो केवल वाक्यतेही अपरोक्षज्ञान होवे तो श्रवण मनन निदिध्यासन व्यर्थ होवैंगे। यद्यपि सिद्धांतमतमें केवल वाक्यते अपरोक्षज्ञान होवैहै और श्रवणादिकोंसे असंभावना विपरीतभावनाका नाश होवे है, यातैं श्रवणादिक व्यर्थ नहीं, तथापि जो वस्तुका अपरोक्षज्ञान होवै ताके विषे असंभावना विपरीतभा-

वना किसीको भी होवे नहीं. यातें केवल वाक्यते अपरोक्षज्ञानवा-दीके सिद्धांतमें "तत्त्वमसि" आदिक वाक्योंसे अपरोक्षज्ञान ब्रह्मका होनेसे पीछे असंभावना विपरीतभावना संभवै नहीं. यातें श्रवणा-दिक साधन व्यर्थ होवैं गे। और केवल वाक्यते परोक्षज्ञान होवैहै, श्रवण मनन निदिध्यासन कियेते अपरोक्षज्ञान होवै है. या मतमें श्रवणादिक व्यर्थ नहीं यह बहुत ग्रंथकारोंका मत है, तथापि यह मत समीचीन नहीं काहेतैं—

शब्दका यह स्वभाव है—जो वस्तु व्यवहित होवै ताका शब्दसे परोक्षही ज्ञान होवै है, किसीप्रकारते व्यवहित वस्तुका शब्दसे अप-रोक्षज्ञान होवै नहीं. जैसे व्यवहितस्वर्गका और इंद्रादिक देवोंका शास्त्ररूपी शब्दते परोक्षही ज्ञान होवैहै और जो वस्तु अव्यवहित होवै ताका शब्दसे अपरोक्षज्ञान और परोक्षज्ञान दोनों होते हैं जहां अव्यवहितवस्तुकूं शब्द अस्तिरूपते बोधन करै तहां अव्यवहितका भी परोक्षज्ञान होवैहै; जैसे "दशम पुरुष है" इसरीतिसे अस्तिरूपते बोधन किया जो अव्यवहित दशम ताका शब्दसे परोक्षही ज्ञान हुवा है और जहां अव्यवहितवस्तुकूं "यह है" इसरीतिसे शब्दबोधन करै तहां अव्यवहितका शब्दसे अपरोक्षज्ञानही होवै है परोक्ष नहीं, जैसे "दशवाँ तूँ है" इसरीतिसे शब्दने बोधन किया जो दशवाँ, ताका अपरोक्षज्ञानही हुवा है, तैसे ब्रह्म सर्वका आत्मा होनेते अत्यंत अव्यवहित है; ताकूं अवांतरवाक्य अस्तिरूपतैं बोधन करैं हैं यातैं अव्यवहितब्रह्मकाभी अवांतरवाक्यते परोक्षज्ञान होवै है, और "दशवाँ तँ है" इस वाक्यकी सदृश श्रोताका आत्म-

रूप करिकै ब्रह्मकूं महावाक्य बोधन करै है. यातैं महावाक्यते अव्यवहितब्रह्मका परोक्षज्ञान संभवै नहीं, : किंतु अपरोक्षज्ञानही होवै है।

और जो कह्या—"जा वस्तुका अपरोक्षज्ञान होवै ताके विषे असंभावना विपरीतभावना होवैं नहीं. यातैं श्रवणादिक विफल होवैंगे" सो शंका बनै नहीं. काहेतें जैसे राजाकूं भर्छुका नेत्रसे अपरोक्षज्ञान हुवेते भी विपरीतभावना दूरि हुई नहीं; तैसे महावाक्यते ब्रह्मका अपरोक्षज्ञान होवैहै; परंतु जाकी बुद्धिमें असंभावना विपरीतभावना दोष होवैं, ताका दोषरूप कलंकसहित ज्ञान फलका हेतु नहीं; दोषकी निवृत्तिवास्ते श्रवणादिक करै. जाकी बुद्धिमें दोष नहीं सो न करै. इसरीतिसे ज्ञानके साधन महावाक्य हैं श्रवणादिक नहीं; परंतु ज्ञानका प्रतिबंधक जो दोष है. ताके नाशक हैं यातैं श्रवणादिक ज्ञानके हेतु कहिये हैं; श्रवणादिकोंके हेतु विवेकादिक हैं. यातैं विवेकादिक ज्ञानके साधन कहियें हैं; विवेकादिक चारिसाधनसंयुक्त जो पुरुष है सो अधिकारी है ॥ २३ ॥

अथ संबंधवर्णन—दोहा।

प्रतिपादक प्रतिपाद्यता, ग्रंथ ब्रह्म संबंध ॥
प्राप्य प्रापकता कहतहैं, फल अधिकृतको फंद ॥ २४ ॥

टीका—ग्रंथका और विषयका प्रतिपाद्य प्रतिपादकभाव संबंध है, ग्रंथ प्रतिपादक है, और विषय प्रतिपाद्य है, जो प्रतिपादन करनेवाला होवै सो प्रतिपादक कहिये है. जो प्रतिपादन

करनेकूं योग्य होवै सो प्रतिपाद्य कहिये है; अधिकारीका और फलका प्राप्यप्रापकभाव संबंध है, फल प्राप्य है और अधिकारी प्रापक है. जो वस्तु प्राप्त होवै सो प्राप्य कहिये है, जाकूं प्राप्त होवै सो प्रापक कहिये है; अधिकारीका और विचारका कर्तृकर्त्तव्यभावसंबंध है अधिकारी कर्त्ता है और विचार कर्तव्य है; जो करनेवाला होवै सो कर्त्ता कहिये है और करनेयोग्य होवै सो कर्त्तव्य कहिये है. ग्रंथका और ज्ञानका जन्यजनकभावसंबंधहै, विचारद्वारा ग्रंथ ज्ञानका जनक है; और ज्ञान जन्य है, जो उत्पत्ति करनेवाला होवै सो जनक कहिये है; जाकी उत्पत्ति होवै सो जन्य कहिये है इससे आदिलेके और भी संबंध जानि लेने॥ २४॥

अथ विषयवर्णन-दोहा।

जीवब्रह्मकी एकता, कहत विषय जन बुद्धि ॥
तिनको जे अंतर लहैं, ते मतिमंद अबुद्धि ॥ २५ ॥

टीका-जीवब्रह्मकी एकता इस ग्रंथका विषय है. जो प्रतिपादन करिये, सो विषय कहिये है, या ग्रंथविषे जीवब्रह्मकी एकता प्रतिपादन करिये है, यातैं सो एकता ग्रंथका विषय है सो एकता सर्व वेदके वचन प्रतिपादन करैं हैं, याते जीवब्रह्मका भेद कहैं हैं, ते पुरुष शठ हैं और वेदके विरोधी हैं ॥ २५ ॥

अथ प्रयोजनवर्णन-दोहा।

परमानंद स्वरूपकी, प्राप्ति प्रयोजन जानि ॥
जगत समूल अनर्थ पुनि, है ताकी अतिहानि ॥ २६ ॥

टीका—प्रपंचका कारण जो अज्ञान और प्रपंच, जन्म मरणरूपी दुःखका हेतु है; यातें अनर्थ कहियेहै; ता अनर्थकी निवृत्ति और परमानंदकी प्राप्ति मोक्ष कहिये है सो ग्रंथका परमप्रयोजन है और अवांतरप्रयोजन ज्ञान है. जाविषे पुरुषकी अभिलाषा होवै सो परम-प्रयोजन कहिये है; और ताकूं पुरुषार्थ भी कहिये है सो अभिलाषा दुःखकी निवृत्तिविषे और सुखकी प्राप्तिविषे सर्व पुरुषनकी होवे है;सोई मोक्षका स्वरूपहै यातें परमप्रयोजन मोक्ष है और ज्ञान नहीं है, काहेतें सुखकी प्राप्ति और दुःखकी निवृत्तिका साधन तौ ज्ञान है और सुखकी प्राप्ति वा दुःखकी निवृत्तिरूप ज्ञान नहीं, यातें अवांतरप्रयोजन ज्ञान है, जा वस्तुद्वारा परमप्रयोजनकी प्राप्ति होवै सो अवांतर-प्रयोजन कहिये हैं; ऐसा ज्ञान है; काहेतें ग्रंथकारिके ज्ञानद्वारा मुक्तिरूप परमप्रयोजनकी प्राप्ति होवै है; यातें ज्ञान अवांतरप्रयोजन है ॥ २६ ॥

शंकापर्वक उत्तरका कवित्त।

जीवको स्वरूप अतिआनँद कहत वेद,
ताकूं सुखप्राप्तिको असंभव बखानिये।
आगे जो अप्राप्तवस्तु ताकी प्राप्ति संभवत,
नित्यप्राप्त वस्तुकी तौ प्राप्ति किम मानिये॥
ऐसी शंका लेश आनि कीजे न विश्वास हानि,
गुरुके प्रसादतैं कुतर्क भले भानिये।

करको कंकन खोयो ऐसो भ्रम भयो जिहिं
ज्ञानतैं मिलत इमि प्राप्तप्राप्ति जानिये ॥ २७ ॥

टीका—पूर्व कह्या था "अनर्थकी निवृत्ति, और परमानंदकी प्राप्ति ग्रंथका प्रयोजन है" सो बनै नहीं. काहेतैं सर्व वेद जीवकूं परमानंदस्वरूप वर्णन करैं हैं, और तुम अंगीकार भी करो हो और जो वस्तु अप्राप्त होवै, ताकी प्राप्ति संभवै है, सदा प्राप्तवस्तुकी प्राप्ति सर्वथा बनै नहीं. यातैं सदापरमानंदस्वरूप आत्माकूं परमानंदकी प्राप्ति कहना सर्वप्रकार करिकै असंभव है; ऐसी कोऊ शंका करै है.

ता शंकाकूं सुनिके ग्रंथके प्रयोजनमें विश्वास दूरि नहीं करना; किंतु आत्मविद्याके उपदेश करनेवाला जो गुरु है, तिनकी कृपातैं शंकारूपी जो कुतर्क है सोदृष्टांतसे दूरि करि देना. सो दृष्टांत कहिये है—जैसे काहूके हाथमें कंगन होवै, ताकूं ऐसा भ्रम होजावै कि "मेरे हाथका कंगन खोय गया." तब वाकूं किसीके कहेसे कंकनका ऐसा ज्ञान होजावै जो "मेरा कंगन हाथमें है;" तब वह ऐसे कहै है— " मेरा कंगन मिल गया है. " इसरीतिसे प्राप्त जो कंगन है, ताकी भी प्राप्ति कहिये है. तैसे परमानंदस्वरूप आत्माविषे अविद्याके बलसे ऐसी भ्रांति होवै है—"आत्मा परमानंदस्वरूप नहीं है; किंतु, परमानंदस्वरूप ब्रह्म है. ता ब्रह्मका और मेरा वियोग होय गया है; उपासना करिकै ता ब्रह्मकूं मैं प्राप्त होऊँगा." इसरीतिकी भ्रांति बहुत मूर्खप्राणि-

योंको होइ रही है. यद्यपि बहुत पंडित भी ऐसे कहैं हैं, तथापि वे मूर्खही हैं. काहेतें जो जीवब्रह्मका वियोग अंगीकार करैं हैं ते मूर्ख कहियें हैं तिन पुरुषनकूं उत्तमसंस्कारसे जो कदाचित ब्रह्मज्ञानी आचार्यसे वेदांतग्रंथके श्रवणकी प्राप्ति होय जावै, तब सुने अर्थकूं निश्चयकरिके कहैं हैं—"परमानंद हमारेकूं ग्रंथ और आचार्यकी कृपासे प्राप्त भया है." यह उनका कहनेका अभिप्राय है. आत्मा तौ परमआनंदस्वरूप आगे भी था; परंतु "मेरा आत्मा परमआनंदरूप है" इसरीतिसे भान नहीं होवै था यातें अप्राप्तकी न्याई था आचार्यद्वारा ग्रंथश्रवणसे परमानंदका बुद्धिविषे भान होवै है यातें परमानंदकी प्राप्ति कहैं हैं। इसरीतिसे प्राप्तकी भी प्राप्ति बननेते परमानंदकी प्राप्तिरूप ग्रंथका प्रयोजन संभवै है. जैसे प्राप्तकी प्राप्ति ग्रंथका प्रयोजन है तैसे नित्य निवृत्तकी निवृत्ति भी प्रयोजन संभवै है. दृष्टांत जेवरीविषे सर्प नित्यनिवृत्त है और जेवरीके ज्ञानसे निवृत्त होवै है, तैसे आत्माविषे संसार नित्यनिवृत्त है, ताकी निवृत्ति आत्माके ज्ञानसे होवै है, यातें नित्यनिवृत्तकी निवृत्ति और नित्यप्राप्तकी प्राप्ति ग्रंथका प्रयोजन है॥ २७॥

"कारणसहित जगत्की निवृत्ति और परमानंदकी प्राप्ति ग्रंथका प्रयोजन है" यह पूर्व कह्या सो संभवै नहीं. काहेतें निवृत्ति नाम ध्वंसका है. ध्वंस और नाश दोनों पर्याय शब्द हैं. सो नाश अभावरूप है यातें मोक्षविषे भावरूपता और अभावरूपता दोनों

प्रतीत होवैं हैं अनर्थकी निवृत्ति कहनेसे अभावरूपता प्रतीत होवै है. और परमानंदकी प्राप्ति कहनेसे भावरूपता प्रतीत होवै है। सो दोनों एकपदार्थविषे बनैं नहीं काहेतैं, भावरूपता, और अभाव रूपता, दोनों आपसमें विरोधी हैं जो विरोधीधर्म होवै, सो एकका-लमें एक वस्तुविषेरहै नहीं यातें ग्रंथका प्रयोजन संभवै नहीं. ऐसी कोई शंका करै है।

ता शंकाके उत्तरका-दोहा।

अधिष्ठानते भिन्न नाहिं, जगतनिवृत्ति बखान ॥
सर्पनिवृत्ती रज्जु जिम, भये रज्जुको ज्ञान ॥ २८ ॥

टीका—कारणसहित जगत्की निवृत्ति अधिष्ठान ब्रह्मरूपहै, यातैं पृथक् नहीं. जैसे सर्पकी निवृत्ति अधिष्ठान रज्जुरूपहै "सारेक ल्पितवस्तुकी निवृत्ति अधिष्ठानरूप होवै है, यातें पृथक् नहीं," यह भाष्यकारका सिद्धांत है. यातैं इस स्थानविषे अनर्थकी निवृत्ति ब्रह्मरूप है. काहेतैं, जो सर्व अनर्थका अधिष्ठान ब्रह्म है सो ब्रह्म भावरूप है. यातैं अनर्थकी निवृत्ति भावरूप होनेतैं ग्रंथका प्रयोजन बनै है. यह वार्त्ता सिद्ध भई ॥ २८ ॥

दोहा।

जो जन प्रथमतरंग यह, पढै ताहि तत्काल ॥
करहु मुक्त गुरुमूर्ति है, दादू दीनदयाल ॥ २९ ॥

इति अनुबंधसामान्यनिरूपणं नाम प्रथमस्तरंगः समाप्तः ॥

द्वितीयस्तरङ्गः २

अथानुबंधविशेषनिरूपणम्-दोहा ।

याके प्रथमतरंगमैं, किय अनुबंध विचार ॥
कहूं ब द्वितियतरंगमैं, तिनहीको विस्तार ॥ १ ॥

टीका-च्यारसाधनयुक्त अधिकारी कह्या. तिनच्यारिसाधनमें मुमुक्षुता गिनी है. मोक्षकी इच्छाका नाम मुमुक्षुता है. कारणसहित जगतकी निवृत्ति और ब्रह्मकी प्राप्ति मोक्ष कहिये है. ताकेविषे कारणसहित जगत्की निवृत्तिरूप मोक्षका अंश, ताकूं कोऊ चाहै नहीं यह वार्त्ता-

पूर्वपक्षी प्रतिपादन करै है ।

अथ अधिकारीखंडन ।

मूलसहित जगध्वंसकी, कोउ करत नाहिं आश ॥
किंतु विवेकी चहत है, त्रिविधदुःखको नाश ॥ २ ॥

टीका-मूलअविद्यासहित जो जगत्का ध्वंस कहिये निवृत्ति ताकी आश कहिये इच्छा, कोऊपुरुष करै नहीं है किंतु कहिये कहा करै है? तीनि प्रकारके जो दुःख हैं, तिनका नाश विवेकी पुरुष चाहै है. याका यह अभिप्राय है-दुःख तीनिप्रकारके हैं-एक तौ अध्यात्म दुःख है, दूसरा अधिभूत दुःख है और तीसरा अधिदैव दुःख है. रोग क्षुधादिकोंसे जो दुःख होवै सो अध्यात्म दुःख

कहिये है. चोर व्याघ्र सर्पादिकोंसे जो दुःख होवै, सो अधिभूत दुःख कहिये है. यक्ष राक्षस प्रेत ग्रहादिक और शीत वात आतपतैं जो दुःख होवै सो अधिदैव दुःख कहिये है. इसरीतिसे तीनभांतिके जो दुःख हैं तिनके नाशकी सर्व पुरुषोंकूं इच्छा है. दुःखसे भिन्न जो पदार्थ हैं, तिनके नाशकी विवेकी पुरुष इच्छा करै नहीं. यातैं अज्ञानसहित सकलजगत्की निवृत्तिकी काहूकूं इच्छा बनै नहीं और जो सिद्धांती ऐसे कहै—"यद्यपि सकल पुरुष दुःखनिवृत्तिकी इच्छा करैं हैं; तथापि अज्ञानसहित सर्व जगत्की निवृत्ति बिना दुःखोंकी निवृत्ति होवै नहीं. यातैं दुःखनिवृत्तिके निमित्त अज्ञानसहित जगत्की निवृत्तिकूं भी चाहैं हैं" सो बनै नहीं काहेतैं—

जो आयुर्वेदमें औषध कहे हैं, तिनतैं रोगजन्य दुःखकी निवृत्ति होवै है. और भोजनसे क्षुधाजन्य दुःखकी निवृत्ति होवै है इसरीतिसे अपने अपने उपायनतैं सर्व दुःखोंकी निवृत्ति होवै है. यातैं अज्ञानसहित जगत्की निवृत्ति बिना भी दुःखोंकी निवृत्ति बनै है. दुःखोंकी निवृत्तिके निमित्त अज्ञानसहित जगत्की निवृत्तिकी चाहना बनै नहीं. "कारणसहित जगत्की निवृत्ति. और ब्रह्मकी प्राप्ति मोक्ष कहिये है" ताकेविषे कारण सहित जगत्की निवृत्तिरूप मोक्षके अंशकी भी इच्छा काहूकूं बनै नहीं. यह वार्ता प्रथमदोहाविषे कही.

ब्रह्मप्राप्तिरूप मोक्षके द्वितीयअंशकी भी इच्छा काहूकूं बनै नहीं. यह वार्ता—

पूर्वपक्षी कहै है—दोहा।

किय अनुभव जा वस्तुको, ताकी इच्छा होइ।
ब्रह्म नहीं अनुभूत इम, चहै न ताकूं कोइ॥ ३॥

टीका—जा वस्तुका अनुभव कहिये ज्ञान होय ता वस्तुकी प्राप्तिकी इच्छा होवे है. जा वस्तुका ज्ञान होवै नहीं ताकी प्राप्तिकी इच्छाभी होवै नहीं. जैसे अन्यदेशके अनंत पदार्थ अज्ञात हैं तिनकी प्राप्तिकी इच्छा काहूपुरुषकूं होवै नहीं और अधिकारी पुरुषकूं ब्रह्मका ज्ञान है नहीं और जाकूं ब्रह्मका ज्ञान है सो अधिकारी नहीं किंतु मुक्त है. ताकूं ब्रह्मप्राप्तिकी इच्छा बनै नहीं. यातैं वेदांतश्रवण तें पूर्व अज्ञात जो ब्रह्म, ताकी प्राप्तिकी इच्छा बनै नहीं. इसरीतिसे अज्ञानसहित जगत्की निवृत्ति और ब्रह्मकी प्राप्तिरूप जो मोक्ष ताकी इच्छा काहूकूं बनै नहीं. यातैं मुमुक्षु कोऊ है नहीं॥ ३॥

अन्यरीतिसे अधिकारीका अभाव,

पूर्वपक्षी प्रतिपादन करै है—दोहा।

चहत विषयसुख सकल जन, नहीं मोक्षको पंथ।
अधिकारी यातैं नहीं, पढ़ै सुनै जो ग्रंथ॥ ४॥

टीका—सर्वपुरुष विषयसुखकूं चाहैं हैं, और जो कोई सकल विषयनका त्यागकारिकै तपविषे आरूढ है सो भी परलोकके उत्तम भोगनकी इच्छाकारिकै नानाक्लेश सहारै है. यातैं इसलोकका अथवा परलोकका विषयसुख सर्वचाहै हैं सो विषयसुख मोक्षविषे है नहीं यातैं मोक्षका पंथ कहिये साधन, ताकूं कोई पुरुष चाहै नहीं. इसरीति-

से मोक्षकी इच्छारूप मुमुक्षुता बनै नहीं, और सकलपुरुषनकूं विषयसुखकी इच्छा होवै है, यातैं वैराग्य, शम, दम, उपरति भी काहूविषे बनै नहीं यातैं चतुष्टयसाधनसहित अधिकारीका अभाव होनेतैं ग्रंथका आरंभ निष्फल है ॥ ४ ॥

अथ विषयखंडन पूर्वपक्ष-दोहा।

जीवब्रह्मकी एकता, कह्यो विषय सो कूर ॥
क्लेशरहित विभु ब्रह्म इक, जीव क्लेशको मूर ॥ ५ ॥

टीका-पूर्व कह्या जो "जीवब्रह्मकी एकता या ग्रंथका विषय है" सो संभवै नहीं काहेतैं ब्रह्म तौ अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश इन पंचक्लेशोंतैं रहित हैं और विभु कहिये व्यापक है, एक है, सजातीयभेदरहित है, काहेतैं, ब्रह्मके सजातीय और ब्रह्म है नहीं और जीवविषे सर्वक्लेश हैं. और परिच्छिन्न हैं, और जीव नाना हैं. काहेतैं जितने शरीर हैं, उतने जीवहैं, जो सर्व शरीरविषे जीव एक होवै तो एकशरीरमें सुख अथवा दुःख होनेतैं सर्वशरीरविषे सुख और दुःख हुवा चाहिये ॥

और जो वेदांती कहैं हैं. "सुखसे आदिलैके अंतःकरणके धर्म हैं सो अंतःकरण नाना हैं, यातैं एकके सुखी दुःखी होनेतैं सर्व सुखी दुःखी नहीं होवैं हैं, और साक्षी सुख दुःखते रहित हैं एक है और सर्वक्लेशतैं रहित है और ताकी ब्रह्मके साथ एकता बनै है" सो वार्त्ता बनै नहीं; काहेतैं-

जो कर्त्ता भोक्ता जीव है, तिसतैं भिन्न साक्षी वंध्यापुत्रके

समान है. और जो साक्षी अंगीकार भी करो, सो भी एक बनै नहीं; नाना साक्षी मानने होवैंगे काहेतें यह वेदांतका सिद्धांत है—अंतःकरण और सुख दुःखसे आदिलेकै अंतःकरणके धर्म, ये इंद्रिय और अंतःकरणके विषय नहीं, किंतु साक्षीके विषय हैं. काहेतें, इंद्रिय तौ पंचीकृतभूतनकूं विषय करैं हैं, यामें इतना भेद है—नेत्रइंद्रिय तो रूपवान् जो वस्तु है, ताके रूपकं और रूपके आश्रयकूं दोनुवांकूं विषय करै है; जैसे नील पीतादिक घटका रूप और तिस रूपके आश्रय घटकूं, नेत्रइंद्रिय विषय करे है; और त्वचाइंद्रिय भी स्पर्शकूं, और ताके आश्रयकूं, दोनुवाकूं विषय करै है और रसना, घ्राण, श्रवण, ये तीनि तौ रस, गंध, शब्दमात्रकूं विषय करैं हैं; तिनके आश्रयकू विषय करैं नहीं, यातें इन तीनोंसे तौ अंतःकरणका ज्ञान बने नहीं, और नेत्रसे तथा त्वचासे अंतःकरणका ज्ञान बने नहीं, काहेतें, पंचीकृतभूत अथवा पंचीकृतभूतनका कार्य जो रूपवान् अथवा स्पर्शवान् होवै सो नेत्र और त्वचाका विषय होवै है. अंतःकरण अपंचीकृतभूतनका कार्य है, यातें नेत्र और त्वचाका भी विषय नहीं. इसी कारणतें अपंचीकृतभूतनका कार्य नेत्र इंद्रिय भी नेत्रका विषय नहीं है, और बाह्यवस्तु इंद्रियका विषय होवे है; और अंतःकरण इंद्रियकी अपेक्षाते अंतर है, यातें भी इंद्रियनका विषय नहीं ॥

और अंतःकरण वृत्तिका भी अंतःकरण विषय नहीं. काहेतें अंतःकरण वृत्तिका आश्रय है; यातें अंतःकरण अपनी वृत्तिका विषय बने नहीं, जैसे अग्नि दाहका आश्रय है, सो दाहका विषय

नहीं होवै है. किंतु अग्निसे भिन्न जो काठसे आदिलेके वस्तु हैं सो दाहका विषय होवैं हैं, तैसे अंतःकरणसे भिन्न जो वस्तु हैं, सो अंतःकरणजन्य वृत्तिके विषय हैं. और अंतःकरण नहीं ॥

तैसे अंतःकरणकी वृत्तिके विषय नहीं. काहेतें, अंतःकरणकूं विषय करनेवास्तै जो अंतःकरणकी वृत्ति होवै तौ अंतःकरणकूं धर्म जो सुखादिक हैं, तिनकूं भी विषय करै, सो अंतःकरणकूं विषय करनेवाली वृत्ति तौ अंतःकरणके सन्मुख होवै नहीं, यातैं अंतःकरणके धर्म भी अंतःकरणकी वृत्तिके विषय नहीं और यह नियम है—जो वृत्तिके आश्रयसे किंचित् दूरिवस्तु होवै, सो वृत्तिका विषय होवै है, जो वस्तु वृत्तिके आश्रयसे अंत्यतसमीप होवै, सो वृत्तिका विषय होवै नहीं जैसे नेत्रकी वृत्तिका आश्रय जो नेत्र, ताके अत्यंत समीप अंजन, नेत्रकी वृत्तिका विषय नहीं. तैसे अंतः-करणकी वृत्तिका आश्रय जो अंतःकरण ताके अत्यंतसमीप जो सुखसे आदिलेके धर्म सो अंतःकरणकी वृत्तिके विषय बनैं नहीं, इसरीतिसे धर्मसहित अंतःकरणका इंद्रियतैं अथवा अपनेतैं ज्ञान बनै नहीं. किंतु साक्षीके विषय हैं ॥

सो साक्षी एक अंगीकार करै, तो जैसे एक अंतःकरणके सुखदुःखका साक्षीसे भान होवै है, तैसे सर्वके सुख दुःखका भान हुवा चाहिये यातैं साक्षी नाना हैं जब नाना साक्षी अंगीकार करिये, तब दोष नहीं. काहेतैं जा साक्षी की उपाधि अंतःकरण है ता साक्षीसे अपनी उपाधिके धर्मका भान होवै है. यातैं सर्वके

सुखदुःखका ज्ञान होवै नहीं. इसरीतिसे नाना जो साक्षी, तिनकी एकब्रह्मके साथ एकता बनै नहीं ॥

अथ प्रयोजनखंडन पूर्वपक्ष-दोहा ।

बंधनिवृत्ती ज्ञानते, बनै न विन अध्यास ॥
सामग्री ताकी नहीं, तजो ज्ञानकी आस ॥ ६ ॥

टीका-"अहंकारसे आदिलैके जो अनात्मवस्तु हैं सो बंध कहिये है" सो बंध जो अध्यासरूप होवै तौ ज्ञानते निवृत्त होवै, और अध्यासरूप नहीं होवै तौ ज्ञानतैं निवृत्त होवै नहीं. काहेतैं ज्ञानका यह स्वभाव है-जा वस्तुका ज्ञान होवै, ताके विषे अध्यास और अज्ञान, तिनकूं; दूरि करै है; जैसे जेवरीका ज्ञान, जेवरीविषे सर्प अध्यासकूं; और जेवरीके अज्ञानकूं दूरि करै है, भ्रांतिज्ञानका विषय जो मिथ्यावस्तु और भ्रांतिज्ञान, ताका नाम अध्यास है, जाके विषे जो वस्तु मिथ्या नहींहै, किन्तु सत्यहै ताकी ज्ञानसे निवृत्ति होवै नहीं, तैसें आत्माविषे अहंकारसे आदिलैके बंध जो अध्यास कहिये मिथ्या होवै तौ ज्ञानसे निवृत्ति होवै सो आत्माविषे मिथ्याबंधकी सामग्री है नहीं और बंधप्रतीति होवै है; यातैं बंध सत्य है, ता सत्यबंधकी ज्ञानसें निवृत्तिकी आशा निष्फल है ॥

अथ अध्याससामग्री निरूपण-दोहा ।

सत्यवस्तुके ज्ञानते, संस्कार इक जान ॥
त्रिविधदोष अज्ञान पुनि, सामग्री पहिचान ॥ ७ ॥

टीका-सत्यवस्तुके ज्ञानजन्य संस्कार और तीनप्रकारके दोष; प्रमाताका दोष, प्रमाणका दोष, प्रमेयका दोष और अधिष्ठानके वि-

शेषरूपका अज्ञान; इतनी अध्यासकी सामग्री है. या बिना अध्यास होवै नहीं; जैसे सीपीमें रूपेका, और जेवरीमें सर्पका अध्यास होवै है; सो जिस पुरुषनैं सत्य रूपा और सर्प देखा है, ताकूं होवै है, और जाकूं सत्य रूपेका और सर्पका ज्ञान नहीं, ताकूं होवै नहीं यातैं सत्यवस्तुके ज्ञानके संस्कार अध्यासके हेतु हैं और सीपीमें सर्पका, जेवरीमें रूपेका अध्यास होवै नहीं, यातैं प्रमेयविषे सादृश्यदोष अध्यासका हेतु है. इसरीतिसे प्रमाताविषे लोभ भयसे आदिलेके, और नेत्रादिक प्रमाणविषे पित्तकामलासे आदिलेके जो दोष, सो अध्यासके हेतु हैं. और सीपीका " इदं " रूपकरिकै सामान्यज्ञान होवै और " यह सीपी है " ऐसा विशेषज्ञान नहीं होवै, जब अध्यास होवै है. " सीपी है " ऐसा विशेषरूपकरिकै ज्ञान होवै, जब अध्यास होवै नहीं. और सामान्यरूपकरिकै ज्ञान नहीं होवै, तौ भी अध्यास होवै नहीं, यातैं अधिष्ठानका विशेषरूप करिकै अज्ञान और सामान्यरूपकरिकै ज्ञान, अध्यासका हेतु है इतनी अध्यासकी सामग्री है. इनमें कोई एक नहीं होवै तौ भी अध्यासहोवै नहीं जैसे कुलाल, चक्र, दंड, मृत्तिका, घटकी सामग्री है कोई एक नहीं होवै तौ घट होवै नहीं. तैसे अध्यास भी सारी-सामग्रीसे होवै है ॥

और बंधके अध्यासमें एक भी कारण है नहीं, बंध कहूं सत्य होवै तौ ताके ज्ञानजन्य संस्कारतै आत्मविषे मिथ्याबंध प्रतीत होवै, सो सिद्धान्तमें आत्मासे भिन्न कोई सत्यवस्तु है नहीं, यातैं सत्य

बंधके ज्ञानजन्य संस्कारका अभाव होनेतें आत्माविषे बंधका अध्यास बनै नहीं ॥

तैसे आत्माका और बंधका सादृश्यभी है नहीं उलटा तमःप्रकाशकी न्याई विपरीतस्वभाव है, आत्मा प्रत्यक् है; और बंध पराक् है, प्रत्यक् नाम अंतरका है और पराक् नाम बाह्यका है; आत्मा विषयी है और बंध विषय है; जो प्रकाश करनेवाला होवै सो विषयी कहिये है, जाका प्रकाश करिये सो विषय कहिये है. प्रत्यक्विषे पराक्का, तथा पराक्विषे प्रत्यक्का अध्यास होवै नहीं जैसे पुत्रादिकनका, और पुत्रादिकविषे देहका अध्यास होवै नहीं. और विषयमें विषयीका, तथा विषयीमें विषयका, अध्यास होवै नहीं; जैसे विषय जो घटादिक तिनविषे विषयी दीपकका, और दीपकविषे घटादिकनका अध्यास होवै नहीं, तैसे सादृश्यके अभाव होनेतें प्रत्यक्विषयी जो आत्मा, ताविषे पराक्विषयरूप बंधका अध्यास बनै नहीं. प्रत्यक्का और पराक्का विरोध है विषयका और विषयीका विरोध है, सादृश्य नहीं. यातैं बंधका अध्यास आत्माविषे बनै नहीं ॥

तैसे प्रमाताके दोषका और प्रमाणके दोषका भी अभाव है. काहेतें, प्रमातासे आदिलेके सर्वप्रपंच अध्यासरूप है; सोई बंध है. यह वेदांतका सिद्धांत है इसरीतिसे बंधके अध्याससे पूर्व प्रमाता प्रमाणका स्वरूप असिद्ध है और ताका दोष भी असिद्ध है. यातैं बंधका अध्यास बनै नहीं ॥

और अधिष्ठानका विशेषरूप करिकै अज्ञान भी बनै नहीं. काहेतें जो बंधका अधिष्ठान ब्रह्म है, सो स्वयंप्रकाश ज्ञानरूप है. ता स्वयं प्रकाश ज्ञानरूप ब्रह्मविषे सूर्यविषे तमकी न्यांई अज्ञान बनै नहीं जैसे प्रकाशमान सूर्यसे तमका विरोध है. तैसे चैतन्यप्रकाश और तमरूप अज्ञानका परस्पर विरोध है और अधिष्ठानका अज्ञान अंगीकार करै, तोभी बंधका अध्यास बनै नहीं काहेतें अत्यंतअज्ञानविषे, तथा अत्यंत ज्ञानविषे अध्यास होवै नहीं. किंतु विशेषरूपसे अज्ञान और सामान्यरूपसे ज्ञानविषै होवै है. और ब्रह्म सामान्यरूपविशेष भावसे रहित है, निर्विशेष है; यह सिद्धांत है. यातैं विशेषरूपसे अज्ञात और सामान्यरूपसे ज्ञात; ब्रह्म बनै नहीं और अध्यासके लोभसे ब्रह्मविषे सामान्यविशेषभाव अंगीकार करोगे, तो सिद्धांतका त्याग होवेगा इसरीतिसे निर्विशेष जो प्रकाशरूप ब्रह्म, ताका विशेषरूपसे अज्ञान और सामान्यरूपसे ज्ञानका अभाव होनेतें ताके विषे अध्यास बनै नहीं; यातैं ब्रह्मविषे बंध अध्यासरूप है. यह कहना बनै नहीं, किंतु बंध सत्य है. ता सत्यबंधकी ज्ञानसे निवृत्तिका असंभव है. यातैं ज्ञानद्वारा मोक्षरूप प्रयोजन ग्रंथका बनै नहीं. और ज्ञानसे मोक्षका प्रतिपादक जो सिद्धांत सो समीचीन नहीं, किंतु कर्मसे मोक्ष होवै है. यह वार्ता एकभाविकवादककी रीतिसे प्रतिपादन करैं हैं.

दोहा।

सत्यबंधकी ज्ञानते, नाहिं निवृत्ति संयुक्त ॥
नित्य कर्म संतत करै, भयो चहै जो मुक्त ॥ ८ ॥

टीका—सत्यबंधकी ज्ञानसे निवृत्ति माननी, संयुक्तक हिये युक्ति सहित नहीं; किंतु अयुक्त है. यातें जो पुरुष मुक्त हुआ चाहै सो संतत कहिये निरंतर नित्य कर्म करे. याका यह अभिप्राय है—

कर्म दो प्रकारका है; एक विहित है और एक निषिद्ध है, पुरुषकी प्रवृत्तिके निमित्तजाका स्वरूप वेदने बोधन किया है सो विहितकर्म कहिये है. और पुरुषकी निवृत्ति जासों बोधन करी है सो निषिद्धकर्म कहिये है. और स्वभावसिद्ध जो क्रिया है सो कर्म नहीं, काहेतें जो वेदने प्रवृत्ति अथवा निवृत्तिके निमित्त बोधन किया है सो कर्म कहिये है उदासीनाक्रिया कर्म नहीं यातें दोप्रकारका कर्म है, तीनप्रकारका नहीं.

विहितकर्मचारप्रकारका है:—एक नित्य है, और नैमित्तिक है, काम्यहै और प्रायश्चित्त है पापनाशके निमित्त विधान किया जो कर्म, सो प्रायश्चित्त कहिये है. जैसे प्रमादसे द्रव्यके ग्रहणजन्य जो यतीकूं पाप ताके नाशके निमित्त द्रव्यका त्याग और तीन उपवास हैं. फलके निमित विधान किया जो कर्म सो काम्य कहिये है; जैसे वृष्टिकामकूं करी याग है, और स्वर्ग कामकूं अग्निहोत्र सोमयागसे आदिलैके हैं. जाकर्मके नहीं कियेसें पाप होवै और कियेसें पुण्यपापरूप फल होवै नहीं और सदा जाका विधान नहीं, किंतु किसीनिमित्तकूं लैके विधान किया होवै सो कर्म नैमित्तिक कहिये है, जैसे ग्रहणश्राद्ध है और अवस्थावृद्ध, जातिवृद्ध आश्रमवृद्ध विद्यावृद्ध धर्मवृद्ध ज्ञानवृद्ध पुरुषके आगमनते उत्थानरूप कर्म है विद्याशब्दसे शास्त्रज्ञानका ग्रहण है और ज्ञानशब्दसे अपरोक्षवि-

-द्याका ग्रहण है. पूर्वपूर्वसे उत्तर उत्तर उत्तम हैं. जाके नहीं कियेसे पाप होवै. कियेसे फल होवै नहीं. और सदा जाका विधान होवै. सो नित्यकर्म कहिये है; जैसे स्नानसंध्यादिक है इसरीतिसे चारिप्रकारका विहित. और निषिद्ध मिलिके पांचप्रकारका कर्म है.

मोक्षकी इच्छावान् काम्य और निषिद्धकर्म करै नहीं काहेतें काम्यकर्मसे उत्तमलोककूं जावै है. और निषिद्धसे नीच लोककूं जावै है, यातें दोनोंको त्याग करै. और नित्य कर्म सदा करै और नैमित्तिकका जब निमित्त होवै तब नैमित्तिक भी करै काहेतें. नित्यनैमित्तिक कर्म नहीं करै तो पाप होवैगा. ता पापसे नीचयोनिकूं प्राप्त होवेगा. यातें पापके रोकनेवास्ते नित्यनैमित्तिककर्म करै. नित्यनैमित्तिककर्मका और फल नहीं, यहीफल है, जो तिनके नहीं करनेसे पाप होवै है सो तिनके करनेसे होवै नहीं यातें मुमुक्षु नित्यनैमित्तिककर्म अवश्य करै ॥

और जो कदाचित् प्रमादसे निषिद्धकर्म होय जावै तो ताका दोष दूरि करनेकूं प्रायश्चित्त करै. जो निषिद्धकर्म नहीं किया होवै, तौ भी जन्मांतरके जो पाप हैं, तिनके दूरि करनेवास्ते प्रायश्चित्तकर्म करै, परंतु इतना भेद है—प्रायश्चित्त दो प्रकारका है, एक तो असाधारण है, और एक साधारण है. जो किसी पापविशेषके दूरि करनेवास्ते शास्त्रने विधान किया होवै सो असाधारण प्रायश्चित्त कहिये है. जैसे पूर्वकह्या उपवास है और सर्वपापके दूरि करनेवास्ते शास्त्रने जो विधान किया कर्म, सो साधारणप्रायश्चित्त कहिये है,जैसे गंगास्नान और ईश्वरके नामउच्चारण हैं. इनते आदिलेके और भी

जानि लेने. इसरीतिसे दोप्रकारके प्रायश्चित्त हैं. जो ज्ञातपाप होवै तो तिस पापका नाशक जो असाधारण प्रायश्चित्त शास्त्रने बोधन किया है, ताकूं करै. और जो जन्मांतरके अज्ञातपाप हैं तिनके दूरि करनेवास्ते साधारणप्रायश्चित्त करै. काहेतैं, असाधारणप्रायश्चित्तका यह स्वभाव है—जा पापका नाश करनेवास्ते शास्त्रने जो प्रायश्चित्त विधान किया है सो पाप प्रायश्चित्तसे दूरि होवै है. और नहीं और जन्मान्तरके पापका ऐसा ज्ञान है नहीं. जो कौनसा पाप है. किस प्रायश्चित्तसे दूरि होवैगा. यातैं साधारणप्रायश्चित्त करै.

साधारणप्रायश्चित्तसे सर्व पाप दूरि होवैं हैं. यद्यपि गंगा स्नानसे आदिलैके जो साधारणप्रायश्चित्त कहे सो केवल प्रायश्चित्तरूप नहीं किंतु काम्यरूप और प्रायश्चित्तरूप हैं. काहेतैं "गंगास्नानसे उत्तमलोककी प्राप्ति" शास्त्रमें कही है. तैसे "ईश्वरके नाम उच्चारणसे भी उत्तमलोककी प्राप्ति" कही है. यातैं काम्यरूप हैं; और पापके नाशक हैं, यातैं प्रायश्चित्तरूप हैं, जैसे अश्वमेध ब्रह्महत्यादिक पापका नाशक है, और स्वर्गकी प्राप्तिरूप फलका हेतु है, तैसे गंगास्नानादिक हैं; केवल प्रायश्चित्त नहीं यातैं गंगास्नानादिकोंतैं उत्तम होवै है, सो मुमुक्षुकं वांछित है नहीं. तथापि जाको उत्तमलोककी वांछा है. ताको तो गंगास्नानादिक, पाप नाश करिकै उत्तमलोककूं प्राप्त करैं हैं. जाको लोककी कामना नहीं है, ताके केवल पापहीके नाशक हैं, यातैं कामनासहित अनुष्ठान किये काम्यरूप प्रायश्चित्त हैं. लोककामनासे विना अनुष्ठान किये केवल प्रायश्चित्तरूप हैं, जैसे वेदांतमतमें, संपूर्णकर्म

सकामपुरुषकूं संसारके हेतु हैं, और निष्कामकूं अंतःकरणकी शुद्धि करिके मोक्षके हेतु हैं, तैसे एकही गंगास्नान तथा ईश्वरका नाम उच्चारण सकामकूं तो काम्यरूप प्रायश्चित्त है और निष्कामकूं केवल प्रायश्चित्तरूप हैं. यातैं मुमुक्षु साधारणप्रायश्चित्त करै. इसरीतिसे ज-न्मांतरके संपूर्णपापका ज्ञानसे विनाही नाश होवै है.

तैसे जन्मांतरके काम्यकर्म भी मुमुक्षुके वंध्याके समान हैं; फलके हेतु नहीं. काहेतैं जैसे कर्मके अनुष्ठान कालविषे पुरुषकी इच्छा फलका हेतु वेदांत मतमें अंगीकार करा है, इच्छासहित अनुष्ठान किये कर्म स्वर्गादि फलके हेतु नहीं; यह वेदांतका सिद्धांतहै. तैसे कर्मकी सिद्धिसे अनंतर भी पुरुष की इच्छा फलका हेतु है सो पुरु-षकी इच्छा जिस कालमें पुरुष मुमुक्षु हुवा तब दूरि होगई यातैं ज-न्मांतरके काम्यकर्म भी फलके हेतु नहीं जैसे किसी पुरुषने धनकी प्राप्तिकी इच्छाते धनीपुरुषका आराधन किया होवै, ता धनी के आराधनसे अनंतर भी जो धनकी इच्छा दूरि होय जावै तौ धनकी प्राप्तिरूप फल होवै नहीं. तैसे जन्मांतरके काम्य कर्मका भी मुमुक्षुता-कूं इच्छाके अभावतैं फल होवै नहीं. इसरीतिसे केवल कर्मसे मोक्ष होवै है.

वर्त्तमानजन्मविषे काम्य औ निषिद्ध किये नहीं, जातैं ऊर्ध्वलो-क अधोलोककूं जावै. जन्मांतरके प्रारब्ध जो निषिद्ध और काम्य, तिनका भोगसे नाश होवै है. नित्य और नैमित्तिक के नहीं करनेते जो पाप होवै सो तिनके करनेते मुमुक्षुकूं होवै नहीं; और जन्मांतरके संचित जो निषिद्ध हैं; तिनका साधारण प्रायश्चित्तसे

नाश होवै है, जन्मांतरका संचितकाम्य कर्म. मुमुक्षुकूं इच्छाके अभावते फल देवै नहीं. यातैं मुमुक्षु नित्यनैमित्तिक और साधारण प्रायश्चित्तरूप कर्म करै. और वर्त्तमानजन्मका ज्ञात निषिद्धकर्म होवै तौ असाधारणप्रायश्चित्त करै. अथवा नित्य और नैमित्तिकही करै. प्रायश्चित्त नहीं करै काहेतैं जो संचितनिषिद्धकर्म और काम्यकर्म, सो मुमुक्षुके नाश होय जावैं हैं जैसे ज्ञानवान्के संचितकर्मका वेदांतमतमें अंगीकार किया है. तैसे निषिद्धकाम्यत्यागकरिके नित्यनैमित्तिक कर्मविषे वर्त्तमान जो मुमुक्षु ताके संचितकर्मका नाश होवै है. अथवा संचित जो काम्य और निषिद्ध सो सारे मिलिके एक जन्मका आरंभ करैं हैं. यातैं मुमुक्षुकूं एक जन्म और होवै है. अथवा योगीके कायव्यूहकी न्याईं, एक ही कालविषे सारेसंचित अनंतशरीरोंका आरंभ करै है; तिन तैं मुमुक्षु उत्तरजन्मविषे सर्वका फल भोग लैवै है. अथवा नित्य और नैमित्तिककर्मके अनुष्ठानते जो क्लेश होवै है, सो जन्मांतरके संचितनिषिद्धकर्मका फल है. यातैं जन्मांतरका संचितनिषिद्ध और जन्मका आरंभ करै नहीं. काम्य जो संचित है सो एकजन्म अथवा एककालमैं; अनंतशरीरोंका आरंभ करै है यातैं मुमुक्षुकू उत्तरजन्मविषे दुःखका लेशभी होवै नहीं केवल सुखका भोग होवै है. काहेतैं, जन्मांतरके संचित जो विहितकर्म हैं, तिनतैं शरीर हुवा है, और संचित निषिद्ध है सो नित्यनैमित्तिकके अनुष्ठानके क्लेशतैं पूर्वजन्म विषे भोगि लिये. इसरीतिसे प्रायश्चित्तसे विना केवल नित्य और नैमित्तिककर्मके अनुष्ठानतैं मोक्ष होवै है.

यातैं नैमित्तिक कर्मके समय नैमित्तिक अनुष्ठान करै और नित्यकर्म संतत अनुष्ठान करै. या मतकूं शास्त्रमें एकभविकवाद कहैं हैं.

यातैं भी बंधकी निवृत्ति ज्ञानद्वारा ग्रंथका प्रयोजन नहीं काहेतें, जो वस्तु औरसे होवै नहीं. सो मुख्यप्रयोजन होवै है, जैसे रूपका ज्ञान नेत्रविना औरसे होवै नहीं. सो रूपज्ञान नेत्रका प्रयोजन है. और बंधकी निवृत्ति ग्रंथसे बिना क्रम ते होवै है. यातैं बंधकी निवृत्ति ग्रंथका प्रयोजन नहीं. इसरीतिसे ग्रंथके अधिकारी, विषय, प्रयोजन बनैं नहीं.

अधिकारी आदिके अभावसे संबंध भी बनैं नहीं काहेतें, विषय के अभावत ग्रंथका और विषयका प्रतिपाद्य प्रतिपादक भावसंबंध बनै नहीं. आधकारी और फलके अभावतें, तिनका प्राप्यप्रापकभाव-संबंध बनै नहीं. अधिकारीके अभावतें ताका और विचारका कर्तृ-कर्तव्यभावसंबंध बनै नहीं. ज्ञानकूं निष्फलता होनेतें ग्रंथका और ज्ञानका जन्यजनकभावसंबंध बनै नहीं. सफलवस्तु जन्य होवै है. पूर्व कही रीतिसे ज्ञान सफल है नहीं और ज्ञानके स्वरूपका भी अभाव है. यातैं भी ज्ञानका और ग्रंथका संबंध बनै नहीं. काहेतैं, जीवब्रह्मके अभेद निश्चयका नाम सिद्धांतमें ज्ञान है सो अभेद निश्चय बनै नहीं. काहेतैं जीवब्रह्मका अभेद है नहीं. यह वार्ता विषयके निराकरणमें पूर्व प्रतिपादन करी है. यातैं अभेदनिश्चयरूप ज्ञान बनै नहीं इसरीतिसे अधिकारी आदिक अनुबंधनके अभावतैं ग्रंथका आरंभ बनै नहीं ॥

अथ पूर्वपक्षीक्रमतैं उत्तर.

पूर्वपक्षीने प्रथम कह्या " जो मोक्षकी इच्छा काहूकूं बनै नहीं काहेतैं, मोक्षविषे दो अंश हैं—एक तो कारण सहित जगत्की निवृत्ति मोक्षका अंश है; और दूसरा ब्रह्मकी प्राप्तिरूप है. तिनविषे कारण-सहित जगत्की निवृत्तिरूप मोक्षके प्रथम अंशकी इच्छा काहूकूं है नहीं, किंतु तीनप्रकारके दुःखकी निवृत्तिकी इच्छा सर्वपुरुषनकूं है. सो दुःखकी निवृत्ति अपने अपने उपायों तैं होय जावै है. यातैं मूलसहित जगत्की निवृत्तिकी इच्छावाला मुमुक्षु अधिकारी बनै नहीं " ताका—

समाधान प्रथम कहैं हैं—दोहा ।

मूलसहितजगहानिबिन, ह्वै न त्रिविधदुखध्वंस ॥
याते जन चाहत सकल, प्रथम मोक्षको अंस ॥ ९ ॥

टीका—मूल कहिये जगत्का कारण जो अज्ञान, और जगत्के नाशविना तीनप्रकारके दुःखका और उपायों तैं ध्वंस कहिये नाश होवै नहीं, और मूलअविद्याके नाशतैं सर्वदुःख और दुःखके कारण रोगादिक, और रोगादिकोंके आश्रय शरीरादिकोंका नाश होवै है. यातैं त्रिविध दुःखके नाशके निमित्त कारणसहित जगत्की निवृत्तिरूप मोक्षके प्रथम अंशकूं सकलपुरुष चाहैं हैं. तात्पर्य यह है; जो सर्व औषध आदिक उपाय करनेविषे समर्थ हैं तिनके भी दुःख नियम

करि दूरि होवैं नहीं. काहू पुरुषके रोगादिजन्य दुःख औषधादिक उपायों तैं नाश होवैं हैं, और काहूके दुःखका औषधादिक उपायों-ते नाश होवै नहीं यातैं औषधादिक उपायों तैं रोगादिजन्य दुःखकी नियम करिके निवृत्ति होवै नहीं जाके औषधादिक उपायोंतैं दुःखकी निवृत्ति होवै है, ताकोभी दुःखकी उत्पत्ति फेरि होवै है, यातैं औ-षधआदिक उपायों तैं दुःखकी अत्यंत निवृत्ति होवै नहीं जाकी निवृत्ति हुई है, ताकी फेरि उत्पत्ति नहीं होवै सो अत्यंतनिवृत्ति कहिये है. औषधादिक उपायों तैं दुःखकी निवृत्ति नियमकरिके होवै नहीं और निवृत्त जो दुःख, ताकी फेरि भी उत्पत्ति होवै है यातैं अत्यंत निवृत्ति भी तिन उपायों तैं होवै नहीं. और दुःखके सकलसाधनका नाश होवै, तो सकलदुःखकी नियम करिकै निवृत्ति होवै. और दुःखके साधनका नाश हुयेते फेरि दुःख होवै नहीं. यातैं दुःखकी निवृत्तिके निमित्त दुःखके साधनकी निवृत्तिकी इच्छा सर्वकूं होवै है.

सो दुःखका साधन अज्ञान और ताका कार्य प्रपंच है. यह वार्ता छांदोग्यउपनिषदमें भूमविद्याविषे प्रसिद्ध है. तहां यह प्रसंग है:—"एक समय सनत्कुमारके पास नारद प्राप्त हुये. और नारदने कहा—हे भगवन् ! जो आत्मज्ञानी पुरुष है, ताकूं शोक नहीं होवै है. और मैं शोकसहित हूं, यातैं मैं अज्ञानी हूं मेरेकूं ऐसा उपदेश करो, जासे मेरा अज्ञान दूरि होवै." तब सनत्कुमारने नारदकूं कहा कि, "हे नारद ! भूमा शोकरहित है, सुखरूप है.और

भूमासे भिन्न सकल तुच्छ हैं; और दुःखका साधन हैं." भूमा नाम ब्रह्मका है. इसरीतिसे कि, ब्रह्मसे भिन्न जो वस्तु, सो सकल-दुःखके साधन कहे हैं. अज्ञान और ताका कार्य ब्रह्मसे भिन्न है, यातैं दुःखका साधन है, ताकी निवत्ति हुयेसैं सर्वदुःखकी नियम-कारिकै अत्यंतनिवृत्ति बनै है. यातैं सकलदुःखकी निवृत्तिके निमित्त अज्ञानसहित प्रपंचकी निवृत्तिरूपमोक्षके प्रथमअंशकी चाह बनै है.

और जो पूर्वपक्षीने कह्या "जा वस्तुका अनुभव किया होवे, ताकी प्राप्तिकी इच्छा होवै है, ब्रह्मका अनुभव काहूने किया है नहीं यातैं ब्रह्मकी प्राप्तिरूप मोक्षके द्वितीयअंशकी इच्छा काहूकूं होवै नहीं."

ताका समाधान कहैं हैं.—दोहा।

किय अनुभव सुखको सबहि, ब्रह्मसुन्यो सुखरूप॥
ब्रह्मप्राप्ति या हेतुतैं, चहत विवेकीभूप ॥ १० ॥

टीका—सर्वपुरुषने सुखका अनुभव किया है, यातैं सुखकी इच्छा सर्वकूं है, और " ब्रह्म नित्य सुखरूप है, ऐसा सच्छास्त्रमें माना है, यातैं विवेकी भूप कहिये उत्तम विवेकी सुखरूप ब्रह्मकी प्राप्तिकूं चाहैं हैं ॥ १० ॥

दोहा।

केवलसुखसब जन चहैं, नहीं विषयकी चाह ॥
अधिकारी यातैं बनै, है जु विवेकी नाह ॥ ११ ॥

टीका—पूर्व कह्या जो "सर्वपुरुष विषयजन्य सुख चाहैं हैं, सो

विषयजन्य सुख मोक्षविषे प्राप्त होवै नहीं, किंतु जगत्में प्राप्त होवै है, यातैं मोक्षकी इच्छावान् अधिकारीके अभावतैं ग्रंथका आरंभ निष्फल है." ताकूं यह पूछैं हैं:-जो कोई मुमुक्षु नहीं है अथवा मुमुक्षु तो है, परंतु तिनकी ग्रंथविषे प्रवृत्ति होवै नहीं, जो ऐसे कहै:-"मुमुक्षु नहीं है" सो बनैं नहीं. काहेतैं, सर्वपुरुष सर्व दुःखका नाश, और नित्यसुखकी प्राप्तिचाहैं हैं, सो सर्वदुःखका नाश और सुखकी प्राप्तिरूप मोक्ष है, यातैं सर्वपुरुष मुमुक्षु हैं.

और कह्या जो "विषयजन्यसुख चाहैं हैं," सो नहीं किंतु सुख मात्र चाहैं हैं. सुख विषयसे होवै, अथवा विषय विना होवै, जो विषयजन्य सुखकूंही चाहैं, तो सुषुप्तिके सुखकी इच्छा नहीं होनी चाहिये. सुषुप्तिका सुख विषयजन्य है नहीं, यातैं सुखमात्रकूं चाहैं हैं, केवल विषयजन्यकूंही नहीं; उलटा आत्म-सुखको चाहैं हैं, विषयजन्यकूं नहीं चाहैं हैं, काहेतैं, सर्वपुरुषोंकों न्यून अथवा अधिक विषयसुख प्राप्त भी है, परंतु ऐसी इच्छा सदा रहै है"-हमारेकूं ऐसा सुख प्राप्त होवै, जा सुखका नाश कभी होवै नहीं" ऐसा सुख आत्मस्वरूप मोक्ष है, यातैं सर्व पुरुष मुमुक्षु हैं, "कोउ मुमुक्षु नहीं" ऐसा कहना बनै नहीं.

और जो ऐसे कहै, "मुमुक्षु तो हैं परंतु ग्रंथमें प्रवृत्ति होवै नहीं, यातैं ग्रंथका आरंभ निष्फल है" ताकूं यह पूछैं हैं-ग्रंथ मोक्षका साधन नहीं है ? यातैं ग्रंथविषे प्रवृत्ति नहीं होवै अथवा ग्रंथसे और भी कोई साधन है, जाके विषे प्रवृत्ति होनेतैं ग्रंथविषे

प्रवृत्ति होवै नहीं. अथवा जिन शमादिकों तैं ग्रंथमें अधिकार कह्या सो शमादिमान् ज्ञानके योग्य कोई अधिकारी नहीं है, यातैं ग्रंथमें प्रवृत्ति होवै नहीं ? जो ऐसे कहै—"ग्रंथ मोक्षका साधन नहीं" सो वार्ता बनै नहीं. काहेतैं मोक्ष ज्ञानतैं नियम करिकै होवै है; यह वेदका सिद्धांत है. सो ज्ञान श्रवणसे होवै है.

श्रवण दोप्रकारका है—एक तो वेदांतवाक्यका और श्रोत्र का-संयोगरूप है, और दूसरा वेदांतवाक्यका विचाररूप है. ज्ञानका हेतु प्रथम श्रवण है; दूसरा नहीं. काहेतैं, शब्दजन्य ज्ञानविषे इंद्रियके साथ शब्दका संयोगही सर्वत्र हेतु है. यातैं वेदांतवाक्यका और श्रोत्रका संयोगरूप श्रवण ब्रह्मज्ञान का हेतु है अवांतरवाक्यका श्रवण परोक्षज्ञानका हेतु है. और महावाक्यका श्रवण अपरोक्ष ज्ञानका हेतु है. यह वार्ता पूर्व प्रतिपादन करी है. जाको ज्ञान हुवे तैं भी असंभावना और विपरीत भावना होवै, सो दसरा श्रवण और मनन निदिध्यासन करै. वेदांतवाक्यका विचाररूप जो श्रवण, तासूं वेदांतवाक्यविषे असंभावना दरि होवैं है. वेदांतवाक्य ब्रह्मके प्रतिपादक हैं. अथवा और अर्थके प्रतिपादक हैं ? ऐसा संशय वेदांतवाक्यकी असंभावना है, सो तिनके विचारसे दूरि होवै है और मननसे प्रमेयकी असंभावना दूरि होवै है. जीवब्रह्मकी एकता वेदांतका प्रमेय कहिये है. सो एकता सत्य है। अथवा जीवब्रह्मका भेद सत्य है ? ऐसा जो संशय; सो प्रमेयकी असंभावना कहिये है, सो मननसे दूरि होवै है. विपरीत भावना निदिध्यासनतैं दूरि होवै है. इसरीतिसे प्रथम श्रवण और मनन तो ज्ञानद्वारा

मोक्षका हेतु हैं, और विचाररूप श्रवण, और निदिध्यासन, ये अ-संभावना और विपरीतभावनाकी निवृत्तिद्वारा मोक्षके हेतु हैं. वेदांत नाम उपनिषद्का है सो यद्यपि या ग्रंथतैं भिन्न है, तथापि तिनके समान अर्थवाले भाषावाक्य या ग्रंथ में हैं. तिनके श्रवणतैं भी ज्ञान होवै है यह वार्ता आगे प्रतिपादन करैंगे. इसरीतिसे ज्ञानद्वारा ग्रंथ मोक्षका हेतु है. और विचाररूप मननरूप यह ग्रंथ है यातैं असंभावनादोषकी निवृत्तिद्वारा मोक्षका हेतु है; यातैं " ग्रंथसे मोक्ष होवै नहीं; " यह केवल हठमात्र है.

और जो ऐसे कहै " ग्रंथसे मोक्ष तो होवै है,, परंतु और साधनसे भी मोक्ष होवै है, यातैं ग्रंथका आरंभ निष्फल है. ताकूं यह पूछैं हैं—सो और साधन कौन है, जातैं मोक्ष होवै है ? जो ऐसे कहै—उपनिषद् सूत्रभाष्य से आदिलेके संस्कृत ग्रंथ जीवब्रह्मकी एकताके प्रतिपादक बहुत हैं, तिनसे भी ज्ञानद्वारा मोक्ष होवै है याका भिन्न अधिकारी नहीं. यातै यह ग्रंथ निष्फल है " सो वार्ता यद्यपि सत्य है, तथापि तिनका अर्थ ग्रहण करनेविषे जाकी बुद्धि समर्थ नहीं है, ऐसा जो मुमुक्षु, ताको तिनसे ज्ञान होवै नहीं, यातैं मंदबुद्धि मुमुक्षुकी तिनविषे प्रवृत्ति होवै नहीं; या ग्रंथ विषेही प्रवृत्ति होवैगी.

और जो ऐसे कहै " ग्रंथसे मोक्ष भी होवै है, और संस्कृतग्रंथनसे मंदबुद्धिकूं बोध भी होवै नहीं. और मुमुक्षु भी है तौ भी ग्रंथविषे प्रवृत्ति होवै नहीं. काहेतैं, जो विवेक वैराग्य शमादिमान अधिकारी कह्या सो दुर्लभ है. यातैं आपणेविषे साधनका अभाव

दोखिके ग्रंथमें प्रवृत्ति होवै नहीं." ताकूं यह पूछैं हैं—बहुत अधिकारी नहीं ? अथवा कोई भी नहीं जो ऐसे कहै—"बहुत अधिकारी नहीं" सो तो हमभी अंगीकार करैं हैं. और जो ऐसे कहै—"कोई भी ज्ञानके योग्य अधिकारी नहीं" सो वार्त्ता बनैं नहीं काहेतें, अंतःकरणविषे तीनदोष हैं—एक मल है और विक्षेप है, और स्वरूपका आवरण है। मल नाम पापका है. विक्षेप नाम चंचलताका है और आवरण नाम अज्ञानका है शुभकर्मतैं मलदोष दूरि होवै है और उपासनातैं विक्षेपदोष दूरि होवै है ज्ञानतैं आवरणदोष दूरि होवै है. जिनके अंतःकरणविषे मल और विक्षेपदोष हैं, सो अधिकारी नहीं भी हैं. परंतु इसजन्मविषे अथवा पूर्वजन्मविषे शुभकर्म, और उपासनाके अनुष्ठानतैं जिनके मल और विक्षेपदोष नाश हुवे हैं. ऐसे ज्ञानयोग्य अधिकारी हैं तिनकी ग्रंथमें प्रवृत्ति बनै है.

और जो ऐसे पूर्व कह्या " सर्वकूं विषयसुखमें अलंबुद्धि है. नित्यसुखकूं कोई चाहै नहीं." सो बने नहीं. काहेतैं चारिप्रकारके पुरुष हैं—पामर, विषयी, जिज्ञासु, मुक्त. इस लोकके निषिद्ध और विहित भोगनविषे आसक्त जो शास्त्रसंस्काररहित पुरुष सो पामर कहिये है. शास्त्रके अनुसार विषयनकूं भोगता हुवा परलोकके अथवा इसलोकके भोगनके निमित्त जो कर्म करै सो विषयी कहिये है.

और ऐसा पुरुष जिज्ञासु कहिये है—जो पुरुषकूं उत्तम संस्कारते सच्छास्त्रका श्रवणहोवै, ता उत्तमकूं ऐसा विवेक होवै

है;-विषयसुख अनित्य है. जितनाकाल विषयसुख होवै है, तब भी कोई दुःख अवश्य रहे है. और परिणाममें विनाशी सुख-दुःखका हेतु है, और वर्त्तमानकालमें भी नाशके भयतैं दुःखका हेतु है, इसरीतिसे विषयसुख दुःखतैं ग्रसाहुआ है; यातैं दुःखरूप है. और दुःखकी निवृत्ति लौकिक उपायतैं होवै नहीं काहे तैं, जो उपाय करैं हैं, तिनके भी सारे दुःख निवृत्त होवैं नहीं, और निवृत्त हुवे भी फेरि होवैं हैं, और जितनेकाल शरीर है, तबपर्यंत दुःख-की निवृत्ति संभव भी नहीं, काहेतैं, जो शरीर हैं, सो सारे पुण्य और पापसे होवैं हैं, मनुष्यशरीर तो मिश्रितकर्मका फल प्रसिद्ध है, और देवशरीर भी मिश्रित कर्मकाही फल है, जो केवल पुण्यका फल देवशरीर होवै, तो अपनेसे अधिक अन्यदेवकी विभूति देखिके जो देवनकूं ताप होवै है, सो नहीं हुवा चाहिये. सर्व देवनमें प्रधान जो इंद्र ताकूं भी अनेक दैत्यदानवके भयजन्य दुःख शास्त्रमें कहे हैं. जो देवशरीर केवलपुण्यकाही फल होवै, तो देवनकूं दुःख नहीं हुवा चाहिये. यातैं देवशरीर भी पुण्य पाप दोनोंका फल है. और जो श्रुतिमें कहाहै-" देवता पापरहित हैं, " ताका यह अभिप्राय है;-कर्मका अ-धिकार केवल मनुष्यशरीरमें है, और में नहीं. यातैं देवशरीरमें किया जो शुभ अथवा अशुभ, तिनका फल देवनकूं होवै नहीं. और देवशरीरमें पूर्वशरीरतैं किया जो शुभ और अशुभ, तिनका फल तो देवशरीरमें भी होवैहै. इसरीतिसे देवशरीर मिश्रित कर्मका फल है.

और तिर्यक् पशु पक्षीका शरीर भी मिश्रितकर्मका फल है काहेतैं, जो तिनकं प्रसिद्ध दुःख है सो तो पापका फल है, और मैथुनादिकनका सख है, पुण्यका फल है, उदरसे जो गमन करै, सो तिर्यक् कहिये है. पक्षसे गमन करै, सो पक्षी कहिये है. चार पादसे गमन करै, सो पशु कहिये है. कहूं पशु पक्षी भी तिर्यक्ही कहियें हैं. इसरीतिसे सर्व शरीर पुण्य और पापसे रचित हैं कोई शरीर तो न्यनपाप और अधिकपुण्यतैं रचित है, जैसे देवशरीर है. अपने अपने जो पुण्य हैं, तिनहीत सव देवनविषे पाप न्यूनह. यातैं न्यूनपाप अधिकपुण्यतैं रचित देवशरीर कहिये है. या अभिप्रायतैंही शास्त्रमें केवल पुण्यका फल देवशरीर कहा है; यातैं विरोध नहीं जैसे बहुतब्राह्मणोंसे ब्राह्मणग्राम कहिये है; तैसे अधिकपुण्यका फल होने तैं देवशरीर केवल ुण्यका फल कहिये है. परंतु केवल पुण्यका फल नहीं.

तिर्यक् पशु पक्षीका शरीर अधिकपाप न्यनपुण्यसे रचित है. जो उत्तममनुष्य हैं, तिनकी देवनके समान रीति है. और नीचनकी सर्पादिकनके समान है. इसरीतिसे सर्वशरीर पुण्यपाप रचित हैं. और पापका फल :ख है; यातैं शरीर रहै तबपर्यंत दुःखकी निवृत्ति होवै नहीं. सो शरीर, धर्म और अधर्मका फल है. तिनकी निवृत्ति विना शरीरकी निवृत्ति होवै नहीं. काहेतैं, वर्तमानशरीर दरि हुयेसे भी पुण्यपापतैं और शरीर होवेगा. यातैं पुण्य पापकी निवृत्तिविना शरीरकी निवृत्ति होवे नहीं; सो पुण्य पाप रागद्वेषके नाशविना दरि होवे नहीं; काहेतैं वर्त्तमानपुण्यपापके भोगसे निवृत्ति हुयेसे भी राग-

द्वेष और ते पुण्यपाप होवैं गे. यातैं रागद्वेषकी निवृत्तिविना पुण्य पाप दूरि होवैं नहीं. सो राग द्वेष अनुकूलज्ञान और प्रतिकूलज्ञानसे होवैं हैं; जाविषे अनुकूलज्ञान होवै; ताविषे राग होवै है; और जाविषे प्रतिकूलज्ञान होवै; ताविषे द्वेष होवै है यातैं अनुकूलज्ञान और प्रतिकूलज्ञानकी निवृत्तिविना रागद्वेषकी निवृत्ति होवै नहीं. सो अनुकूलज्ञान और प्रतिकलज्ञान भेदज्ञानसे होवै है. काहेतें जा वस्तुको अपने स्वरूपतें भिन्न जानैं, ताकेविषे अनुकूलज्ञान अथवा प्रतिकूलज्ञान होवै है. अपने स्वरूपमें अनकूलज्ञान और प्रतिकूलज्ञान होवै नहीं सुखके साधनका नाम अनुकूल है, आर दुःखके साधनका नाम प्रतिकूल है. अपना स्वरूप सुखका अथवा दुःखका साधन नहीं. यद्यपि सुखरूप है तथापि सुखका साधन नहीं. यातैं स्वरूपसैं भिन्न जोवस्तु जानी है, ताविषे अनुकूलज्ञान और प्रतिकूलज्ञान होवैहै, इसरीतिसे पदार्थनविषे अपनेसे जो भेदज्ञान, सो अनुकूलज्ञान और प्रतिकूलज्ञानका हेतु है. ता भेदज्ञानकी निवृत्तिविना अनुकूलज्ञान प्रतिकूलज्ञानकी निवृत्ति होवै नहीं. सो भेदज्ञान अविद्याजन्य है काहेतें, संपूर्णप्रपंच और ताका ज्ञान स्वरूपके अज्ञानकालमें है; यह संपर्ण वेद अरु शास्त्रका ढँढोरा है. इसरीतिसे संपूर्णदुःखका हेतु स्वरूपका अज्ञान है, सो स्वरूपका अज्ञान, स्वरूपज्ञानविना दूरि होवै नहीं. काहेतैं-जा वस्तुका अज्ञान होवै, सो ताके ज्ञानसे दूरि होवै है, जैसे रज्जुका अज्ञान रज्जु के ज्ञानसे दूरिहोवै है,औरसे नहीं. यातैं स्वरूपका ज्ञानही अज्ञानकी निवृत्ति द्वारा दुःखकी निवृत्तिका हेतु है. और स्वरूपज्ञानसे

ब्रह्मकी प्राप्ति होवै है. सो ब्रह्म नित्यहै और आनंदस्वरूप है, दुःखसंबंधसे रहित है. यातैं स्वरूपज्ञानसे नित्य और दुःखके संबंधसे रहित, जो ब्रह्म स्वरूप आनंद ताकी प्राप्ति भी होवै है इसरीतिसे दुःखकी निवृत्ति और परमानंदकी प्राप्तिका हेतु स्वरूपज्ञान है. यातैं स्वरूप जाननेकूं योग्य है. ऐसा जाके विवेक होवे, सो जिज्ञासु कहिये है. स्थूल सूक्ष्म कारण शरीरतैं भिन्न जो अपना स्वरूप, ताका ब्रह्मरूप करिकै अपरोक्षज्ञान जाकूं होवै; सो मुक्त कहिये है.

इसरीतिसे चारिप्रकारके पुरुष हैं तिनविषे पामर और विषयीकूं तो यद्यपि विषय सुखमेंही अलंबुद्धि हैं, और किसी विषयीकूं परसुखकी इच्छाभी होवै; तब भी ताके जो उपाय नहीं हैं तिनमें उपायबुद्धि करिकै प्रवृत्त होवै है. काहेतैं उपायका ज्ञान सत्संग और सच्छास्त्रके श्रवणतैं होवै है; सो ताके है नहीं यातैं पामर और विषयीकी सुखप्राप्तिके निमित्त ग्रंथमें प्रवृत्ति होवै नहीं दुःखकी निवृत्तिके निमित्त भी दोनों अन्यउपायनमें प्रवृत्त होवैं है, ताके निमित्त भी ग्रंथमें प्रवृत्ति होवै नहीं यातैं विषयी और पामरकी ग्रंथमें प्रवृत्ति होवै नहीं. और मुक्तकी प्रवृत्ति भी होवै नहीं काहेतैं ज्ञानवान् मुक्त कहिये है. सो ज्ञानी कृतकृत्य है ताकूं कुछ कर्तव्य नहीं यह वार्ता आगे प्रतिपादन करैंगे और लीला-करिकै मुक्त प्रवृत्त होवै, तो भी मुक्तकूं ग्रंथमें प्रवृत्तिसे कोई प्रयोजन सिद्ध होवै नहीं यातै मक्तके निमित्त भी ग्रंथ नहीं. तथापि जिज्ञासु जो पुरुष है, ताकूं विषयसुखमें अलंबुद्धि होवै नहीं. किंतु

परम सुखकी ताकूं इच्छा है, और दुःखकी अत्यंत करिकै निवृत्ति-की इच्छा है, सो परमसुखकी प्राप्ति और दुःखकी अत्यंत निवृत्ति, ज्ञानसे बिना होवै नहीं. ऐसा जाकं सत्संगसे विवेक है; ताकी-ग्रंथमें प्रवृत्ति बनै है. इसरीतिसे मोक्षकी इच्छावान् अधिकारी बनै है ॥

दोहा।

साक्षी ब्रह्म स्वरूप इक, नहीं भेदको गंध।
राग द्वेष मतिके धरम, तामैं मानत अंध ॥ १२ ॥

टीका—पूर्व कह्या जो "जीव रागादिक क्लेशसहित है; और ब्रह्म क्लेशरहित है.यातैं जीवब्रह्मकी एकता ग्रंथका विषय बनै नहीं" यह वार्ता यद्यपि सत्य है, तथापि रागद्वेषसैं रहित जो साक्षी है, ताकी ब्रह्मसे एकता बनै है. और जा पूर्व कह्या "कर्त्ताभोक्तासे भिन्न साक्षी वंध्यापुत्रके समान असत् है" सो बनैं नहीं. काहेतैं कर्त्ता भोक्ता जो संसारी, ताके विशेषभागका नाम साक्षी है. जो साक्षीका निषेध करैं. तो संसारीके विशेषभागका निषेध होणैतैं, कर्त्ता भोक्ता जो संसारी, ताकाही निषेध होवैगा. एकही चेतनके विषे साक्षीभावकी अंतःकरण उपाधि है.और कर्त्ता भोक्तापनेका विशेषण है. विशेषणसहित विशिष्ट कहिये है. उपाधिवाला उपहित कहिये है. जो वस्तु जितने देशमें आप होवै, उसदेशमें स्थित वस्तु कूं जनावै, और आप पृथक् रहै, सो उपाधि कहिये है. जैसैं नैया-यिक मतमें कर्णगोलकवृत्ति आकाश श्रोत्र कहिये है सो कर्णगोलक

श्रोत्रकी उपाधि है. काहेतैं सो कर्णगोलक जितने देशमें आप है उतने देशमें स्थित आकाशकूं श्रोत्ररूप करिके जनावै है, और आप पृथक् रहै है. यातैं कर्णगोलक श्रोत्रकी उपाधि है तैसे अंतःकरण भी जितने देशमें आप है, उतने देशमें स्थित चेतनकूं साक्षी संज्ञा करिकै जनावै है, आप पृथक् रहै है.यातैं अंतःकरण साक्षीकी उपाधि है. यातैं यह अर्थ सिद्ध हुवा—अंतःकरणविषे वृत्ति जो चेतन मात्र सो साक्षी कहिये है.

अपनेसहित वस्तुकूं जो जनावै, सो विशेषण कहिये है जैसे "कुंडलवाला पुरुष आया है" या स्थानमें पुरुषका कुंडल विशेषण है. काहेतैं. अपनेसहित पुरुषका आगमन कुंडल जनावै है, यातैं विशेषण है "नीलरूपवान् घटकूं मैं देखूं हूं" या स्थानमेंभी नीलरूप घटका विशेषण है तैसे अंतःकरणभी कर्त्ता भोक्ता जो जीवचेतन, ताका विशेषण है. काहेतैं, अंतःकरणसहित चेतनकूं कर्त्ताभोक्तारूपकरिकै अंतःकरण जनावै है. यातैं संसारीका अंतःकरणविशेषण है. यातैं यह सिद्ध हुवा—अंतःकरणविषे वृत्ति चेतन और अंतःकरण, संसारी कहिये हैं. या अर्थकूं विस्तारसे आगे कहैंगे.

रागद्वेषादिक क्लेश संसारीविषे हैं, और साक्षीविषे नहीं. संसारीका भी जो विशेषण अंतःकरण है, ताके विषे हैं और विशेष्य जो चैतन्य, ताके विषे नहीं. काहेतैं, संसारीविषे विशेष्य जो चैतन्यभाग,ताका साक्षीसे भेद नहीं.काहेतैं,एकही चैतन्य अंतःकरणसहित संसारी है और अंतःकरणभागत्यागिकै साक्षी कहिये है,

यातैं साक्षीका और संसारीके विशेष्यभागका भेद नहीं. जो विशेष्यभागमें क्लेश अंगीकार करैं, तब साक्षीमें भी अंगीकार करने होवैंगे. और "साक्षी सर्वक्लेशरहित है" यह वेदका सिद्धांत है. यातैं संसारीके विशेष्यभागमें क्लेश नहीं किंतु विशेषणमात्र अंतःकरणमें है. इस अभिप्रायतैं दाहक तृतीयपादमें रागद्वेष बुद्धिके धर्म कहे, और जीवके नहीं कहे, इसरीतिसे अंतःकरणविशिष्टकी ब्रह्मसे एकता नहीं भी बनै, परंतु अंतःकरणउपहित जो साक्षी ताकी ब्रह्मसे एकता बनै है.

और जो पूर्व कह्या. "साक्षी नाना हैं, और ब्रह्म एक है, यातैं नानासाक्षीकी एकब्रह्मसे एकता बनै नहीं. और जो व्यापक एकब्रह्मतैं साक्षीका अभेद अंगीकार करोगे, तो साक्षी भी सर्वशरीरमें व्यापक एकही होवैगा. यातैं सर्वशरीरके सुख दुःख भान हुए चाहियें" सो शंका बनै नहीं, काहेतैं, यद्यपि ईश्वरसाक्षी एक है,और जीवसाक्षी नाना हैं, और परिच्छिन्न हैं, तौभी व्यापक ब्रह्मसे भिन्न नहीं. जैसे घटाकाश नाना हैं, और परिच्छिन्न हैं, तो भी महाकाशसे भिन्न नहीं, किंतु महाकाशरूपही घटाकाश है. तैसे नाना जो परिच्छिन्नसाक्षी, सो भी ब्रह्मरूपही हैं.

और जो पूर्व कह्या, "सुखदुःख अंतःकरणकी वृत्तिके विषय नहीं"सो असंगत है काहेतैं,सो यद्यपि सुख दुःख साक्षी भास्य है,सो साक्षी नाना हैं, तथापि जब अंतःकरणका परिणाम सुखरूप वा दुःखरूप होवे, ताही समय अंतःकरणकी ज्ञानरूप वृत्ति सुखदुःखकूं विषय करनेवाली होवै है. ता वृत्तिमें आरूढ साक्षी तिनकूं प्रकाशै

है. इसरीतिसे ग्रंथकारोंने सुखदुःख साक्षी के विषय कहे हैं. वृत्तिविना केवलसाक्षीके विषय नहीं. या स्थानमें यह रहस्य है— आकाशमें घटाकाश नाम और जलका आनयनरूप जो कार्यप्रतीतहोवै है, सो घटरूप उपाधिकी दृष्टि से प्रतीत होवै है; घटरूप उपाधिकी दृष्टि विना घटाकाश नाम और जलका आनयनरूप कार्य प्रतित होवै नहीं. किंतु आकाश मात्रही प्रतीत होवै. यातैं घटाकाश महाकाशरूप है. तैसैं चेतन विषे साक्षी नाम और धर्मसहित अंतःकरणका प्रकाशरूप कार्य, अंतःकरणरूप उपाधिकी दृष्टिसे प्रतीत होवै है. और अंतःकरणरूप उपाधिकी दृष्टिविना साक्षी नाम और धर्मसहित अंतःकरणका प्रकाशरूप कार्य प्रतीत होवै नहीं. किंतु चैतन्य मात्र ब्रह्मही प्रतीत होवै; यातैं साक्षी ब्रह्मरूप है. या अभिप्रायतैं दोहेके प्रथमपादमें साक्षी एक कह्या. काहेतैं, उपाधिकी दृष्टिविना साक्षीमें नानापना और परिच्छिन्नभाव प्रतीत होवै नहीं. सो साक्षी जीवपदका लक्ष्य है, यह वार्ता आगे कहैं गे. इसरीतिसे जीव ब्रह्मकी एकता ग्रंथता विषय बनै है ॥ १२ ॥

अथ कार्याध्यासनिरूपणम्–कवित्त ।

सजातीयज्ञान संसकारते अध्यास होत,
सत्यज्ञानजन्य संसकारको न नेम है ।
दोषको न हेतुता अध्यासविषे देखियत,
पटविषे हेतु जैसे तुरी तंतु वेम है ॥
आतमा द्विजाती शंख पीत सीता कटु भासे,

सीपमें विरागी रूप देखै बिनप्रेम है ।
नभ नील रूपवान भासत कटाह तंबू,
जितके न कोउ पित्त प्रभृति अक्षेम है ॥ १४ ॥

टीका—पूर्व कह्या जो " बंध सत्य है, ताकी ज्ञानसे निवृत्ति होवै नहीं. " और मिथ्यावस्तुकी ज्ञानसे निवृत्ति होवै है. आत्मामें मिथ्याबंधकी सामग्री है नहीं; यातैं बंध सत्य है. "ताकी ज्ञानसे निवृत्ति होवै नहीं. " सो वार्त्ता बनै नहीं. काहेतैं बंध मिथ्या है, ताकी ज्ञानसे निवृत्ति बनै है.

और पूर्व कह्या जो " सत्यवस्तुका ज्ञान संस्कारद्वारा अध्यासका हेतु है. जैसे सत्यसर्पका ज्ञान संस्कारद्वारा सर्पअध्यासका हेतु है, तैसे सत्यबंध होवै तो सत्यबंधका ज्ञान होवै, सो सिद्धांतमें अनात्मवस्तु कोई सत्य है नहीं. यातैं सत्यवस्तुका ज्ञान जो संस्कारद्वारा अध्यासकी सामग्री, ताका अभाव होणेतैं बंध अध्यास नहीं, किंतु सत्य है. " सो शंका बनैं नहीं. काहेतैं, अध्यासविषे संस्कारद्वारा सत्यवस्तुका ज्ञान हेतु नहीं किंतु वस्तुका ज्ञान हेतु है. सो वस्तु सत्य होवै अथवा मिथ्या होवै. जो सत्यवस्तुका ज्ञानही अध्यासविषे हेतु होवै, तो जा पुरुषने सत्य छुहारेका वृक्ष नहीं देख्या होवै और बाजीगरका बनाया मिथ्या छुहारेका वृक्ष बहुतबार देखा होवै; और बाजीगरसे ऐसा सुन्या होवै; जो "यह छुहारेका वृक्ष है. " और खजूरका वृक्ष कभी देखा सुन्या होवै नहीं, ताकूं खजूरका वृक्ष देखिके छुहारेका

अध्यास होवै है; सो नहीं हुवा चाहिये. काहेतैं सत्य छुहारेका ताकूं ज्ञान है नहीं और हमारी रीतिसे तौ बाजीगरका देखा जो मिथ्या छुहारा ताका ज्ञान है, यातैं अध्यास बनै है. यातैं सजातीय वस्तुके ज्ञानजन्य संस्कारही अध्यासके हेतु हैं. सो संस्कारका जनक ज्ञान, और ताका विषय मिथ्या होवै, अथवा सत्य होवै, संस्कारद्वारा ज्ञान हेतु है. और "ज्ञानजन्य संस्कारहेतु हैं." या कहनेमें अर्थका भेद नहीं, एकही अर्थ है काहेतैं संस्कारद्वारा ज्ञान हेतु है. याका अर्थ यह है:—ज्ञान संस्कारका हेतु है और संस्कार अध्यासका हेतुहै, यातैं संस्कारद्वारा ज्ञानकूं हेतुता कहनेतैं भी ज्ञानजन्य संस्कारकूंही अध्यासविषे हेतुता सिद्ध होवै है.

और केवल वस्तुके ज्ञानकूंही अध्यासविषे हेतु कहैं तो बनै नहीं; काहेतैं, यह नियम है:—"जो हेतु होवै सो कार्यसे अव्यवहितपूर्वकालमें होवै है." जैसे घटका हेतु दंड है, सो घटसे अव्यवहितपूर्वकालमें होवै है. तैसे अध्यासका हेतु ज्ञान अंगीकार करें, सो भी अध्यासतैं अव्यवहितपूर्वकालमें चाहिये. सो बनै नहीं. काहेतैं, जा पुरुषकूं सर्पका ज्ञान होवै ताकूं ज्ञानसे महीने पीछेभी रज्जुविषे सर्पका अध्यास होवै है, सो नहीं हुवा चाहिये. काहेतैं जो रज्जुमें, सर्पअध्यासका हेतु सर्पका ज्ञान है, ताका नाश हो गया, यातैं अव्यवहितपूर्वकालमें है नहीं, यद्यपि पूर्वकालसे तो है, तथापि अव्यवहितपूर्वकालमें है नहीं, अंतरायरहितका नाम अव्यवहित है, और अंतरायसहितका नाम व्यवहित है. और जो ऐसे

कहैं:-कार्य तैं पूर्वकालमें हेतु चाहिये, व्यवहित पूर्वकालमें होवै. अथवा अव्यवहितपूर्वकालमें होवै और " कार्यतैं अव्यवहितपूर्वकालमेंही हेतु होवै है." ऐसा नियम अंगीकार करें तो " विहितकर्म स्वर्गप्राप्तिका हेतु है, और निषिद्धकर्म नरकप्राप्तिका हेतु है" यह शास्त्रकी वार्त्ता अप्रमाण हो जावेगी. काहेतें; कायिक, वाचिक, मानसिक क्रियाका नाम कर्म है. सो क्रिया अनुष्ठानकालसे अनंतरही नाश हो जावै है. और स्वर्ग नरक कालांतरमें होवैं हैं. यातैं स्वर्ग नरकप्राप्तिके अव्यवहितपूर्व कालमें विहित कर्म और निषिद्ध कर्म हैं नहीं. जैसे व्यवहितपूर्वकालमें शुभकर्म, और अशुभकर्म, स्वर्गप्राप्ति और नरकप्राप्तिके हेतु हैं. तैसे "व्यवहितपूर्वकालमें जो सर्पका ज्ञान; सो भी रज्जुमें सर्पअध्यासका हेतु है," सो वार्त्ता बनै नहीं. काहेतें; जैसे नष्ट, ज्ञान और नष्टकर्म तैं अध्यास और स्वर्गनरककी प्राप्ति अंगीकार, करी; तैसे मृत कुलाल और नष्टदंडसेभी घट हुआ चाहिये. काहेतें जैसे रज्जुमें सर्पअध्यासते व्यवहितपूर्वकालमें सर्पका ज्ञान है. और स्वर्गनरककी प्राप्तितैं व्यवहितपूर्वकालमें शुभअशुभकर्म हैं; तैसे घटतैं व्यवहितपूर्वकालमें नष्टदंड और मृत कुलालभी हैं, तिनतैंभी घट हुवा चाहिये. सो होवै नहीं यातैं व्यवहितपूर्वकालमें जो वस्तु होवै सो हेतु नहीं किंतु अव्यवहित पूर्वकालमें जो वस्तु होवै, सोई हेतु होवै है. और शुभअशुभकर्म भी कालांतरभावी जो स्वर्गनरककी प्राप्ति. ताके हेतु नहीं किंतु शुभकर्म तो अपनेतैं अव्यवहितउत्तरकालमें धर्मकी उत्पत्ति करै है.

अशुभकर्म अधर्मकी उत्पत्ति करै है. सो धर्म अधर्म अंतःकरणविषे रहैं हैं, तिनतैं कालांतरमें स्वर्ग और नरककी प्राप्ति होवै है. तासे अनंतर धर्म अधर्मका नाश होवै है, इस अभिप्रायसेही शास्त्रमें शुभकर्म और अशुभकर्म अपूर्वद्वारा फलके हेतु कहे हैं; साक्षात्‌ नहीं अपूर्व नाम धम अधर्मका है; और अदृष्ट भी तिनकूं कहैं हैं, और पुण्यपापभी तिनकूंही कहैं हैं. और कहूं धर्म अधर्मकी जनक जो शुभअशुभक्रिया है, ताकूंभी धर्म अधर्म कहैं हैं. जैसे कोई शुभ-क्रिया करता होवै, ताकूं लोक ऐसा कहैं हैः—"यह धर्म करैहै" और अशुभक्रिया करनेवालेकूं ऐसा कहैं हैः—यह "अधर्मकरै है" सो शुभअशुभ क्रियाका नाम धर्म अधर्म नहीं; किंतु शुभअशुभक्रिया धम अधर्मकी जनक है. यातैं क्रियाकूं धर्म अधर्म कहैं हैं, जैसे आयुका वर्धक जो घृत है; ताकूं शास्त्रमें आयु कहैं हैं. इसरीतिसे अव्यवहितपूर्वकालमें हेतु होवै है.

और रज्जुमें सर्पअध्यासतैं अव्यवहितपूर्वकालमें सर्पका ज्ञान है नहीं। यातैं सर्पका ज्ञान रज्जुमें सर्पअध्यासका हेतु नहीं, किंतु सर्पज्ञानजन्य संस्कारही रज्जुमें सर्पअध्यासका हेतु है, तैसे सीपीमें रूपा अध्यासका हेतु रूपाज्ञानजन्य संस्कार है. इसरीतिसे सारे संस्कारही अध्यासके हेतुहैं और वस्तुका ज्ञान संस्कारका हेतु है. जैसे शुभअशुभकर्मजन्य धर्म अधर्म अंतःकरणमें रहैं हैं, तैसे वस्तुके ज्ञानजन्य संस्कारभी अंतःकरणमें रहैंहैं जा पुरुषकूं पूर्व सर्पका ज्ञान नहीं हुवा ताके भी और वस्तुके ज्ञानजन्य संकार तो हैं; परंतु रज्जुमें सर्पका अध्यास होवै नहीं. जा वस्तुका अध्यास होवै; ताके सजातीय

वस्तुके ज्ञानका संस्कार अध्यासका हेतुहै, विजातीयके ज्ञानके संस्कार हेतु नहीं, सर्पके सजातीय सर्प होवैं हैं और नहीं. सर्पका जाकूं पूर्व ज्ञान नहीं, अन्यवस्तुका ज्ञान है, ताकूं सजातीय वस्तुके ज्ञान जन्य संस्कार नहीं, यातैं रज्जुमें सर्पका अध्यास होवै नहीं, सूक्ष्म अवस्थाका नाम संस्कार है इसरीतिसे अध्यासतैं पूर्व जो सजातीय वस्तुका ज्ञान ताके संस्कार अध्यासके हेतु हैं "और सत्यवस्तुके ज्ञानके संस्कारही अध्यासके हेतु हैं; मिथ्यावस्तुके ज्ञानके नहीं". यह नियम नहीं. यह वार्त्ता छुहारेके दृष्टांतसे प्रतिपादन करी है, यातैं मिथ्या वस्तुके ज्ञानजन्य संस्कारभी अध्यासके हेतुहैं.

सो बंधके अध्यासविषे भी बनैं हैं. काहेतैं, जो अहंकारसे आदिलेके अनात्मवस्तु, और ताका ज्ञान बंध कहिये है. "सो अनात्मवस्तु, रज्जुके सर्पकी न्याईं जब प्रतीत होवै तबही है, और प्रतीत नहीं होवै तब नहीं." यह हमारा वेदसंमत सिद्धांत है. इस कारणतेंही सुषुप्तिविषे सर्वप्रपंचका अभाव प्रतिपादन किया है. सुषुप्तिमें कोई पदार्थ प्रतीत होवै नहीं. यातैं सर्वप्रपंचका सुषुप्तिमें लय होवै है. इस का नाम शास्त्रमें दृष्टिसृष्टिवाद कहैं हैं. या अर्थकूं आगे प्रतिपादन करैंगे. इस रीतिसे अनंत अहंकारादिक और तिनके ज्ञान उत्पन्न होवैं हैं और लय होवैं हैं. अहंकारादिक और तिनके ज्ञानकी साथही उत्पत्ति लय होवैं हैं. जब अहंकारादिकोंकी प्रतीतिकी उत्पत्ति होवैहै; तब अहंकारादिकोंकी उत्पत्ति होवै है. और प्रतीतिका लय होवै तब अहंकारादिकनका लय होवै है. अहंकारादिक और तिनके ज्ञानका नाम

अध्यास है. यह वार्त्ता अनिर्वचनीयख्यातिके प्रतिपादनमें कहैं गे, यद्यपि अहंकार साक्षिभास्य है, यह वार्त्ता विषयप्रतिपादनमें कही है, यातैं अहंकारकी प्रतीति साक्षिरूप है, ताकी उत्पत्ति और लय बनै नहा तथापि अहंकारका भी वृत्तिसेही साक्षी प्रकाश करै है; साक्षात् नहीं ता वृत्तिकी उत्पत्ति लय होवै है. यातैं अहंकारकी प्रतीतिकी उत्पत्ति लय कहिये है इसरीतिसे उत्तर उत्तर अहंकारादिक और तिनके ज्ञानकी जो उत्पत्ति, ताके हेतु पूर्व पूर्व मिथ्या अहंकारादिकोंके ज्ञानजन्य संस्कार बनैं हैं.

और जो ऐसे कहैं—उत्तर उत्तर अहंकारादिकोंके अध्यासविषे तो यद्यपि पूर्व पूव अध्यासके संस्कार हेतु बनैं हैं; तथापि प्रथम उत्पन्न जो अहंकार, और ताका ज्ञान, ताके हेतु संस्कार बनैं नहीं काहेतैं जो ताके पूव और अहंकार उत्पन्न हुआ होवै तो ताके ज्ञानके संस्कारभी होवैं सो प्रथम अहंकार पूव और अहंकार हुवा नहीं. तैसे " सर्ववस्तुके प्रथम अध्यासक हेतु संस्कार बनैं नहीं " यह शंका भी सिद्धांतके आज्ञानसे होवै है, काहेतैं—यह वेदांतका सिद्धांत है—एक ब्रह्म, और ईश्वर, जीव, अविद्या और अविद्याका चैतन्यसे संबंध, और अनादिवस्तुका भेद, यह षट्वस्तु स्वरूपसे अनादि हैं जा वस्तुका उत्पत्ति होवे नहीं, सो वस्तु स्वरूपसे अनादि कहियें हैं इन षट्की उत्पात्ति होवे नहीं यातैं स्वरूपसे अनादि हैं और अहंकारादिकनकी ता श्रुतिमें उत्पत्ति कही है; यातैं स्वरूपसे अनादि यद्यपि अहंकारादिक नहीं, तथापि प्रवाहरूपतैं सर्ववस्तु अनादि हैं सर्ववस्तुका प्रवाह दूरि होवै

नहीं. अनादि कालमें ऐसा समय कोई पूर्व हुवा नहीं, जा समय कोई घट होवे नहीं. यातैं घटका प्रवाह अनादि है इसरीतिसे सर्ववस्तुका प्रवाह अनादि है. प्रलयकालमें भी सुषुप्तिकी न्याई सर्व वस्तु संस्काररूप होयके रहैं हैं. यातैं प्रपंचका प्रवाह अनादि होनेंते, प्रपंच अनादि कहिये है. ऐसा जाकूं ज्ञान नहीं है, ताकूं यह शंका होवै है, " जो प्रथम अध्यासके हेतु संस्कार बनैं नहीं. " और सिद्धांतमें किसी अहंकारादिक वस्तुका अध्यास सर्वसे प्रथम है नहीं, किंतु अपनेसे पूर्व पूर्व अध्यासते संपूर्ण उत्तर हैं; याते शंका बने नहीं. इसरीतिसे सजातीयके पूर्व ज्ञानजन्य संस्कार से अहंकारादिक बंधका अध्यास बनै है; यह प्रथमपादका अर्थ है.

और जो पूर्व कह्या " तीन प्रकारका दोष अध्यासका हेतु है. और बंधके अध्यासमें कोई भी दोष बने नहीं. याते बंध सत्य है, " सो शंका बनैं नहीं. काहेतैं, जो दोषते विना अध्यास होवे नहीं; तो अध्यासका हेतु दोष होवे; जैसे तुरी तंतु वेम पटके हेतु हैं. तुरी तंतु वेम होवें तो पट होवे, और नहीं होवें तो पट होवे नहीं तैसे दोष अध्यासके हेतु नहीं काहेतैं, सादृश्यदोषविना आत्मामें जातिका अध्यास होवै है. ब्राह्मणत्वसे आदिलेके जो जाति है सो स्थूलशरीरका धर्म है, आत्माका और सूक्ष्मशरीरका धर्म नहीं. काहेते, और शरीरकूं प्राप्त होवे, तब आत्मा और सूक्ष्मशरीर तो जो पूर्व शरीरमें है सोई रहै है जाति और भी होवैं है यह नियम नाहिं—"जो पूर्व शरीरमें जाति है, सोई

उत्तरशरीरमें होवे है." आत्माका अथवा सूक्ष्मशरीरका धर्म जाति होवे, तो उत्तरशरीरविषे और जाति नहीं हुई चाहिये. यातैं आत्माका और सूक्ष्मशरीरका धर्म जाति नहीं; किंतु स्थूलशरीरका धर्म है. और "मैं द्विजाति हूं" इसरीतिसे ब्राह्मणत्व, क्षत्रियत्व, वैश्यत्व जातिका आत्मामें भान होवैं हैं. याते आत्मामैं जातिका अध्यास है जैसे रज्जमें सर्पपरमार्थसे नहीं है, और भान होवै है, यातैं रज्जमें सर्पका अध्यास है. तैसे आत्मामें जाति नहीं है; और भान होवे है; याते आत्मामें जातिका अध्यास है और आत्माके साथ जातिका सादृश्य नहीं है, काहेतैं आत्मा व्यापक है. और जाति परिच्छिन्न है. आत्मा प्रत्यक् है, और जाति प राक् है. आत्मा विषयी है, और जाति विषय है. इसरीतिसे आत्मामें विरोधिजातिकाभी अध्यास होवै है. द्विजाति नाम त्रिवर्णका है. जैसे आत्माविषे सादृश्यते विना जातिका अध्यास होवैं है, तैसे सादृश्यविना अहंकारादिक बंधका अध्यास भी आत्मामें बनैं है. सादृश्यदोष अध्यासका हेतु नहीं जो सादृश्यदोष अध्यासका हेत होवे, तो आत्मामें जातिका अध्यास नहीं हुवा चाहिये. और शंखमें पीतताका अध्यास नहीं हुवा चाहिये, और मिश्रीमें कटुताका अध्यास नहीं हुवा चाहिये. काहेतैं श्वेत और पीतका विरोध है; सादृश्य नहीं. तैसे मधुर और कटुका विरोध है, सादृश्य नहीं. यातैं अधिष्ठानमें मिथ्यावस्तुका सादृश्यदोष अध्यासका हेतु नहीं.

तैसे प्रमाताका, लोभ भयादिक दोष भी अध्यासका हेतु नहीं

काहेते जो लोभरहित वैराग्यवान्पुरुष है ताकू भी सीपीमें रूपेका अध्यास होवै है; सो नहीं हुवा चाहिये. याते प्रमाताका दोष भी अध्यासका हेतु नहीं और प्रमाणका दोष भी अध्यासका हेतु नहीं. काहेते, सर्वपुरुषनकूं रूपरहित जो आकाश है, सो नीलरूपवाला प्रतीत होवै है और कटाहके तथा तंबूके आकार प्रतीत होवैं हैं, याते सर्वकूं आकाशमें नीलरूपका कटाहका, तथा तंबूका अध्यास है. और सबके नेत्ररूपप्रमाणदोष कहना बनैं नहीं. याते प्रमाणका दोष अध्यासका हेतु नहीं. आकाशमें नीलादिकोंका जो अध्यासहै, ताके विषे एक प्रमाण दोषकाही अभाव नहीं है; किंतु सर्वदोषोंका अभाव है सादृश्यभी नहीं, और प्रमाताका दोष भी नहीं, जैसे सर्वदोषके अभावते भी आकाशमें नीलादिकनका अध्यास होवै है, तैसे आत्माविषे भी बंधका अध्यास दोषविनाही बनैं है. यातैं " दोषके अभावतैं बंध अध्यासरूप नहीं " यह शंका बने नहीं. काहेतैं सर्व दोषका अभाव भी है; तौभी आकाशमें नीलादिकनका अध्यास सर्वपुरुषनकूं होवै है, यातैं दोष अध्यासका हेतु नहीं. कवित्वके चतुर्थपादका यह अर्थ है—जिनके कोई पित्तप्रभृति कहिये पित्तसे आदिलेके, अक्षेम कहिये, दोष नहीं हैं, तिनको भी आकाश नीलरूपवान्, और कटाहाकार, आर तंबके आकार भासै है. यातैं प्रमाणदोष अध्यासका हेतु नहीं. क्षेम नाम कशलका है. ताका विरोधी जो प्रमाणदोष सो अक्षेम कहिये है. ज्ञानका साधन जो इंद्रिय सो प्रमाण कहिये है. इसरीतिसे दोष अध्यासके हेतु नहीं. याते बंधके अध्यासमें दोष की अपेक्षा नहीं. और

संक्षेपशारीरकमें बंधके अध्यास समय दोष भी प्रतिपादन किये हैं विस्तारके भयसे हमने नहीं लिखे. और अध्यासके हेतु जो दोष होवैं, तो दोष निरूपण करते सो दोष अध्यासके हेतु नहीं हैं, यातें दोपका भी निरूपण नहीं किया ॥ १३ ॥

अथ कारणाध्यासनिरूपण-दोहा।

चित् सामान्य प्रकाशते, नहीं नशे अज्ञान ॥
लहै प्रकाश सुषुप्तिमैं, चेतनते अज्ञान ॥ १४ ॥

टीका-पूर्व कह्या जो " विशेषरूपसे अज्ञानवस्तुमें अध्यास होवै है. और आत्मा स्वयंप्रकाश है, ताके विषे अज्ञान बनै नहीं काहेतें, तमका और प्रकाशका परस्पर विरोध है. यातैं जैसे अत्यंतप्रकाशमें स्थित रज्जुमें सर्पका अध्यास होवे नहीं. तैसे स्वयंप्रकाश आत्मामें बंधका अध्यास बने नहीं. " सो शंका भी बने नहीं, काहेते, यद्यपि आत्मा प्रकाशरूप है; तथापि आत्माका स्वरूपप्रकाश, अज्ञानका विरोधी नहीं; जो आत्मस्वरूपप्रकाश अज्ञानका विरोधी होवै तौ सुषुप्तिमें प्रकाशरूप आत्माविषे अज्ञान प्रतीत होवै है, सो नहीं हुवा चाहिये. घोरनिद्रासे जाग्या जो पुरुष है, ताकं ऐसा ज्ञान होवै है-" मैं सुखसे सोया और कछु भी नहीं जानता हुआ. " या ज्ञानका सुख और अज्ञान विषय है. सो सुख और अज्ञानका जो जाग्रत्में ज्ञान है, सो प्रत्यक्षरूप नहीं. काहेतैं, जा ज्ञानका विषय

सन्मुख होवै, सो ज्ञान प्रत्यक्षरूप होवै है. और जाग्रत्कालमें सुख और अज्ञान हैं नहीं. यातैं जाग्रत्‌में सुख और अज्ञानका ज्ञान प्रत्यक्षरूप नहीं; किंतु स्मृतिरूप है. सा स्मृति अज्ञातवस्तुकी होवै नहीं किंत ज्ञानवस्तुकी होवै है यातैं सुषुप्तिमें सुख और अज्ञानका ज्ञान है; सो सुषुप्तिका ज्ञान अंतःकरण और इंद्रियजन्य तो हैं नहीं काहेतैं, सुषुप्तिमें अंतःकरण और इंद्रियका अभाव है. यातैं सुषुप्तिमें आत्मस्वरूपही ज्ञान है ज्ञान और प्रकाशका एकही अर्थ है, इसरीतिसे सुषुप्तिमें आत्मा प्रकाशरूप है. ता प्रकाशरूप आत्मा स्वरूपसुख और अज्ञानकी प्रतीति होवै है. जो आत्मस्वरूपप्रकाश, अज्ञानका विरोधी होवै, तो सुषुप्तिमें अज्ञानकी प्रतीति नहीं हुई चाहिये यातैं आत्मा प्रकाशरूप तो है, परंतु आत्माका स्वरूप प्रकाश. अज्ञानका विरोधी नहीं. उलटा आत्माका स्वरूप प्रकाश, अज्ञानका साधक है इस अभिप्रायतेही वेदांतशास्त्रमें कह्या है:—"सामान्यचैतन्य अज्ञानका विरोधी नहीं," किंतु विशेषचैतन्यही अज्ञानका विरोधी है. व्यापक जो चैतन्य है; सो सामान्य चैतन्य कहिये है. और वृत्तिमें स्थित जो चैतन्य, सो विशेषचैतन्य, कहिये है. जैसे काष्ठमें स्थित जो सामान्य अग्निहै, सो अंधकारका विरोधी नहीं, और मथनसे प्रगट किया जो अग्नि है. सो बत्तीमें स्थित हायके अंधकारका विरोधी है. तैसे व्यापकचैतन्य अज्ञानका विरोधी नहीं भी है, परंतु वेदांतके विचारसे अंतःकरणकी जो ब्रह्माकारवृत्ति हुई है, ताकेविषे स्थित चैतन्य अज्ञानका विरोधी है. इसरीतिसे केवल चैतन्य अज्ञानका विरोधी नहीं किंतु

वृत्तिसहित चैतन्य अज्ञानका विरोधी है. अथवा चैतन्यसहित वृत्ति अज्ञानकी विरोधी है.

प्रथमपक्षमें तो अज्ञानके नाशका हेतु चैतन्य है; और वृत्ति सहायकहै. दूसरे पक्षमें अज्ञानके नाशका हेतु वृत्ति है; और चैतन्य सहायक है. यह अवच्छेदवादकी रीति है. और आभासवादमें तो सामान्यचैतन्यकी न्याईं विशेषचैतन्य भी अज्ञानका विरोधी नहीं, किंतु वृत्तिसहित आभास अथवा आभाससहित वृत्ति अज्ञानका विरोधी है. इसरीतिसे प्रकाशरूप चैतन्य अज्ञानका विरोधी नहीं यातें चैतन्यके आश्रित अज्ञान है, ता आज्ञानसे आवृत जो आत्मा, ताकेविषे बंधका अध्यास बनै है.

और पूर्व कह्या जो " सामान्यरूपतैं ज्ञात, और विशेषरूप तैं अज्ञात वस्तुमें अध्यास होवै है और आत्मामें सामान्य विशेषभाव है नहीं. यातें निर्विशेष आत्मा ज्ञात और अज्ञात बनैं नहीं " ताकेविषे अध्यासका असंभव है. सो वार्ता भी बनैं नहीं. काहेतैं, " आत्माहै," यह सर्वकूं प्रतीति होवै है. आत्मा नाम अपने स्वरूपका है. "मैं नहीं हूं"यह किसीकूं प्रतीति होवे नहीं. किंतु" मैं हूं" यह प्रतीति सर्वकूं होवै है. यातैं सत्‌रूप करिके आत्मा सर्वकूं भान होवै है. और " चैतन्य आनंदव्यापक नित्यशुद्ध नित्यमुक्तिरूप आत्मा है; " यह सर्वकूं प्रतीति होवै नहीं यातैं चैतन्य आनंद व्यापक नित्यशुद्ध नित्यमुक्तरूपते आत्मा अज्ञात है,और सत्‌रूप करिके ज्ञात है; यह वार्त्ता अनुभवसिद्ध है. सो अनुभवसिद्धवार्त्ता युक्तिसे दूरि होवै नहीं सर्वकूं प्रतीत जो होवै है आत्माका

रूप, सो तौ सामान्यरूप है. और केवल ज्ञानीकूं जो प्रतीत होवै चेतन आनंदादिक, सो विशेषरूप है. जो अधिककालमें अधिकदेशमें होवै सो सामान्यरूप कहिये है. और न्यूनदेशमें न्यूनकालमें होवै, सो विशेषरूप कहिये है. यद्यपि आत्माका स्वरूपही चेतन आनंदादिक है, यातैं सबकी न्याई चेतन आनंदादिक सर्वत्र व्यापक है. सत्की अपेक्षातैं चेतन आनंदादिकोंकूं, न्यूनदेशमें और चेतन आनंदादिकनकी अपेक्षातैं सत्रूपकूं अधिकदेशमें कहना बनै नहीं. यातैं सत्रूप आत्माका सामान्यअंश है; और चेतन आनंदादिक विशेषअंश है, यह कहना भी बनै नहीं. तथापि सत्की प्रतीति सर्वकूं अविद्याकालमेंभी होवै है, और " चेतन आनंदरूप आत्मा है " यह प्रतीति सर्वकूं अविद्याकालमें होवै नहीं केवल ज्ञानीकूंही होवै है. अविद्याकालमें चेतन, आनंद, मुक्तता शुद्धता भी है; परंतु प्रतीति होवै नहीं. यातैं अनहुयेके समान है. इस अभिप्रायतैं चैतन्य आनंदादिक न्यूनकालवृत्ति कहिये है. और सत्रूप अधिककालवृत्ति कहिये है; इसरीतिसे सत्रूपका और चेतन आनंदादिकोंका सामान्यविशेष भाव नहीं भी है, परंतु अल्पकाल और अधिककालमें प्रतीति होनेतैं सामान्यविशेषभावकी न्याई है. या कारणतैं आत्माका सत्रूप सामान्य अंश कहिये है और चेतन आनंदादिक विशेषअंश कहिये है.

और आत्मा निर्विशेष है, या सिद्धांतकी भी हानि नहीं जो आत्मामें सामान्यविशेषभाव अंगीकार करैं, तौ " निर्विशेष आत्मा है " या सिद्धांतकी हानि होवै. सो सामान्यविशेषभाव अंगीकार

किया नहीं, किंतु अविद्यासे सामान्य विशेषकी न्याई प्रतीति होवै है; यातैं सामान्यविशेषभाव कहे हैं. इस रीतिसे सत्यरूपकारिकै ज्ञात, और चेतन, आनंद, नित्यशुद्ध, नित्यमुक्त, ब्रह्मरूप कारिकै अज्ञात, आत्माविषे बंधका अध्यास बनैं है. अध्यासरूप बंधकी ज्ञानसें निवृत्ति भी बनैं है, यातैं ग्रंथका प्रयोजन संभवै है,

और पूर्व कह्या जो "निषिद्धकाम्यकर्मका त्यागकारिके नित्यनैमित्तिकप्रायश्चित्तकर्म करै; यातैं निषिद्धकर्मके अभावतैं नीचलोककूं प्राप्त होवै नहीं; और काम्यकर्मके अभावतैं उत्तमलोककूं प्राप्त होवै नहीं. और नित्यनैमित्तिककर्मके नहीं करनेतैं जो पाप होवै, सो तिनके करनेतैं होवै नहीं. और इसजन्मविषे अथवा अन्यजन्मविषे पूर्व करे जो पाप हैं, तिनका साधारण और असाधारण प्रायश्चित्तसे नाश होवै है. और पूर्व करे जो काम्यकर्म हैं तिनके फलकी इच्छाके अभावतैं मुमुक्षुकूं तिनका फल होवै नहीं यातैं मुमुक्षुकूं ज्ञानसे विनाही जन्मका अभावरूप मोक्ष होवै है." सो बनै नहीं. काहेतैं. नित्यनैमित्तिक कर्मका भी स्वर्गरूप फल है, यह वार्त्ता भाष्यकारने युक्ति और प्रमाणसे पतिपादन करी है. यातैं नित्यनैमित्तिककर्मसे उत्तमलोककूं प्राप्त होवैगा; जन्मका अभाव बनै नहीं. और नित्यनैमित्तिककर्मका जो फल अंगीकार नहीं करैं तो नित्यनैमित्तिककर्मका बोधक जो वेद है सो निष्फल होवैगा. काहेतैं, जो नित्यनैमित्तिककर्मके नहीं करनेतैं पाप होवै, तो ता पापकी अनुत्पत्ति तिनका फल बनै सो नित्यनैमित्तिककर्मके नहीं करनेतैं

पाप होवै नहीं काहेतें जो नित्यनैमित्तिक कर्मका नहीं करना सो अभावरूप है, और पाप भावरूप है. अभावसे भावकी उत्पत्ति होवै नहीं. यातें नित्यनैमित्तिककर्मके नहीं करनेतें पाप होवै है;यह कहना बनै नहीं. जो नित्यनैमित्तिककर्मके नहीं करनेसे पापकी उत्पत्ति अंगीकार करै, तौ "अभावतैं भावकी उत्पत्ति होवै नहीं" यह दूसरे अध्यायमें भगवानने कह्याहै; तासे विरोध होवैगा. यातैं नित्यनैमित्तिककर्मके अभावतैं भावरूप पापकी उत्पत्ति बनै नहीं. इसरीतिसे नित्यनैमित्तिककर्मका पापकी अनुत्पत्ति फल नहीं;किंतु नित्यनैमित्तिककर्मसे विना भी पापकी अनुत्पत्ति सिद्धहै. यातैं नित्यनैमित्तिककर्मका जो स्वर्गरूप फल अंगीकार नहीं करैं; तौ कर्म निष्फल होवैंगे और निष्फल जो नित्य नैमित्तिककर्म हैं, तिनका बोधक वेद भी निष्फल होवैगा. यातैं नित्यनैमित्तिक कर्मसे भी स्वर्गफल होवै है.

और "जन्मांतरके जो काम्यकर्म हैं, तिनका इच्छाके अभावतैं फल होवै नहीं सो वार्त्ता भी बनै नहीं. काहेतैं कर्मरूपी बीजसे दो अंकुर उत्पन्न होवैं हैं. एक तौ वासना, और दूसरा अदृष्ट, धर्म अधर्मका नाम अदृष्ट है, शुभकर्मसे तौ शुभवासना और धर्मरूप अंकुर होवै है; और अशुभकर्मसे अशुभवासना और अधर्मरूप अंकुर होवै है; शुभवासनासे तौ आगे शुभकर्म में प्रवृत्ति होवै है; और धर्मसे सुखका भोग होवै है; इसरीतिसे अशुभवासनासे अशुभकर्म में प्रवृत्ति होवै है, और अधर्मसे दुःखका भोग होवै है; इसरीतिसे वासनारूप और अदृष्टरूप अंकुर

कर्मरूपी बीजसे होवै है; तिनविषे " वासनारूप अंकुरका तौ उपायसे नाश होवै है; और अदृष्टरूप अंकुरका फलकी उत्पत्तिसे विना किसीप्रकारसे भी नाश होवै नहीं, " यह शास्त्रका निर्णय है; अशुभकर्मसे उत्पन्न हुवा जो अशुभवासनारूप अंकुर है ताका तौ सत्संग आदिक उपायनतैं नाश होवै है; और शुभकर्म से उत्पन्न जो हुई शुभवासना, ताका कुसंग आदिकोंतैं नाश होवै है; शास्त्रमें जितना पुरुषार्थ कह्या है; तासे प्रवृत्तिकी हेतु जो वासना ताका ही नाश होवै है. यातैं पुरुषार्थ भी सफल है; और भोगका हेतु जो अदृष्ट ताका नाश होवै नहीं, यातैं " फल दिये विना कर्मकी निवृत्ति होवै नहीं " यह वार्त्ता जो शास्त्रमें कही है, तासे भी विरोध नहीं; इसरीतिसे अज्ञानीकूं फलभोगविना कर्मकी निवृत्ति बने नहीं; और ज्ञानीकूं तौ भोगसे विना भी कर्मकी निवृत्ति बने है. काहेतैं, कर्म और कर्त्ता तथा फल परमार्थसे तौ हैं नहीं; किंतु अविद्यासे कल्पित हैं; ता अविद्याका ज्ञान विरोधी है यातैं अविद्याकल्पित जो कर्मादिक हैं; तिनका भी ज्ञानसे नाश होवै है, जैसे स्वप्नविषे निद्रासे जो पदार्थ प्रतीत होवैं हैं तिनका जाग्रत् विषे निद्राकी निवृत्तिसे अभाव होवै है, तैसे अविद्यारूप निद्रासे प्रतीत जो होवै है कर्म, कर्ता, फल; तिनका भी ज्ञानदशारूप जाग्रत् विषे अविद्याकी निवृत्तिसे अभाव होवै है, और ज्ञान विना अभाव होवै नहीं और इच्छाके अभावतैं जो कर्मका फलभोग होवै नहीं, तौ ईश्वरका संकल्प मिथ्या होवैगा; काहेतै; " फल भोगेविना अज्ञानीके कर्मकी निवृत्ति होवै नहीं "

यह ईश्वरका संकल्प है; जो इच्छाके अभावतैं करे कर्मका फल होवै नहीं, तौ ईश्वरका संकल्प मिथ्याही होवैगा; और "सत्यसंकल्प ईश्वर है," यह वार्ता शास्त्रमें प्रसिद्ध है यातैं " इच्छाके अभावतैं पूर्व करे काम्यकर्मका फल होवै नहीं यह वार्ता विरुद्ध है; जो इच्छा के अभावतैं ही काम्यकर्मफल नहीं होवै, तौ अशुभकर्मका फल किसीकं भी नहीं हुवा चाहिये. काहेतैं अशुभकर्मका फल दुःख है; ताकी किसीकूं भी इच्छा है नहीं. यातैं ज्ञानविना कर्मके फलका अभाव होवै नहीं.

और जो पूर्व कह्या, "जैसे कर्मके अनुष्ठानकालमें जो इच्छारहित पुरुष है, ताकूं कर्मका फल वेदांतमतमें अंगीकार नहीं करया; तैसे कर्मके अनुष्ठानसे अनंतर भी जो पुरुषकी इच्छा दूरि होय जावे, तो कर्मका फल होवै नहीं." सो वार्त्ता भी वेदांतमतकूं नहीं जानिकै कही है. काहेतैं, फलकी इच्छासहित जो कर्मकरै, अथवा फलकी इच्छारहित जो कर्म करै है, ताकूं कर्मका फलभोग तौ निश्चय होवै है.परंतु इच्छारहित कर्मसे अंतःकरण शुद्ध होवै है,और इच्छासहित जो कर्म करै है. ताकूं केवल भोग तो होवै है; परंतु अंतःकरण शुद्ध होवै नहीं. जो इच्छारहित कर्म करनेते शुद्ध अंतःकरण होयकै श्रवणतैं ज्ञान होय जावै, ताकूं तो कर्मका फल होवै नहीं. और " जाने कर्म तो फलकी इच्छारहित किये हैं, परंतु श्रवणके अभावतैं, अथवा किसी अन्यनिमित्ततैं ज्ञान होवै नहीं. ताकूं तौ इच्छारहित कर्मके फलका भोग दूरि होवै नहीं.यह वेदांतका सिद्धांत है. याते ज्ञानसे विना कर्मका फलभोग दूरि होवै नहीं.

और पूर्व कह्या जो " प्रायश्चित्तसे संपूर्ण अशुभकर्मोंका नाश होवै है" सो वार्त्ता भी बनै नहीं. काहेतैं अनंतकल्पके जो अशुभ कर्म हैं तिनका एकजन्मविषे प्रायश्चित्त बनै नहीं और गंगास्नान और ईश्वरका नामउच्चारणसे आदिलेके सर्वपापके नाशक जो साधारण प्रायश्चित कहे हैं सो भी ज्ञानकेही साधन हैं, यातैं सर्वपापके नाशक कहे हैं. यातैं ज्ञानसेही सर्व पापका नाश होवै है.

और पूर्व कह्या जो "नित्यनैमित्तिककर्म करनेतैं जो क्लेश होवै है, सो पूर्वसंचित निषिद्धकर्मका फल है. यातैं संचित निषिद्धकर्मका फल और होवै नहीं. " सो वार्त्ता भी बनै नहीं. काहेतैं, अनंत प्रकारके संचित निषिद्ध जो कर्म हैं, तिनका फल भी अनंतप्रकारका दुःख है; केवल कर्मके अनुष्ठानका क्लेशही तिनका फल बनै नहीं । और पूर्व कह्या जो "संपूर्ण संचित काम्यकर्म तैं एकही शरीर होवै है. " सो वार्त्ता भी बनै नहीं. काहेतैं, संचित काम्यकर्म अनंत हैं तिनका एकजन्म विषे भोग बनैं नहीं और एक पुरुषकूं एककालमें नानाशरीरसे जो भोग कह्या, सो भी सिद्धयोगीविना औरकूं बनै नहीं और "सिद्धयोगीकूं भी और तौ संपूर्ण सामर्थ्य होवै है; परंतु ज्ञान विना मोक्ष तौ होवै नहीं. यह वेदका सिद्धांत है; इसरीतिसे काम्यकर्म और निषिद्धकर्मकूं त्यागिकै जो केवल नित्यनैमित्तिककर्म अज्ञानी करे, ताकूं नित्यनैमित्तिक कर्मका फल भोगनके वास्ते; और पूर्व जो शुभअशुभ कर्म करे है तिनका

फल भोगने वास्ते, अनंतशरीर होवैंगे मोक्ष होवै नहीं. यातें ज्ञानद्वारा बंधकी निवृत्ति ग्रंथका प्रयोजन बनै है. जैसे स्वप्नविषे जो मिथ्या पदार्थ प्रतीत होवैं हैं, तिनकी जाग्रत् विना निवृत्ति होवै नहीं. तैसे बंध भी मिथ्या प्रतीत होवै है. ताकी भी ज्ञानरूप जाग्रत्‌विना निवृत्ति होवै नहीं.

इसरीतिसे ग्रंथके अधिकारी विषय प्रयोजन संभवं हैं और अधिकारी आदिकोंके संभवतें संबंधभी संभवै है; यातें ग्रंथका आरंभ बनै है.

दोहा ।

दादूदीनदयाल जू, सत सुख परमप्रकास ॥
जामैं मतिकी गति नहीं, सोई निश्चलदास ॥ १९ ॥

इति अनुबंधविशेषनिरूपणं नाम द्वितीयस्तरंगः समाप्तः ॥

अथ श्रीगुरुशिष्य लक्षण.

अथ तृतीयस्तरंगः ३.

गुरुभक्तिफलप्रकाशनिरूपणम्-दोहा ।

पेख च्यारि अनुबंधयुत, पढै सुनै यह ग्रंथ ॥
ज्ञानसहित गुरुसे जु नर, लहै मोक्षको पंथ ॥ १ ॥

टीका—च्यारि अनुबंधसहित ग्रंथकूं जानिकै ज्ञानसहित गुरुसे जो पुरुष पढै, अथवा एकाग्रचित्तकरिकै सुनै, सो पुरुष मोक्षका पंथ जो ज्ञान है, ताकूं प्राप्त होय ॥ १ ॥

दोहा।

अनायास मति भूमिमैं, ज्ञान विमन आबाद ॥
है इहिं कारन कहतहूं, गुरू शिष्यसंवाद ॥ २ ॥

टीका–गुरुशिष्यके संवादसे अर्थनिरूपण करनेतैं श्रोता कूं बोध सुखसे होवै है. इस कारणतैं गुरुशिष्यके संवादसे ग्रंथका आरंभ करिये है ॥ २ ॥

अथ श्रीगुरुलक्षण.

चौपाई–वेद अर्थकूं भलै पछानै।
आतम ब्रह्मरूप इक जानै ॥
भेद पंचकी बुद्धि नशावै।
अद्वय अमल ब्रह्म दरशावै ॥ ३ ॥
भव मिथ्या मृगतृषा समाना।
अनुलव इम भाषत नहिं आना ॥
सो गुरु दे अद्भुत उपदेशा।
छेदक शिखा न लुंचित केशा ॥ ४ ॥

टीका–"वेदके अर्थकूं भलीप्रकारसे पिछाने" यह कहनेसे अधीतवेद आचार्य होवै है; यह कह्या और जीवब्रह्मकी एकता निश्चयकरिकै जानै यातैं, आत्मज्ञानविषे जाकी स्थिति होवै, सो आचार्य होवै है; यह कह्या जो वेद पढ्या होवै, और ज्ञानविषे जाकी निष्ठा न होवै सो आचार्य नहीं है. और ज्ञानविषे जाकी निष्ठा होवै, और वेद नहीं पढ्या, सो भी आप तौ मुक्त है, परंतु उपदेश

करनेयोग्य आचार्य नहीं है. काहेतें, वाकूं जिज्ञासुकी शंका मेटनेकी युक्ति नहीं आवै है. जाके चित्तविषे शंका उठै नहीं ऐसा जो उत्तम संस्कारवाला जिज्ञासु है, ताके तौ उपदेश करने विषे समर्थ है भी परन्तु सर्वके उपदेश करने योग्य नहीं; यातें आचार्य नहीं. किंतु अधीतवेद होवै, और ज्ञानविषे जाकी निष्ठा होवै, सो आचार्य कहिये है. और शिष्यकी बुद्धिमें भान जो होवै पंचप्रकार-का भेद, ताकूं नाना युक्तिसे दूरि करने विषे समर्थ होवै —१ जीव ईशका भेद, २ जीवनका परस्पर भेद, ३ जीव जड़का भेद, ४ ईश जड़का भेद, ५ जड़जड़का भेद, यह पंचप्रकारके भेद हैं, ताकूं खं-डन करै. काहेतें भेद भय का हेतु है. यातें भेदका निराकरण अवश्य कर्त्तव्य है. भेद का निराकरण करिकै अद्वय और अमल कहिये अविद्यादि मल रहित जो ब्रह्म ताकूं दरशावै, कहिये आत्मरूप क-रिकै साक्षात्कार करवावै. और सर्व संसारकूं मिथ्या रूप करिकै उपदेश करै. सो अद्भुत उपदेश देनेवाला आचार्य कहिये है. और केवल आप मुंडन कराइकै शिष्यकी शिखा छेदन मात्र करनेवाला; अथवा और कोऊ संप्रदायके चिह्न मात्रसे अंकित करनेवाला; आचार्य नहीं कहिये है ॥ ३ ॥ ४ ॥

दोहा ।

करतमोक्ष भवग्राहते, दे आसि निज उपदेश ॥
सो दैशिक बुध जन कहत, नहिं कृत गैरिकवेष ॥ ५ ॥

अर्थ स्पष्ट.

दोहा।

दैशिकके लक्षण कहे, श्रुति मुनि वच अनुसार ॥
सो लक्षण हैं शिष्यके, ह्वै जिनते अधिकार ॥ ६ ॥

टीका—शास्त्रके अनुसार दैशिक कहिये गुरु, ताके लक्षण कहे. और जिन साधनसे ग्रंथमें अधिकार होवै सो साधन शिष्यके लक्षण हैं. याका यह अभिप्राय हैः—जो अधिकारीके लक्षण पूर्व कहे, सोई लक्षण शिष्यके जानि लेने. ॥ ६ ॥

अथ गुरुभक्तिका फल वर्णन.—दोहा।

ईश्वरते गुरुमें अधिक, धारे भक्ति सुजान ॥
बिन गुरुभक्ति प्रवीणहू, लहै न आतमज्ञान ॥ ७ ॥

टीका—गुरुमें ईश्वरसे अधिक भक्ति करै. काहेतें, जो सर्वशास्त्रमें प्रवीण भी पुरुष होवै, सो भी गुरुके उपदेशविना ज्ञानकूं प्राप्त होवै नहीं ॥ ७ ॥

जो पूर्वदोहेमें बात कही सोई दृष्टांतसे प्रतिपादन करैं हैंः—

दोहा।

वेद उदधि बिनगुरु लखै, लागै लौन समान ॥
बादर गुरुमुख द्वार है, अम्मृतसे अधिकान ॥ ७ ॥

टीका—वेदरूपी उदधि कहिये जो समुद्र है सो गुरुविना लौनके समान क्षार है. जैसे क्षारसमुद्रमें पैठिके वाके जलकूं जो पान करै, सो केवल क्षारताकूं अनुभव करै है, और तासूं क्लेशकूं प्राप्त होवै है. तैसे गुरुविना जो वेदके अर्थकूं विचारै है; सो भेदरूपी

क्षारकूं अनुभव करिकै जन्ममरणरूपी खेदकूं प्राप्त होवै है. इसी कारणसे रामानुज और मध्वसे आदिलेके, जो नानापुरुष हुए हैं, तिन्होंने वेदके अर्थका विचार भी किया है, परन्तु गुरुद्वारा नहीं किया, यातैं भेदविषे निश्चयकरिकै जन्ममरणरूपी खेदकूंही प्राप्त भये. मुक्तिरूप आनंद उनकूं प्राप्त नहीं भया. यद्यपि रामानुजआदि जो भये हैं तिन्होंने भी वेद अपने२गुरुसेही पढिकै विचारचा है;और विचारिकै व्याख्यान किया है, तथापि जिनके पास उन्होंने वेद पढ्या सो गुरु नहीं; काहेतैं, "जो जीवब्रह्मकी एकताका उपदेश करै सो गुरु होवै है." यह पूर्व गुरुलक्षणके प्रसंगमें कहि आये. और उनके जो पाठक हुये हैं, सो जीवब्रह्मका भेद उपदेश देनेवाले हुये हैं, यातैं उनके विषे जो गुरुशब्दका प्रयोग करै है. सो अर्हतके समान करै है. जैसे अर्हतके शिष्य अर्हतकूं गुरु कहैं है, परन्तु अर्हत गुरुपदका विषय नहीं है. तैसे भेदवादीपुरुषोंके जो शिष्य हैं, सो अपने पाठकोंकूं गुरु कहैं हैं,परंतु सो गुरु नहीं हैं. यातैं रामानुजसे आदिलेके जो भेदवादी हुये हैं, तिन्होंने गुरुद्वारा विचार नहीं किया, इसकारणतैं भेदमें अभिनिवेशकरिकै जन्ममरणरूपी क्लेशकूंही प्राप्त भये. तैसे और भी जो कोऊ पूर्वलक्षणयुक्त गुरुसे विना वेदके अर्थका विचार करै, अथवा भेदवादीपुरुषसे पढिकै विचारै सो भी भेदरूपी क्षारकूं अनुभवकरिकै जन्ममरणरूपी क्लेशकूंही अनुभव करै है. यह दोहेके पूर्वार्द्धका अर्थ है. और बादररूपी ब्रह्मवित्गुरुके मुखद्वारा जो सुनिके विचारे,ताकूं अमृतसेभी अधिक आनंदका हेतु वेद होवै है. जैसे समुद्रका जल स्वरूपसे क्षार

है, और बादरद्वारा मधुर होवै है; तैसे वेदका अर्थ ब्रह्मज्ञानी गुरुद्वारा आनंदका हेतु है ॥ ८ ॥

पूर्व दोहेमें यह बात कही जो " गुरुसे पढ्या जो वेदका अर्थ है, " ताके विचारसे मुक्तिरूपी फल प्राप्त होवै है; तासों गुरु ज्ञानी होवै, अथवा अज्ञानी होवै, ऐसा विशेष नहीं कह्या. सो अब कहैं हैं; "यद्यपि ज्ञानहीन गुरु नहीं, " यह पूर्व कहि आये, तथापि पूर्व कही वार्ताकूं दृष्टांतसे प्रतिपादन करैं हैं:-

दोहा।

दृतिपुट घट सम अज्ञजन, मेघसमान सुजान ॥
पढै वेद इहिं हेतुते, ज्ञानीपै तजि आन ॥ ९ ॥

टीका—अज्ञ कहिये अज्ञानी जो जनहै,सो दृतिपुट कहिये मशक और चरस आदि जो चर्मपात्र, अथवा घटद्वारा ग्रहण किया जो समुद्रका जल, सो विलक्षणस्वादका हेतु नहीं है; तैसे अज्ञानीपुरुषद्वारा ग्रहण किया जो वेदरूपी समुद्रका अर्थरूपी जल, सो विलक्षण आनंदका हेतु नहीं; यातैं अज्ञानी पाठक चर्मपात्र और घटके समान हैं और सुजान कहिये ज्ञानी, मेघके समान हैं; यह वार्त्ता पूर्व प्रतिपादन करी है, यातैं चर्मपात्र और घटके समान जो अज्ञानीपाठक है ताकूं त्यागिकै मेघसमान जो ज्ञानी ताहीसूं वेदका अर्थ पढे अथवा सुने. ॥ ९ ॥

"ज्ञानवान्के पास वेद पढे. " या कहनेतैं यह शंका होवै है:- जो वेदकी श्रुति हैं, तिनहीद्वारा जीवब्रह्मका स्वरूप विचारनेतैं ज्ञान

होवै है. अन्य संस्कृत ग्रंथोंसे और भाषाग्रंथोंसे ज्ञान होवे नहीं. याते भाषाग्रंथका आरंभ निष्फल होवेगा.

ताके समाधानका-दोहा।

ब्रह्मरूप अहि ब्रह्मवित, ताकी वाणी वेद ॥
भाषा अथवा संसकृत, करत भेद भ्रम छेद ॥ १० ॥

टीका-" ब्रह्मवेत्ता जो पुरुष है सो ब्रह्मरूप है; " यह वार्ता श्रुतिविषे प्रसिद्ध है; यातें ताकी वाणी वेदरूप है; सो भाषारूप होवै, अथवा संस्कृतरूप होवै; सर्वथा भेदभ्रमका छेद करै है: और जो कहै है:-" वेदके वचनविना ज्ञान होवै, नहीं " सो नियम नहीं जैसे आयुर्वेदमें कहे जो रोग और तिनके निदान, और औषध, तिन संपूर्णका अन्यसंस्कृत ग्रंथोंसे, और भाषा फारसी ग्रंथोंसे, ज्ञान होय जावें है तैसे सर्वका आत्मा जो ब्रह्म, ताका ज्ञान भी भाषादिक ग्रंथोंसे होवै है; इसवास्ते सर्वज्ञ जो ऋषि और मुनि हुये हैं, तिन्होंने स्मृति, और पुराण, और इतिहास ग्रंथोंमें ब्रह्मविद्याके प्रकरण कहे हैं, जो वेदसे विना ज्ञान न होवै, तौ वे संपूर्ण प्रकरण निष्फल होय जावैंगे; यातैं आत्माके स्वरूपका प्रतिपादक जो वाक्य है, तासूं ज्ञान होवै है; सो वेदका होवै, अथवा अन्य होवै यातैं भाषाग्रंथसे भी ज्ञान होवै है, यह वार्ता सिद्ध हुई ॥ १० ॥

दोहा।

वाणी जाकी वेद सम, कीजै ताकी सेव ॥
है प्रसन्न जब सेव ते, तब जानै निज भेव ॥ ११ ॥

टीका–जो ब्रह्मवेत्ताकी वाणी कहिये वचन वेदके समान है ता ब्रह्मवेत्ता आचार्यकी जिज्ञासु सेवा करे; काहेतें, सेवातें जब आचार्य प्रसन्न होवै, तब निजबोध कहिये अपना स्वरूप जानैं. यह कहनेतें यह वार्ता जनाई:-जो आचार्यकी सेवा है, सोतो ईश्वरकी सेवासे भी अधिक है काहेतें, जो ईश्वरकी सेवा है, सो अदृष्टफल और दृष्टफल दोनोंका हेतु है. जो वस्तु धर्म अधर्मकी उत्पत्तिद्वारा फलका हेतु होवै, सो अदृष्टफलका हेतु कहिये है और जो वस्तु धर्म अधर्मकी उत्पत्तिसे विना साक्षात्फलका हेतु होवै, सो दृष्टफलका हेतु कहिये है. ईश्वरकी जो सेवा है सो धर्मकी उत्पत्तिद्वारा अंतःकरणकी शुद्धिरूप फलका हेतु है. यातें ईश्वरकी सेवा अदृष्टफलका हेतु है. और आचार्यकी सेवा धर्मकी अपेक्षा विना आचार्यकी प्रसन्नता करिकै उपदेशरूप फलका हेतु है; यातें दृष्टफलका हेतु है; और धर्मकी उत्पत्तिद्वारा अंतःकरणकी शुद्धिरूप फलका हेतु है यातें अदृष्टफलका भी हेतु है इसरीतिसे आचार्यकी सेवा ईश्वरकी सेवासे भी उत्तम है यातें जिज्ञासु सर्वप्रकारसे ब्रह्मवेत्ता आचार्यकी सेवा करै ॥ ११ ॥

अथ आचार्यसेवा प्रकार–सोरठा।

ह्वै जबही गुरुसंग, करै दंड जिमि दंडवत।
धारै उत्तम अंग, पावन पादसरोज रज ॥ १२ ॥

टीका–जब गुरु प्राप्त होवै, तब दंडकी न्याईं साष्टांग

प्रणाम करै. और पावन कहिये पवित्र जो है पादरूपी सरोज (कमल) तिनकी रज़ जो धूरी, ताकूं उत्तम अंग कहिये मस्तक ऊपर धारै ॥ १२ ॥

चौपाई ।

गुरु समीप पुनि करिये वासा । जो अति उत्कट ह्वै जिज्ञासा ॥
तन मन धन वच अर्पी देवै । जो चाहै हिय बंधन छेवै ॥ १३ ॥

अर्थ स्पष्ट.

अथ तनअर्पण प्रकार ।

चौपाई ।

तनकरि बहु सेवा विस्तारै । आज्ञा गुरुकी कबहुँ न टारै ॥

अथ मन अर्पण प्रकार ।

मनमें प्रेम रामसम राखै । ह्वै प्रसन्न गुरु इमि अभिलाषै ॥ १४ ॥
दोषदृष्टि स्वपने नहिं जानैं । हरि हर ब्रह्म गंग रवि जानैं ॥
गुरु मूरतिको हियमैं ध्याना । धारे जो चाहै कल्याना ॥ १५ ॥

अथ धन अर्पण प्रकार ।

चौपाई ।

पत्नी पुत्र भूमि पशु दासी । दास द्रव्य गृह ब्रीहि विनाशी ॥
धनपद इन सबहिनकूं भाखै । ह्वै गुरुशरण दूरि तिहिं नाखै ॥

सोरठा ।

धन अर्पणको भेव, एक कह्यो सुन दूसरो ।
ह्वै गृहस्थ गुरुदेव, याज्ञवल्क्य सम देह तिहिं ॥ १७ ॥

टीका—पत्नीसे आदिलेके व्रीहि कहिये धान्यपर्यंत सारे धन कहियें हैं तिन सर्वकूं त्यागिकै त्यागी जो गुरु है,ताके शरणै होवै;यह धन अर्पण कहिये है.काहेतैं,गुरुने त्यागदी है, सो आप तौ अंगीकार करै नहीं. परन्तु तिन गुरुकी प्रातिवास्ते धनका त्याग किया है. यातें ऐसा जो त्याग है, सो भी गुरुकूंही अर्पण कहिये है.

और गृहस्थ जो गुरु होवे, तिनकूं समग्र चढाइ देवै यह दूसरे प्रकारका धन अर्पण कहिये है. यामैं कोऊ शंका करै हैः—जो ब्रह्मविद्याके आचार्य गृहस्थ नहीं होवैं हैं. सो शंका बनै नहीं । काहेतैं, याज्ञवल्क्य और उद्दालकसे आदिलेके ब्रह्मविद्याके आचार्य गृहस्थही वेदविषे बहुत सुने जावैं हैं, यातैं गृहस्थभी आचार्य संभवैं हैं ॥ १७ ॥

अथ वाणी अर्पणविषे—छंद.

भाषत गुणगण गुरुके वाणी शुद्ध ।
दोष न कबहूँ अर्पण करि इमि बुद्ध ॥

सोरठा ।

जो चाहै कल्याण, तन मन धन वच अरपि इम ॥
वसै बहुत गुरुस्थान, भिक्षातैं जीवन करै ॥ १९ ॥

टीका—जो पुरुष अपना कल्याण चाहै, सो पूर्वरीतिसे तनुआदि अर्पण करिकै आप बहुतकाल गुरु जहां हों; ता स्थानविषे, वा समीपमें वास करै. और आप भिक्षातें जीवन कहिये प्राण धारण करै ॥ १९ ॥

चौपाई।

सो भिक्षा धरिदे शिष आगे। निज भोजनकूं नहिं पुनिमाँगै ॥
जो गुरु देइ तु जाठरडारै। नहिं दूजे दिन वृत्ति सँभारै ॥२०॥

टीका—जो भिक्षाका अन्न शिष्य ल्यावै सो आपही भोजन नहीं करि लेवै. किंतु दैशिक जो गुरु हैं, तिनके आगे धरि देवै, और भिक्षा गुरुके आगे धरिकै अपने भोजनकूं गुरुसे माँगै नहीं. और एकदिनमें दूसरीवार भिक्षा ग्राममें भी मांगै नहीं. किंतु गुरु जो कृपा करिकै देवैं, तो भोजन करै और गुरु जो शिष्यकी श्रद्धाकी परीक्षाके निमित्त नहीं देवैं, तौ दूसरेदिन वृत्ति जो भिक्षा ताकूं संभारै ॥ २० ॥

दोहा।

पुनि गुरुके आगे धरै, भिक्षा शिष्य सुजान ॥
निर्वेदन जियमें करै, जो निज चहै कल्यान ॥ २१ ॥

टीका—निर्वेद नाम ग्लानिका है. अन्य अर्थ स्पष्ट ॥ २१ ॥

चौपाई।

इम व्याहत अवसर जब पेखै। मुख प्रसन्न गुरु सन्मुखलेखै ॥
विनती करै दोउ कर जोरी। गुरु आज्ञातैं प्रश्न बहोरी ॥२२॥

टीका—इसरीतिका व्यवहार करते जब गुरुका अवकाश देखै, और प्रसन्नमुखसे गुरु जब अपने सन्मुख देखै तब हाथ जोरिकै गुरुकी स्तुति करै; और विनती करैः—हे भगवन्! "मैं पूछ्या चाहूं हूं." तब गुरु आज्ञा करैं तौ प्रश्न करै.

और कदाचित् जन्मांतरके उत्तमकर्मतैं गुरु कृपा करिकै शिष्यकं तन अर्पण आदि सेवासे विनाही उपदेश करिदेवैं, तौभी शुद्ध अधिकारीका कल्याण होय जावै है. काहेतैं, गुरुसेवाके दो फल हैंः—एक तौ गुरुकी प्रसन्नता, और दूसरा अंतःकरणकी शुद्धि, सो दोनों वाके सिद्ध हैं ॥ २२ ॥

दोहा।

तन मन धन वाणी अरपि, जिहिं सेवत चितलाय ॥
सकलरूप सो आप है, दादू सदा सहाय ॥ २३ ॥

इति गुरुशिष्यलक्षणं, गुरुभक्तिफलप्रकारानिरूपणं
नाम तृतीयस्तरंगः समाप्तः ॥ ३ ॥

चतुर्थस्तरङ्गः ४.

अथ उत्तमाधिकारी उपदेशनिरूपण।

दोहा।

गुरु शिषके संवादकी, कहूं ब गाथ नवीन ॥
पेखि जाहि जिज्ञासु जन, होत विचारप्रवीन ॥ १ ॥

दोहा ।

तीनि सहोदर बाल शुभ, चक्रवर्ति संतान ॥
शुभसंतति पितु तिहिंनमैं, स्वर्ग पताल जहान ॥ २ ॥

तीनों बाल नाम ।

तत्त्वदृष्टि इक नाम अहि, दूजो कहत अदृष्ट ॥
तर्कदृष्टि पुनि तीसरो, उत्तम मध्य कनिष्ट ॥ ३ ॥

चौपाई ।

बालपनो सब खेलत खोयो ।तरुण पाय पुनि मदन बिगोयो॥
धारि नारि गृह मार प्रकाशी।भोग लहै तिहुँ सब सुखराशी ४॥

दोहा ।

स्वर्ग भूमि पातालके, भोगहिं सर्व समाज ॥
शुभसंतति निज तेजबल, करत राजके काज ॥ ५ ॥
लहिअवसरइकतिहिंपिता, निजहियरच्योविचार ॥
सुखस्वरूप अज आतमा, तासूं भिन्न असार ॥ ६ ॥
इहि कारन तजि राज यह, जानूं आतमरूप ॥
स्वर्ग भूमि पातलके, तिहुँ पुत्रहि करि भूप ॥ ७ ॥

चौपाई ।

असविचार शुभसंतति कीना।मंत्रिपेखि तिहुँ पुत्र प्रवीना ॥
देश इकंत समीप बुलाये।निज विरागके वचन सुनाये॥८॥
भाष्यो पुनि यह राज सँभारहु ।
इक पताल इक स्वर्ग सिधारहु ॥

अपर बसहु काशी भुवि स्वामी।
रहत जहां शिव अंतरयामी ॥ ९ ॥
जिहिं मरतहि सुनि शिव उपदेशा।
अनयासाहि तिहिं लोकप्रवेशा ॥
गंग अंग मनु कीर्ति प्रकासै।
उत्तरवाहिनि अधिक उजासै ॥ १० ॥

दोहा।

करहु राज इम भिन्न तिहुं, पालहु निज निज देश ॥
बिन विभाग भ्रातानको, भूमि काज है क्लेश ॥ ११ ॥

सवैया–राजसमाज तजौं सब मैं अब,
जानि हिये दुख ताहि असारा।
और तु लोक दुखी अपने दुख,
मैं भुगत्यो जग क्लेश अपारा ॥
जे भगवान प्रधान अजान,
समान दरिद्रन ते जन सारा।
हेतु विचार हिये जगके भग,
त्यागि लखूं निजरूप सुखारा ॥ १२ ॥
वाक्य अनंत कहे इम तात,
सुने तिहुं भ्रात सुबुद्धिनिधाना।
बैठि इकंत विचार अपार,

भनै पुनि आपसमांहि सुजाना ॥
दे दुखमूल समाज हमैं यह,
आप भयो चह ब्रह्म समाना ।
सो जन नागर बुद्धिकसागर,
आगर दुःख तजै जु जहाना ॥ १३ ॥

दोहा ।

याते त्यजि दुखमूल यह, राज करौ निज काज ॥
करि विचार इम गेहतें, निकस्यो भ्रातसमाज ॥ १४ ॥
तिहुं खोजत सद्गुरु चले, धारि मोक्ष हिय काम ॥
अर्थसहित किय तातको, शुभसंतति यह नाम ॥ १५ ॥
खोजत खोजत देश बहु, सुरसरि तीर इकंत ॥
तरु पल्लव शाखा सघन, बन तामें इक संत ॥ १६ ॥
बैठ्यो वट विटपहिं तरै, भद्रा मुद्रा धारि ॥
जीवब्रह्मकी एकता, उपदेशत गुण टारि ॥ १७ ॥
दोषरहित एकाग्रचित, शिष्यसंघ परिवार ॥
लखि दैशिक उपदेश हिय, चहुंधा करत विचार ॥ १८ ॥
मनहु शंभु कैलासमें, उपदेशत सनकादि ॥
पेखितांहितिहिंलहिशरण, करीदंडवतआदि ॥ १९ ॥
कियो वास षटमास पुनि, शिष्यरीति अनुसार ॥
करी अधिक गुरुसेव तिहुं, मोक्षकाम हियधार ॥ २० ॥
ह्वै प्रसन्न श्रीगुरु तबै, ते पूछे मृदुबानि ॥
किहिं कारण तुम तात तिहुँ, बसहु कौन कहआनि २१

तत्त्वदृष्टि तब लखि हिये, निज अनुजनकी सैन ॥
कहै उभय कर जोरि निज, अभिप्रायके बैन ॥ २२ ॥

तत्त्वदृष्टिरुवाच-दोहा ।

भो भगवन हम भ्रात तिहुँ, शुभसंततिसंतान ॥
लख्योचहैंबहुभेवहिय, दीननवीनअजान ॥ २३ ॥
जो आज्ञा ह्वै रावरी, तौ ह्वैं पूछि प्रवीन ॥
आप दयानिधि कल्पतरु,हम अतिदुखितअधीन॥२४॥

श्रीगुरुरुवाच-सोरठा ।

सुनहु शिष्य मम बात, जो पूछहु तुम सो कहूँ ॥
लहो हिये कुशलात, संशय कोऊ ना रहै ॥ २५ ॥

दोहा ।

गुरुकी लखी दयालुता, शिष्य हिये भो चैन ॥
कार्य सिद्ध निज मानि हिय, भाषे सविनय बैन ॥ २६ ॥

तत्त्वदृष्टिरुवाच । चौपाई ।

भो भगवन तुम कृपानिधाना । हो सर्वज्ञ महेशसमाना॥
हम अजानमति कछू न जानैं।जन्मादिक संसृतिभयमानैं२७
कर्म उपासन कीने भारी । और अधिक जगपाशी डारी ॥
आप उपाय कहौ गुरुदेवा । है जाते भवदुखको छेवा॥२८॥
पुनि चाहत हम परमानंदा । ताको कहो उपाय सुछंदा ॥
जवहि कृपा करि कहि हौ ताता । तव ह्वैहै हमरे कुशलाता२९

टीका—हे भगवन्! आप कृपानिधानहो; और सदाशिवके समान आप सर्वज्ञ हो. और हे भगवन्! हम जन्ममरणसे आदि लेके जो दुःखरूप संसार है, तासे डरे हैं ताकी निवृत्तिका आप उपाय कहो. और परमानंदकी प्राप्तिका उपाय कहो. और हे गुरो! उपासना और कर्मके अनंतअनुष्ठान करे भी, परन्तु उनसे हमारेकूं वांछित फल प्राप्त भया नहीं. और उलटा संसार उनसे बँधता गया याते आप और उपाय बतावो, जा करिके हम कृतार्थ होवैं॥ २९॥

दोहा।

मोक्षकाम गुरु शिष्य लखि, ताको साधन ज्ञान॥
वेदउक्त भाषण लगे, जीवब्रह्म भिद भान॥ ३०॥

टीका—दुःखकी निवृत्ति और परमानंदकी प्राप्तिकूं मोक्ष कहैं- हैं.ताकी कामना शिष्यके हृदयमें देखिके ताका साधन जो वेदउक्त ज्ञान है, सो कहते भये. यद्यपि ज्ञानका स्वरूप अनेकशास्त्रोंविषे भिन्न भिन्न वर्णन किया है, तथापि जीव ब्रह्मकी भिद कहिये भेद ताकूं दूरि करनेवाला जो ज्ञान है, सोई वेदमें मोक्षका साधन कह्या है; याते ताहीकूं ज्ञान कहैं हैं॥ ३०॥

श्रीगुरुरुवाच-दोहा।

परमानंदमिलाप तू, जो शिष चहै सुजान॥
जन्मादिकदुख नाश पुनि, भ्रांतिजन्य तिहिं मान॥ ३१॥
परमानंद स्वरूप तू, नाहिं तोमें दुख लेश॥
अज अविनाशी ब्रह्म चित, जिन आनै हिय क्लेश॥ ३२॥

टीका–हे शिष्य ! परमानंदकी प्राप्तिविषे, और जन्ममरणसे आदिलेके जो दुःखरूप संसार है, ताकी निवृत्तिविषे जो तेरेकूं इच्छा भई है, ता इच्छाकी भ्रांतिसे उत्पत्ति हुई है; तूं ऐसे जान काहेते ? तूं आप परमआनंदस्वरूप है; याते ताकी प्राप्तिकी इच्छा बनै नहीं. जो वस्तु अप्राप्त होवै, ताकी प्राप्तिकी इच्छा बनै है. और अपना जो स्वरूप है, सो सदा प्राप्त है. ताकी प्राप्तिविषे जो इच्छा, सो भ्रांति विना वने नहीं और जन्मसे आदिलेके जो संसार है, सो जो कदाचित् होवै, तौ वाकी निवृत्तिविषे इच्छा बने. सो जन्मादिक संसारका लेश भी तेरेविषे नहीं है. याते अनहुये दुःखकी निवृत्तिविषे भी इच्छा भ्रांति विना बनै नहीं. और हे शिष्य ! जन्म और नाश करिके रहित जो चेतनरूप ब्रह्म है, सो तूं याते अपने हृदयविषे जन्मादिक खेद मति मान ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

तत्त्वदृष्टिरुवाच–दोहा।

विषयसंग क्यों भान है, जो मैं आनँदरूप ॥
अब उत्तर याको कहौ, श्रीगुरु मुनिवरभूप ॥ ३३ ॥

टीका–हे भगवन् ! जो मेरा आत्मा आनन्दरूप होवै तो विषयके संबंधसे आनंदका आत्माविषे भान नहीं हुवा चाहिये. याते आत्मा आनंदरूप नहीं, किंतु विषयके संबंधसे आत्मा विषे आनंद होवै है ॥ ३३ ॥

श्रीगुरुरुवाच–चौपाई।

आतमविमुख बुद्धि जन जोई ॥ इच्छा ताहि विषयकी होई ॥

तासूं चंचलबुद्धि बखानी। सुख आभास होइ तहाँ हानी २४॥
जब अभिलषित पदारथ पावै। तब मति छनक विछेप नशावै॥
तामैं है अनंद प्रतिबिंबा। पुनि छनमैं बहु चाह विडंबा॥
ताते है थिरताकी हानी। सो अनंद प्रतिबिंब नशानी॥
विषयसंग अनंद जु होई। बिन सतगुरु यह लखै न कोई २६॥

टीका–हे शिष्य! आत्मासे विमुख है बुद्धि जाकी, ऐसा जो पुरुष ताकूं विषयकी इच्छा होवै है, या स्थानविषे जो भोगका साधन होवै सो विषय कहिये है. याते धनपुत्रादिकोंका भी ग्रहण करि लेना ता विषयकी इच्छाते बुद्धि चंचल रहै है. ता चंचल बुद्धिमें आत्मस्वरूप आनंदका आभास कहिये प्रतिबिंब नहीं होवै है और जिस विषयकी इच्छा हुई होवै सो विषय याकूं प्राप्त होइ जावै तब या पुरुषकी बुद्धि क्षणमात्र स्थित होयके अंतर्मुख बुद्धिकी वृत्ति होवै है ता अंतर्मुख वृत्तिविषे आत्माका स्वरूप जो आनंद ताका प्रतिबिंब होवै है. तिस आत्मस्वरूप आनंदके प्रतिबिंबकूं अनुभव करिके पुरुषकूं भ्रांति होवै है; जो मेरेकूं विषयसे आनंद-का लाभ हुवा है, परंतु विषयमें आनंद है नहीं.

जो कदाचित् विषयमें आनंद होवे, तो एकविषयसे तृप्त जो पुरुष, ताकूं जब दूसरे विषयकी इच्छा होवे, तब भी प्रथमवि-षयसे आनंद हुवा चाहिये सो होवे तौ नहीं है. और हमारी रीतिसे स्वरूपआनंदका तो भान बने नहीं. काहेते जो दूसरे विषयकी इच्छा करिके बुद्धि चंचल है, ताकेविषे प्रतिबिंब बने नहीं किंवाः–

जो विषयमेंही आनंदहोवै, तो जा पुरुषका प्रियपुत्र अथवा और कोई अत्यंत प्यारा जो अकस्मात बहुतकाळ पीछे मिलि जावै, तब वाकूं देखतेही प्रथम जो आनंद होवै, सो आनंद फेरि सदा नहीं होता; सो सदाही हुवा चाहियें. काहेते, आनंदका हेतु जो पुरुष है सो वाके समीप है. और हमारी रीतिसे तो प्रथमही आनंद बनै है; सदा बनै नहीं. काहेते. एकबेरि प्यारेकूं देखिके वृत्तिस्थित होवै है, फेरि वृत्ति और पदार्थनमें लगि जावै है; याते चंचलहै. याते पदार्थमें आनंद नहीं. किंवाः-

जो विषयमें आनंद होवै, तौ समाधिकालविषे जो योगानंदका भान होवै है, सो न हुवा चाहिये; काहेते, समाधिमें किसी विषयका संबंध नहीं है. किंवाः-

जो विषयमेंही आनंद होवे, तौ सुषुप्तिमें आनंदका भान नहीं हुवा चाहिये. काहेते, सुषुप्तिविषे भी किसी विषयका संबंध है नहीं, याते विषयमें आनंद नहीं किंतु आत्मस्वरूपआनंद सारे भान होवे है, इसीवास्ते वेदमें लिखा है:-"आत्मस्वरूप आनंदकूं लेके सारे आनंदवाले होवैं हैं." ॥ ३४–३६ ॥

दोहा।

विषय संगतैं ह्वै प्रगट, आतम आनँदरूप ॥
शिष्य सुनायो तोहि मैं, यह सिद्धांत अनूप ॥ ३७ ॥

सोरठा।

सो तूं मोहि ब भाख, जो यामें शंका रही ॥
निजमतिमैं मति राख, मैं ताको उत्तर कहूं ॥ ३८ ॥

तत्त्वदृष्टिरुवाच ।

चौपाई–भो भगवन तुम दीनदयाला ।
मेट्यो मम संशय ततकाला ॥
यामें कछुक रही आशंका ।
सो भाखा अब ह्वै निर्बंका ॥ ३९ ॥
आतमविमुख बुद्धि अज्ञानी ।
ताकी यह सब रीति बखानी ॥
ज्ञानी जनको कहौ विचारा ।
कोउ न तुम सम और उदारा ॥ ४० ॥

टीका–हे भगवन् ! आपने पूर्व विषयके संबंधसे आत्मानंदके भानकी जो रीति कही, सो अज्ञानीपुरुषकी कही, और ज्ञानीकी नहीं कही काहेते, आत्मासे विमुख है बुद्धि जाकी, ताका आपने नाम लिया है; सो आत्मा से विमुखबुद्धि अज्ञानीकी होवै है; ज्ञानीकी नहीं. याते आप ज्ञानीका विचार कहो. जो ज्ञानवानकूं विषयकी इच्छा, और ताके संबंधसे पूर्वरीति करिके सुखका भान होवै है, अथवा नहीं ? यह वार्ता आप कहो ॥ ३९ ॥ ४० ॥

श्रीगुरुरुवाच–दोहा ।

सुनहु शिष्य इक बात मम, सावधान मन कान ॥
हैं द्वैविध आतमविमुख, अज्ञानी रु सुजान ॥ ४१ ॥
ह्वै विस्मृत व्यवहारमें, कबहुँक ज्ञानी संत ॥
अज्ञानी विमुखहि रहै, यह तू जान सिधंत ॥ ४२ ॥

टीका–हे शिष्य ! तू चित्त और श्रवणकूं सावधान करके सुन. पूर्व जो हमने आत्मविमुख कहा है, सो आत्मविमुख अज्ञानीही नहीं होवे किंतु ज्ञानवान्की भी बुद्धि जब व्यवहारमें आइ जावे, तब वह तत्त्वकूं भलि जावै है. तिसकालविषे ज्ञानवान् भी आत्मविमुखही होवै है. और ज्ञानीकी बुद्धि जो सदा आत्माकारही रहै, तौ भोजनादिक व्यवहार न होवे, याते आत्मविमुखबुद्धि दोनोंकी वनैं हैं. अज्ञानीकी तौ बुद्धि सदा आत्मविमुख है. और ज्ञानीकी बुद्धि आत्मविमुख होवे तिसकालमें ज्ञानीकूं भी इच्छा, और विषयके संबंधसे जो आत्मस्वरूप आनंदका भान अज्ञानीके समान है; परंतु इतना भेद है:–विषयके संबंधसे जो आनंदका भान होवै है, जो यह आनंद है सो मेरे स्वरूपसे न्यारा नहीं है; किंतु ताकाही आभास है. याते ज्ञानीकूं विषयभोगमें भी समाधिही है. और अज्ञानी नहीं जानै है; जो मेराही स्वरूप आनंद है और दोनोंका स्वरूप आनंद है. विषयसे केवल अज्ञानीकूं भ्रांति होवै है. ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

शिष्य उवाच–चौपाई ।

हे प्रभु परमानंद बखान्यो । मेरो रूप सु मैं पहिचान्यो ॥
नहिं तोमैं भवबंधन लेशा। कह्यो आप पुनि यह उपदेशा॥४३॥
यामें शंका मुहि यह आवे । जाते तव वच हिय न सुहावे ॥
नाहिं मोमैं यह बंध पसारो । कहौ कौन तौ आश्रय न्यारो ॥

टीका–हेभगवन् ! आपने कहा " तू परम आनंदस्वरूप है " सो मैं भलीप्रकारसे जाना. और आपने कहा जो जन्म मरणसे

आदि लेके संसाररूप दुःख तेरे विषे है नहीं; यातैं ताकी निवृत्ति बनैं नहीं." याके विषे मेरेकूं शंका है:—जो जन्मादिक दुःख मेरे-विषे नहीं हैं; तौ जाविषे यह संसार है, सो मेरेसे न्यारा कहिये भिन्न आश्रय आप कृपा करिके बतावो, जाके विषे संसारदुःख जानिके अपनेविषे नहीं मानूं.

श्रीगुरुरुवाच—सोरठा ।

सुनहु शिष्य मम बानि, जाते तव शंका मिटै ॥
है जगकी अति हानि , तो मोमैं नहिं औरमैं ॥ ४५ ॥

अर्थ स्पष्ट ।

तत्त्वदृष्टिरुवाच—दोहा ।

जो भगवन कहुँ है नहीं, जन्म मरण जगखेद ॥
है प्रत्यक्ष प्रतीति क्यों?, कहो आप यह भेद ॥ ४६ ॥

टीका—हे भगवन् ! जो जन्म मरणसे आदिलेके संसार दुःख मेरेविषे तथा और विषे कहूं भी नहीं है, तो प्रत्यक्ष प्रतीत क्यों होवै है ? जो वस्तु नहीं होवै, सो प्रतीत होवै नहीं. जैसे वंध्याका पुत्र और आकाशविषे पुष्प नहीं है, सो प्रतीत होवै नहीं. तैसे संसारभी नहीं होवै तौ प्रतीत नहीं हुवा चाहिये.और जन्मसे आदिलेके संसार प्रतीत होवै है याते " जन्मादिक संसाररूपी दुःख नहीं हैं;" यह कहना बनै नहीं ॥ ४६ ॥

श्रीगुरुरुवाच—दोहा ।

आत्मरूप अज्ञानतैं, है मिथ्या परतीति ॥
जगत स्वप्न नभनीलता, रज्जुभुजगकी रीति ॥ ४७ ॥

टीका—जन्मादिक जगत् परमार्थसे नहीं है, तौभी आत्माका ब्रह्मस्वरूप करिके, अज्ञानते मिथ्या प्रतीत होवै है. जैसे स्वप्नके पदार्थ, आकाशमें नीलता और रज्जुमें सर्प परमार्थसे नहीं हैं और मिथ्या प्रतीत होवैं हैं। तैसे जन्मादिक जगत् परमार्थसे नहीं है मिथ्या प्रतीत होवै है ॥ ४७ ॥

तत्त्वदृष्टिरुवाच—चौपाई।

मिथ्यासर्प रज्जुमें जैसें। भाष्यो भव आतममें तैसें ॥
कैसे सर्प रज्जुमें भासे। यह संशय मन बुद्धि विनासै॥४८॥

टीका—जैसे रज्जुमें सर्प मिथ्या है, तैसे आत्मामें भवदुःख मिथ्या कहा; तहां दृष्टांतके ज्ञानविना दार्ष्टांतका ज्ञान होवै नहीं. याते रज्जुमें सर्प कैसे भासे ? यह दृष्टांतमें प्रश्न है ॥ ४८ ॥

अथ प्रश्नअभिप्राय।

चौपाई—असत ख्याति पुनि आतमख्याती।
ख्याति अन्यथा अरु अख्याती ॥
सुने चारि मत भ्रमकी ठौरा।
मानों कौन कहौ यह ब्यौरा ॥ ४९ ॥

टीका—जहां रज्जुमें सर्प, और सीपीमें रूपा, इत्यादिक भ्रम हैं, तहां चारि मत सुने हैं:—शून्यवादी असत्यख्याति कहैं हैं. क्षणिकविज्ञानवादी आत्मख्याति कहैं हैं. न्याय और वैशेषिकमतमें अन्यथाख्याति कहैं हैं. सांख्य और प्रभाकर अख्याति कहैं हैं. तहां—

शून्यवादीका यह अभिप्राय है:—जेवरी देशमें सर्प अत्यंत असत् है. तैसे अन्य देशमें भी अत्यंत असत् है. ऐसे अत्यंत असत् सर्पकी जेवरी देशमें प्रतीति होवै है; याकूं असत्य ख्याति कहैं हैं. अत्यन्त असत्य सर्पकी ख्याति कहिये भान और कथन है.

विज्ञानवादीका यह अभिप्राय है:—जेवरी देशमें तथा अन्य देशमें बुद्धिके बाहिर कहूं सर्प है नहीं सारे पदार्थ बुद्धिसे भिन्न नहीं किंतु सर्व पदार्थोंके आकारकूं बुद्धिही धारै है. सो बुद्धि क्षणिकविज्ञानरूपा है. क्षणक्षणमें नाश और उत्पत्तिकूं प्राप्त होवै जो विज्ञान सोई सर्परूप प्रतीत होवै है. याकूं आत्मख्याति कहैं हैं. आत्मा कहिये क्षणिकविज्ञानरूप बुद्धि, ताका सर्परूपसे ख्याति कहिये भान और कथन है.

नैयायिकका और वैशेषिकका यह अभिप्राय है:—बंबी आदिक स्थानमें साँचा सर्प है, ताकूं नेत्रसे देखै है. और नेत्रमें दोष है, ताके बलते सन्मुख समीप प्रतीत होवै है, यद्यपि साँचा सर्प और नेत्रके मध्य भीति आदिक अंतराय हैं, तथापि दोषसहित नेत्रते अंतरायसहित भी सर्प दीखै है. और यामें कोऊ ऐसी शंका करै—दोषते सामर्थ्य घटै है, बधै नहीं. जैसे जठराग्निमें पाचनसामर्थ्य वात पित्त कफदोषते घटै है. तैसे नेत्रमें भी तिमिरादि दोषते सामर्थ्य घटी चाहिये. और बंबीआदिक स्थानमें स्थित सर्पका दोषसहित नेत्रसे ज्ञान कहा, तहां शुद्धनेत्रसे तो परदेशमें स्थितका प्रत्यक्ष ज्ञान होवे नहीं, और दोषसहितसे होवै

है. याते दोषते नेत्रका सामर्थ्य अधिक होवै है; यह माननेमें कोई दृष्टांत नहीं सो शंका बनै नहीं. काहेते किसीकूं पित्तदोषते ऐसा रोग होवै है जो चतुर्गुणभोजन कियेतेभी तृप्ति होवै नहीं जैसे पित्तदोषतें जठराग्निमें पाचनसामर्थ्य बधै है. तैसे नेत्रमेंभी तिमिरादि दोषते परदेशमें स्थित सर्पके प्रत्यक्ष करनेका सामर्थ्य बधै है. इसरीतिसे बंबी आदिक देशमें स्थित सर्पका अन्यथा कहिये और प्रकारते सन्मुख जेवरीदेशमें जो ख्याति कहिये भान और कथन, सो अन्यथाख्याति कहिये है. और चिंतामणिकार (नैयायिक) का यह मत है:—जो दोषसहित नेत्रते बंबीमें स्थित सर्पका ज्ञान होवै, तौ बीचके और पदार्थनका ज्ञानभी हुवा चाहिये याते परदेशमें स्थित वस्तुका नेत्रसे ज्ञान होवै नहीं, किंतु दोषसहित नेत्रते जेवरीका निजरूपते भान होवै नहीं सर्परूपते भान होवैहै. याते जेवरीकाही अन्यथा कहिये और प्रकारते सर्परूपते जो ख्याति कहिये भान और कथन, सो अन्यथाख्याति कहिये है.

और अख्यातिवादीका यह अभिप्राय है:—जो असत्की प्रतीति होवै, तौ वंध्यापुत्र, और शशशृंगकी प्रतीति हुई चाहिये. याते असत्ख्याति असंगत है. क्षणिकविज्ञानकाही आकार सर्पादिक होवे तौ क्षणमात्रसे अधिककाल स्थिर प्रतीति नहीं हुई चाहिये. याते आत्मख्याति असंगत है. और अन्यथाख्यातिकी प्रथमरीति तौ चिंतामणिके मतसे दूषितहीहै. तैसे चिंतामणिकी रीतिसेभी अन्यथाख्यातिमत असंगत है. काहेते ज्ञेयके अनुसार

ज्ञान होवै है. ज्ञेय रज्जु और सर्प का ज्ञान, यह कहना अत्यंतविरुद्ध है. याते यह रीति माननी योग्य है:-

जहां रज्जुमें सर्पभ्रम है, तहां रज्जुसे नेत्रका अपनी वृत्ति द्वारा संबंध होयके रज्जुका इदंरूपते सामान्य ज्ञान होवैहै; और सर्पकी स्मृति होवै है. "यह सर्प है" यामें दो ज्ञान हैं:-" यह " अंश तो रज्जुका सामान्य प्रत्यक्ष ज्ञान है, और "सर्प है" ऐसे सर्पका स्मृतिरूप ज्ञान है. इसरीतिसे "यह सर्प है" यहां दो ज्ञान हैं; परंतु भयदोष प्रमातामें, और तिमिर दोष प्रमाणमें, ताके बलते पुरुषकूं ऐसा विवेक नहीं होता, जो मेरेकूं दो ज्ञान हुयेहैं. यद्यपि " यह " अंश रज्जुका सामान्य ज्ञान यथार्थ है. और पूर्व देखे सर्पका स्मृतिज्ञानभी यथार्थही है. तोभी मेरेकूं दो ज्ञान हुये हैं; तिनमें रज्जुका समान्य प्रत्यक्ष ज्ञान है; औ सर्पका स्मृतिज्ञान है; यह विवेक नहीं होवै है. तिस दो ज्ञानके अविवेककूंही सांख्य प्रभाकर मतमें भ्रम कहैहैं. यही रीति सारे भ्रमस्थलमें जाननी; या रीतिसे रज्जुआदिकनमें सर्पादिक भ्रम जहां होवे, तहां चारि मत सुने हैं. तिनमें नीका मत होइ सो कहो; ताहीकूं मैं मानों. यह शिष्यका प्रश्न है ॥ ४९ ॥

श्रीगुरुरुवाच-दोहा।

ख्याति अनिर्वचनीय लखि, पंचम तिनतें और ॥
युक्तिहीन मत चारि ये, मानहु भ्रमकी ठौर ॥ ५० ॥

टीका-हे शिष्य! तिन चारि ख्यातिते औरही भ्रमकी ठौर

अनिर्वचनीयख्याति पंचम लख. और असत्ख्याति, आत्मख्याति, अन्यथाख्याति, अख्याति; ये चारि मत युक्तिहीन हैं. जैसे उत्तर मतनिरूपणमें तीनि मत असंगत कहे; तैसे अख्यातिमत भी असंगत है. काहेतें " यह सर्प है " या ज्ञानमें प्रथम " यह " अंश तौ रज्जुका सामान्य ज्ञान प्रत्यक्ष है; और " सर्प है " इतना अंश पूर्वदृष्ट सर्पका स्मरण ज्ञान है. यह अख्यातिवादीका मत है. तहां पूर्वदृष्ट सर्पका स्मरणही मानैं, और सन्मुख रज्जुदेशमें सर्पका ज्ञान नहीं मानैं तौ सन्मुख रज्जुते पुरुषकूं भय होयके उलटा भागै है, सो भय और भागना नहीं हुवा चाहिये. याते—सन्मुख रज्जुदेशमेंही सर्पकी प्रतीति होवै है; पूर्वदृष्ट सर्पकी स्मृति नहीं किंवाः—रज्जुका विशेष रूपते यथार्थज्ञान हुयेते अनंतर ऐसा बाध होवै हैः—"मेरेकूं रज्जुमें सर्पकी प्रतीति मिथ्या होती भई." या बाधते भी रज्जुमेंही सर्पकी प्रतीति होवै है, पूर्व दृष्ट सर्पकी स्मृति नहीं और "यह सर्प है" इहां ज्ञान एकही प्रतीत होवै है, दो नहीं. और एककालमें अंतःकरणते स्मृतिरूप और प्रत्यक्षरूप दो ज्ञान होवैं भी नहीं. याते अख्यातिमत भी अत्यंत असंगत है इन चारों मतनका प्रतिपादन औरं खंडन विवरण और स्वाराज्यसिद्धिआदिक ग्रंथनमें विस्तारसे लिखा है; प्रतिपादन और खंडनकी युक्ति कठिन है, याते संक्षेपते जिज्ञासुकूं रीति जनाई है; विस्तारसे हमने लिखा नहीं.

सिद्धांतमें अनिर्वचनीयख्याति है; ताकी यह रीति हैः—अंतःक-

रणकी वृत्ति नेत्रादिद्वारा निकसिके विषयके समान आकारकूं प्राप्त होवै है. ताते विषयका आवरण भंग होयके ताकी प्रतीति होवै है. तहां प्रकाश भी सहायक होवै है. प्रकाशविना पदार्थकी प्रतीति होवै नहीं जहां रज्जुमें सर्पभ्रम होवै है,तहां अंतःकरणकी वृत्ति नेत्र द्वारा निकसी भी, और रज्जुसे ताका संबंध भी होवै; परंतु तिमिरादिकदोष प्रतिबंधक हैं, याते रज्जुके समानाकारवृत्तिका स्वरूप होवै नहीं; याते रज्जुका आवरण नाशै नहीं इसरीतिसे आवरणभंगका निमित्त वृत्तिका संबंध हुयेते भी जब रज्जुका आवरण भंग होवै नहीं, तब रज्जुचेतनमें स्थित अविद्यामें क्षोभ होयके, सो अविद्या सर्पाकारपरिणामकूं प्राप्त होवै है. सो अविद्याका कार्य सर्प सत् होवे तो रज्जुके ज्ञानसे ताका बाध होवै नहीं. और बाध होवै है; यातें सत नहीं. और असत् होवै तो वंध्यापुत्रकी न्याई प्रतीति नहीं होवै, और प्रतीति होवै है; याते असत् भी नहीं किंतु सत् असतसे विलक्षण अनिर्वचनीय है शुक्ति आदिकनमें रूपादिक भी यही रीतिसे अनिर्वचनीय उत्पन्न होवैं हैं. ता अनिर्वचनीयकी जो ख्याति कहिये प्रतीति और कथन, सो अनिर्वचनीयख्याति कहिये है.

जैसे सर्प अविद्याका परिणाम है, तैसे ताका ज्ञानरूप वृत्ति भी अविद्याकाही परिणाम है अंतःकरणका नहीं काहेते, जैसे रज्जुज्ञानते सर्पका बाध होवै है तैसे ताके ज्ञानका भी बाध होवै है. अंतःकरण ज्ञान होवै तो बाध नहीं हुवा चाहिये, यातैं ज्ञानभी सर्पकी न्याई अविद्याका कार्य सत् असतसे विलक्षण अनिर्वच-

नीय है. परंतु रज्जुउपहितचेतनमें स्थित तमोगुण प्रधान अविद्या-अंशका परिणाम सर्प है और साक्षीचेतनमें स्थित अविद्याके सत्त्वगुणका परिणाम वृत्तिज्ञान है. रज्जुचेतनकी अविद्याका जा समय सर्पाकार परिणाम होवै है, ताही समय साक्षी आश्रित अविद्याका ज्ञानाकारपरिणाम होवै है. काहेते, रज्जुचेतन आश्रित अविद्यामें क्षोभका जो निमित्तसेही साक्षी आश्रित अविद्याअंशमें क्षोभ होवै है. याते भ्रमस्थलमें सर्पादिक विषय और तिनका ज्ञान, एकंही समय उत्पन्न होवै है. और रज्जुआदिक अधिष्ठानके ज्ञानते एकही समय लीन होवै है या रीतिसे सर्पादिक भ्रमविषे बाह्य अविद्याअंश सर्पादिक विषयका उपादानकारण है. और साक्षीचेतनआश्रित अंतर अविद्या अंश तिनके ज्ञानरूप वृत्तिका उपादानकारणं है.

और स्वप्नमें तौ साक्षी आश्रित अविद्याकाही तमोगुणअंश विषयरूप परिणामकूं प्राप्त होवै है. ता अविद्यामें सत्त्वगुणअंश ज्ञानरूप परिणामकूं प्राप्त होवै है. याते स्वप्नमें अंतर अविद्याही विषय और ज्ञान दोनोंका उपादान कारण है. याहीते बाह्य रज्जु सर्पादिक, और अंतर स्वप्न पदार्थ, साक्षी भास्य कहिये रज्जु आदिकनमैं अनिर्वचनीयसर्पादिक, और तिनका ज्ञान भ्रम कहिये है; और अध्यास कहिये है सो भ्रम अविद्याका परिणाम है; और चेतनका विवर्त है. उपादानकारणके समान स्वभाववाला अन्यथास्वरूप परिणाम कहिये है. और अधिष्ठानते विपरीत स्वभाववाला अन्यथास्वरूप विवर्त कहिये है.उपादानकारण अवि-

था, सो अनिर्वचनीय है तैसे रज्जुमें सर्प और ताका ज्ञान भी अनिर्वचनीय है. याते रज्जुसर्प और ताका ज्ञान अविद्याके समान-स्वभाववाला. अन्यथास्वरूप कहिये अविद्याते और प्रकारका आकार है. सो अविद्याका परिणाम है. तैसे रज्जुअवच्छिन्न अधिष्ठान, चेतन सद्रूप है, सर्प और ताका अज्ञान सतसे विलक्षण है. याते रज्जुसर्प और ताका ज्ञान अधिष्ठानचेतनते विपरीतस्वभाव-वाला, अन्यथास्वरूप कहिये चेतनसे और प्रकारका आकार है.

मिथ्या सर्पका अधिष्ठान रज्जुउपहित चेतन है, रज्जु नहीं. काहेते सर्पकी न्याईं रज्जु भी कल्पित है. कल्पितवस्तु अन्यकल्पितका अधिष्ठान बनै नहीं. याते रज्जुउपहित चेतनही अधिष्ठान है, रज्जु नहीं और रज्जुविशिष्टकूं अधिष्ठान कहैं तो भी रज्जु और चेतन दोनों अधिष्ठान होवेंगे तहां रज्जुभागमें अधिष्ठानपना बाधित है. याते रज्जुउपहितचेतनही अधिष्ठान है रज्जुविशिष्ट चेतन नहीं. तैसे सर्पके ज्ञानका साक्षीचेतन अधिष्ठान है. या रीतिसे भ्रमस्थानमें विषयका और ताके ज्ञानका उपाधिभेदसे अधिष्ठान भिन्न है; एक नहीं और विशेषरूपते रज्जुकी अप्रतीति अविद्यामें क्षोभद्वारा दोनों की उत्पत्तिमें निमित्त है. तैसे रज्जुका ज्ञान दोनोंकी निवृत्तिमें भी निमित्त कही है. याके विषे, ऐसी शंका होवे है:—

रज्जुके ज्ञानते सर्पकी निवृत्ति बनै नहीं. काहेते, मिथ्यावस्तुका जो अधिष्ठान होवै, ता अधिष्ठानके ज्ञानते मिथ्याकी निवृत्ति होवै है, यह अद्वैतवादका सिद्धांत है, और मिथ्यासर्पका अधि-

ष्ठान रज्जुउपहित चेतन है; रज्जु नहीं याते रज्जुके ज्ञानते सर्पकी निवृत्ति बनै नहीं या शंकाका यह समाधान हैः—

रज्जु आदिक जडपदार्थका ज्ञान अंतःकरणकी वृत्तिरूप होवै, तहां आवरणभंग वृत्तिका प्रयोजन है. सो आवरण अज्ञानकी शक्ति है. याते आवरण जडके आश्रित है नहीं, किंतु जडका अधिष्ठान जो चेतन, ताके आश्रित है. याते रज्जु समानाकार अंतःकरणकी वृत्तिते रज्जु अवच्छिन्नचेतनकाही आवरण भंग होवै है. वृत्तिमें जो चिदाभास है. ताते रज्जुका प्रकाश होवै है. चेतन स्वयंप्रकाश है, तामें आभासका उपयोग नहीं. यह प्रक्रिया संपूर्ण आगे प्रतिपादन करैंगे. इसरीतिसे चिदाभाससहित अंतःकरणकी वृत्तिरूप ज्ञानमें जो वृत्तिभाग, ताका आवरणभंगरूप फल चेतनमें होवै है, और चिदाभासभागका प्रकाशरूप फल रज्जुमें होवै है. याते वृत्तिज्ञानका केवल जड़रज्जु विषय नहीं. किंतु अधिष्ठानचेतनसहित रज्जु साभासवृत्तिका विषय है. इसीकारणते सिद्धांतग्रंथमें यह लिखा है—"अंतःकरणजन्य वृत्तिज्ञान सारै ब्रह्मकूं विषय करै है." या प्रकारसे रज्जुज्ञानसे निरावरण होयके सर्पका अधिष्ठान रज्जु अवच्छिन्न चेतनका भी निजप्रकाशते भान होवै है. याते रज्जुका ज्ञानही सर्पके अधिष्ठानका ज्ञान है. ताते सर्पकी निवृत्ति संभवै है. अन्यशंका—

यद्यपि या रीतिसे सर्पकी निवृत्ति रज्जुके ज्ञानते संभवै है, तथापि सर्पके ज्ञानकी निवृत्ति संभवै नहीं काहेते; सर्पका अधिष्ठान

रज्जुअवच्छिन्न चेतन है. और सर्पके ज्ञानका अधिष्ठान साक्षी चेतन है. पूर्वउक्तप्रकारते रज्जुज्ञानसे रज्जु अवच्छिन्नचेतनकाही भान होवै है; साक्षीचेतनका नहीं. याते रज्जुका ज्ञान हुयेते भी सर्पज्ञानका अधिष्ठान साक्षीचेतन अज्ञात है. और अज्ञात अधिष्ठानमें कल्पितकी निवृत्ति होवे नहीं. किंतु ज्ञात अधिष्ठानमेंही कल्पितकी निवृत्ति होवै है याते रज्जुज्ञानते सर्पज्ञानकी निवृत्ति बनें नहीं. ताका. समाधान यह है:-

विषयके अधीन ज्ञान होवे है. विषय जो सर्प, ताकी निवृत्ति होतेही सर्पके ज्ञानकी विषयके अभावते आपही निवृत्ति होवेहै.

और जो ऐसे कहै:-कल्पितकी निवृत्ति अधिष्ठान ज्ञान विना होवे नहीं; और सर्पका ज्ञान भी कल्पित है; ताका अधिष्ठान साक्षीचेतन है; ताके ज्ञानविना कल्पितसर्पके ज्ञानकी निवृत्ति बनें नहीं.

ताका समाधान यह है:-निवृत्ति दो प्रकारकी होवै है. एक तौ अत्यंतनिवृत्ति होवै है, और दूसरी कारणमें जो लय, सो भी निवृत्ति कहिये है. कारणसहित कार्यकी निवृत्ति अत्यंतनिवृत्ति कहिये है. सारै कल्पितवस्तुका कारण अधिष्ठानके आश्रित अज्ञान है. ता अज्ञान सहित कल्पितकार्यकी निवृत्ति तौ अधिष्ठानज्ञानतेही होवै है. परंतु कारणमें लयरूप जो निवृत्ति, सो अधिष्ठानज्ञान विना भी होवै है. जैसे सुषुप्ति और प्रलयसे सर्वपदार्थनका

अज्ञानमें लय अधिष्ठानज्ञानसे बिना होवै है, तहां सर्वपदार्थनके लयमें निमित्त, भोगके सन्मुख कर्मका अभाव है. तैसे आधिष्ठान साक्षीके ज्ञानविनाही सर्पज्ञानका लय होवै है. तहां सर्पज्ञानका विषय जो सर्प ताका; अभावते सर्पज्ञानके लयमें निमित्त है. या प्रकारसे सर्पकी निवृत्ति रज्जुज्ञानते होवै है. और सर्पज्ञानका विषय जो सर्प; ताके अभावते सर्पज्ञानका लय होवै है.

अथवा, सर्प और ताका ज्ञान दोनोंकी निवृत्ति रज्जुज्ञानतेही होवै है काहेतें, जब रज्जुका प्रत्यक्षज्ञान. होवै तब अंतःकरणकी वृत्ति नेत्रद्वारा निकसिके रज्जुदेशमें प्राप्त होवै है. और रज्जुके समान वृत्तिका आकार होवै है. याते रज्जुके प्रत्यक्षसमय वृत्ति उपहितचेतन और रज्जुउपहितचेतन दोनों एक होव हैं. तिनका भेद रहे नहीं यामें यह हेतु है. -चेतनका स्वरूपसे तौ भेद कहूं भी नहीं, किंतु उपाधिके भेदसे चेतनका भेद होवै है वृत्तिउपहितचेतन और रज्जुउपहितचेतनका भेदक उपाधि, वृत्ति और रज्जु है. सो वृत्ति और रज्जु भिन्न भिन्न देशमें स्थित होवे, जब तौ उपाधिवाले चेतनका भेद होवै है और दोनों उपाधि एक देशमें स्थित होवैं, तब उपहितचेतनका भेद बनैं नहीं. यह वार्ता वेदांतपरिभाषादिक ग्रंथनमें लिखी है. भिन्नदेशमें स्थित उपाधितेही उपहितचेतनका भेद होवै. एकदेशमें जब दोनों उपाधि स्थित भी होवें, तब दोऊउपाधिसे उपहित भी चेतन एकहीं होवै है. याप्रकारते रज्जुके प्रत्यक्षज्ञान समय रज्जुउपहित चेतन

और वृत्तिउपहितचेतन एक है. तहां साक्षीचेतनही वृत्तिउपहितचेतन है काहेते अंतःकरण और ताकी वृत्तिमें स्थित जो तिनका प्रकाशक चेतन मात्र, सो साक्षी कहिये है. इसरीतिसे रज्जुज्ञान समय साक्षीचेतन और रज्जुउपहित चेतनका अभेद होवै है. और रज्जुउपहित चेतनका रज्जुज्ञानसे भान होवै है और रज्जुउपहित चेतनसे अभिन्न साक्षीका भी रज्जु ज्ञानसे भान होवै है. या प्रकारते रज्जुज्ञान समय अधिष्ठान साक्षीका भान होनेते कल्पितसर्पज्ञानकी निवृत्ति संभवै है.किंवाः—

कूटस्थदीपमें विद्यारण्यस्वामीने यह प्रक्रिया कहीहैः—"आभाससहित अंतःकरणकी वृत्ति इंद्रियद्वारा निकसिके घटादिक विषयकूं प्रकाशै है. घटादिक विषय, और तैसे आभाससहित वृत्तिरूप तिनका ज्ञान, तथा आभाससहित अंतःकरणरूप ज्ञाता, इन तीनकूं साक्षी प्रकाशै है." "यह घट है"इस रीतिसे आभाससहित वृत्तिसे घटमात्रका प्रकाश होवै हैं. मैं घटकूं जानूं हूं" या रीतिसे" मैं " शब्दका अर्थ ज्ञाता. और ज्ञेय घट,और ताका. ज्ञान या त्रिपुटीका साक्षीसे प्रकाश होवै है, या प्रकारते सर्वत्रिपुटियोंका प्रकाशक साक्षी है. साक्षी आप अज्ञात होवै, तो त्रिपुटीका ज्ञान साक्षीसे बनै नहीं. याते सर्वत्रिपुटियोंके ज्ञानमें साक्षीका ज्ञान अवश्य होवै है. ता साक्षीज्ञानते सर्पज्ञानकी निवृत्ति संभवै है या पूर्वरीतिसे सर्प और ताके ज्ञानका अधिष्ठान भिन्न भिन्न कहा. तामें इतने शंका समाधान हैं. या पक्षमें शंका समाधान रूप विवाद और भी बहुत हैं. याते.

सर्प और ताके ज्ञानका अधिष्ठान एकही है.' यह पक्ष कहैं—तहां बाह्य जो रज्जुचेतन है, ताकं सर्प और ताके ज्ञानका अधिष्ठान कहैं, तो बनै नहीं. काहेते, जितने ज्ञान होवें, सो प्रमाता अथवा साक्षिके आश्रित होवैं हैं. बाह्य जो रज्जुचेतन, ताके आश्रित ज्ञान बनै नहीं. तैसे सर्प और सर्पके ज्ञानका अधिष्ठान अंतःकरण उपहित साक्षीचेतनकूं मानैं, तो शरीरके अंतर अंतःकरणदेशमें सर्पकी प्रतीति चाहिये; रज्जुदेशमें सर्पकी प्रतीति नहीं चाहिये. अंतर उपजे सर्पकी बाहिर प्रतीति मायाके बलते मानैं, तौ आत्मख्यातिमतकी सिद्धि होवेगी. इसरीतिसे रज्जुउपहित चेतन, ज्ञानका अधिष्ठान बनै नहीं. और अंतःकरणउपहित चेतन. सर्पका अधिष्ठान बनै नहीं. यातैं सर्प और ताके ज्ञानका अधिष्ठान एक नहीं बनै. तथापि रज्जुके समीप प्राप्त जो अंतःकरणकी इदमाकारवृत्ति, तामें स्थित चेतनके आश्रित अविद्या, सर्पाकार और ज्ञानाकार परिणामकूं प्राप्त होवे है. वृत्तिउपहित चेतनमें स्थित अविद्याका तमोगुणसर्पका अंश उपादानकारण है. सर्प और ताके ज्ञानका वृत्तिउपहित चेतन अधिष्ठान है. वृत्ति, रज्जुदेशमें बाहिर गई, याते वृत्तिउपहित चेतन भी बाहिर है. याते सर्पका आश्रय बनै है. जितना अंतःकरणका स्वरूप होवे, उतनाही साक्षीका स्वरूप होवै है. शरीरके अंतर स्थित जो अंतःकरण, सोई वृत्तिस्वरूपपरिणामकूं प्राप्त होवै है. याते वृत्तिउपहित चेतन साक्षी है. याते ज्ञानका आश्रय बनै है. रज्जुका जब साक्षात्कार

होवै, तब रज्जुचेतन और वृत्तिचेतन दोनों एक होवैं हैं. याते रज्जुके ज्ञानसे सर्प और ताके ज्ञानकी निवृत्ति भी बनै है.

जहां एक रज्जुमें दशपुरुषनकूं किसीकूं सर्प, किसीकूं दंड, किसीकूं माला, किसीकूं पृथिवीकी दरार, किसीकूं जलधारा; इसरीतिसे भिन्न २ प्रतीति होवै, अथवा, सर्वकूं सर्पही प्रतीत होवे. तहां जा पुरुषकूं रज्जुका साक्षात्कार होवै है, ताकी वृत्ति चेतनमें कल्पित अध्यासकी निवृत्ति होवे है. जाकूं रज्जुज्ञान नहीं होवे, ताके अध्यासकी निवृत्ति होवै नहीं. याते वृत्तिचेतनही कल्पितका अधिष्ठान है, रज्जुआदिकविषय उपहितचेतन नहीं. जो रज्जउपहित चेतनकूं सर्पदंडादिकनका अधिष्ठान मानैं, तौ दश पुरुषनकं प्रतीत जो होवें दश पदार्थ, सो एक एककूं सारे प्रतीत हुये चाहिये. और हमारी रीतिसे तौ जाकी वृत्तिचेतनमें जो पदार्थ कल्पित है, सो ताहीकं प्रतीत होवे; अन्यकूं नहीं. इसरीतिसे बाह्यसर्पादिक और तिनके ज्ञानका वृत्तिउपहित साक्षी अधिष्ठान है. स्वमके पदार्थ, और तिनके ज्ञानका भी अंतःकरण उपहित साक्षीही अधिष्ठान है. या प्रकारते सत् असत्से विलक्षण जो अनिर्वचनीय अविद्याका परिणाम अनिर्वचनीयसर्पादिक तिनकी ख्याति कहिये प्रतीति और कथन, सो अनिर्वचनीयख्याति कहिये है ॥ ५० ॥

शिष्य उवाच-दोहा ।

यह मिथ्या परतीतहै, जामें जगत अपार ॥

सो भगवन मोकूं कहो, को याको आधार ॥ ५१ ॥

अर्थ स्पष्ट ॥ ५१ ॥

श्रीगुरुरुवाच-दोह

तव निजरूप अज्ञानतैं, ह्वै मिथ्या जग भान ॥
अधिष्टान आधार तू, रज्जुभुजंग समान ॥ ५२ ॥

टीका-हे शिष्य ! तेरा जो निजरूप कहिये ब्रह्मरूप करिके अज्ञान, तिसते मिथ्या जगत् प्रतीत होवै है याते जगत्‌का आधार और अधिष्ठान तू है. जैसे रज्जुके अज्ञानते मिथ्याभुजंग प्रतीत होवै हैं, तहां मिथ्याभुजंगका आधार और अधिष्ठान रज्जु है. यद्यपि मिथ्यासर्पका अधिष्ठान मरव्य द्वितीयपक्षमें वृत्तिउपहित चेतन है, और प्रथम पक्षमें रज्जुउपहित चेतन है, किसी पक्षमें रज्जु अधिष्ठान नहीं; तथापि प्रथमपक्षमें चेतनमें अधिष्ठानपनेकी उपाधि रज्जु है. याते स्थूलदृष्टिसे रज्जु अधिष्ठान कहिये है. जैसे मिथ्याभुजंगका अधिष्ठान तथा आधार रज्जु है, तैसे मिथ्याजगत्‌का अधिष्ठान और आधार तू है.

या स्थानमें यह रहस्य है:-जैसे जेवरीके दो स्वरूप हैं एक तौ सामान्यरूप है, एक विशेषरूप है, सामान्य रूप "इदं" है. विशेपरूप " रज्जु " है " यह सर्प है " या रीतिसे मिथ्यासर्पसे अभिन्न होयके भ्रांतिकालमें भी प्रतीत होवै जो " इदंरूप " सो सामान्यरूप है. और जो स्वरूपकी भ्रांतिकालमें प्रतीत न होवे, किंतु जाकी प्रतीति हुयेते भ्रांति दूरि होवे, सो रज्जुका विशेषरूप है तैसे आ-

त्माके भी दोस्वरूप हैं. एक सामान्यरूप, सरा विशेषरूप. सद्रूप सामान्य है. असंगता कूटस्थता नित्यमुक्तादिक विशेष रूप हैं काहेते, "स्थूलसूक्ष्मसंघात है." यामें स्थूल सूक्ष्मसंघातकी भ्रांति-समय भी मिथ्यासंघातसे अभिन्न होयके सद्रूप प्रतीत होवै है. याते आत्माका सत्स्वरूप सामान्यरूप है. और स्थलसूक्ष्मसंघातकी भ्रांतिसमय आत्माका असंग कूटस्थ नित्यमुक्तस्वरूप प्रतीत होवे नहीं, किंतु असंगादि स्वरूप आत्माकी प्रतीति हुयेते संघातभ्रांति दूरि होवै है. याते असंगता, कूटस्थता, नित्यमुक्तता, व्यापकता-दिक विशेषरूप हैं. सर्व भ्रांतिमें सामान्यरूप आधार कहिये है. और विशेषरूप अधिष्ठान कहिये है. जैसे सर्पका आश्रय जो जेवरी, ताका सामान्य "इदं" स्वरूप सर्पका आधार है और विशेष रज्जुस्वरूप अधिष्ठान है तैसे मिथ्याप्रपंचका आश्रय जो आत्मा ताका सामान्य सद्रूप प्रपंचका आधार है. और असंगतादिक विशेषरूप अधिष्ठान है. इसरीतिसे आधार और अधिष्ठानका सर्व-ज्ञात्म नाम मुनिने किंचित् भेद प्रतिपादन किया है.

शिष्य उवाच—दोहा।

भगवन ! मिथ्याजगतको, द्रष्टा कहिये कौन ॥
अधिष्ठान आधार जो, द्रष्टा होय न तौन ॥ ५३ ॥

अर्थ स्पष्ट ! भाव यह है:—जगत्का आधार और अधिष्ठान आत्मा है, याते जगत्का द्रष्टा आत्मासे भिन्न कह्या चाहिये, जैसे सर्पका आधार और अधिष्ठान जो रज्जु तासे भिन्न पुरुष सर्पका द्रष्टा है ॥ ५३ ॥

श्रीगुरुरुवाच-चौपाइ ।

मिथ्यावस्तु जगतमैं जे हैं । अधिष्ठानमें कल्पित ते हैं ॥
अधिष्ठान सो द्विविध पिछानहु।इक चेतन दूजो जड़जानहु ॥
अधिष्ठान जडवस्तु जहां है । द्रष्टा ताते भिन्न तहां है ॥
जहां होय चेतन आधारा । तहां न द्रष्टा होवै न्यारा ॥ ५५ ॥

अर्थ स्पष्ट । भाव यह हैः—जहां जड अधिष्ठान होवै,तहां अधिष्ठानसे भिन्न द्रष्टा होवै है. जहां चेतन अधिष्ठान होवै तहां अधिष्ठान ही द्रष्टा होवै है. भिन्न नहीं ॥ ५५ ॥

दोहा ।

चेतन मिथ्यास्वप्नको, अधिष्ठान निर्धार ॥
सोई द्रष्टा भिन्न नहिं, तैसे जगत विचार ॥ ५६ ॥

टीका—जैसे स्वप्नका अधिष्ठान साक्षीचेतन है, सोई स्वप्नका द्रष्टा है, तैसे जगत्का आत्मा ही अधिष्ठान है, सोई द्रष्टा है यह शंका और समाधान स्थूलदृष्टिसे जेवरीकूं सर्पका अधिष्ठानमानिके कहैं हैं. और सिद्धांत मतमें तौ सर्पका अधिष्ठान साक्षीचेतन है, सोई द्रष्टा है. याते सारै कल्पितका अधिष्ठानही द्रष्टा है. शंका समाधान वनै नहीं ॥ ५६ ॥

दोहा ।

इम मिथ्या संसारदुख, है तोमैं भ्रम भान ॥
ताकी कहा निवृत्ति तू, चाहै शिष्य सुजान ॥ ५७ ॥

टीका—हे शिष्य! इसरीतिसे तेरेविषे संसाररूपी दुःख, मिथ्याही

भ्रांतिसे प्रतीत होवै है, ता मिथ्याकी निवृत्तिकी चाह बनै नहीं. दृष्टांतः—जैसे बाजीगरने किसी पुरुषकूं मिथ्याशत्रु मंत्रके बलसे दिखाया होवै, ताके मारनेविषे वह पुरुष उद्योग नहीं करता. तैसे मिथ्या संसारकी निवृत्तिकी चाह बनै नहीं ॥ ५७ ॥

शिष्य उवाच–चौपाई।

जग यद्यपि मिथ्या गुरुदेवा। तथापि मैं चाहूं तिहि छेवा॥
स्वप्न भयानक जाकूं भासै। करि साधन जन जिम तिहिं नासै॥
याते ह्वै जाते जग हाना। सो उपाय भाषो भगवाना॥
तुम समान सतगुरु नहिं आना। श्रवण फूंक दे बंचकनाना॥

टीका–हे भगवन्! आपने कहा जो " जगत् तेरेविषे मिथ्या रूप करिके है; और सत्यरूप करिके नहीं. " सो यद्यपि सत्य है, तथापि हे भगवन्! सो मिथ्यारूप करिके वा जो उपाय करिके मरणादिक संसार मेरे विषे भान न होवै. सो उपाय आप कहो. और आपने कहाथा, जो " मिथ्याकी निवृत्तिवास्ते साधन चाहिये नहीं " सो वार्ता भी सत्य है परंतु हे भगवन्! जाकूं मिथ्यापदार्थ भी दुःखका हेतु होवै. ताकूं वह मिथ्याभी साधनसे दूरि करना योग्य है. जैसे किसी पुरुषकूं प्रतिदिन भयानकस्वप्न आवते होवें, सो मिथ्या भी हैं परंतु तिनके भी दूरि करनेकूं जप और पादप्रक्षालनादिक नानासाधन अनुष्ठान करैं हैं; तैसे यह संसार मिथ्या भी है परंतु जन्मादिक दुःखका हेतु मेरेकूं प्रतीत होवै है. याते संसारकी निवृत्ति चाहूं हूं, आप कृपा करिके उपाय बतावो.

श्रीगुरुरुवाच-सोरठा।

सो मैं कह्यो बखानि, जो साधन तैं पूछियो ॥
निज हिय निश्चय आनि, रहै न रंचक खेदजग ॥ ६० ॥

टीका—हे शिष्य। जो तैं जगत्रूपी दुःखकी निवृत्तिका साधन पूछ्या सो हमन तेरेकूं प्रथमही कह दिया. तिसविषे तूं दृढ निश्चय कर. ताते जगत्रूपी खेद रहै नहीं ॥ ६० ॥

दोहा।

निज आतम अज्ञानते, हैप्रतीत जग खेद ॥
धशै सु ताके बोधतैं, यह भाषत मुनि वेद ॥ ६१ ॥
जग मोमैं नहिं" ब्रह्ममें ,""अहं ब्रह्म " यह ज्ञान ॥
सो तोकूं शिष मैं कह्यो, नहिं उपाय को आन ॥ ६२ ॥

टीका—हे शिष्य ! अपने आत्मस्वरूपके अज्ञानते जगत्रूपी खेद प्रतीत होवै है; सो आत्मज्ञानते मिटै है. जो वस्तु जाके अज्ञानते प्रतीत होवै, सो ताके ज्ञानते मिटैहै; सो यह नियम है. जैसे रज्जुके अज्ञानते सर्प प्रतीत होवै है, सो रज्जुके बोधते मिटै है, तैसे आत्मज्ञानते जगत् मिटै है, सो आत्मज्ञान हमने कहि दिया. जगत् तौ मेरेविषे तीनकालमें है नहीं, काहेतैं मिथ्या है जो मिथ्या-वस्तु होवै है, सो अधिष्ठानकी हानि नहीं करै है. तैसे मरीचिकाका जो जल है, सो पृथ्वीकं गीली नहीं करै है, तैसे"जगत् प्रतीत भी होवै है," परंतु मिथ्या है. कछु मेरी हानि करनेविषे समर्थ है नहीं औरमैं "सत्चित् आनंदरूप ब्रह्म स्वरूपहूं"ऐसा जो निश्चय, ताका

नाम ज्ञान है सोई मोक्षका साधन है. और कोई नहीं :सो ज्ञान हमने प्रथम उपदेश करिदिया ॥ ६२ ॥

दोहा ।

कर्म उपासनते नहीं, जगनिदान तम नाश ॥
अंधकार जिमि गेहमें, नशै न बिन परकाश ॥ ६३ ॥

टीका—हे शिष्य ! जगत्का निदान कहिये उपादानकारण तम-कहिये अज्ञान है. ता अज्ञानके नाशते जगत्का आपही नाश होय जावै है. काहेतें, उपादानके नाश हुये पीछे कारण रहै नहीं है तो ज्ञानका नाश केवल ज्ञान करिके है. कर्म और उपासना करिके नाश होवै नहीं. काहेते अज्ञानका विरोधी ज्ञान है, कर्म उपासना विरोधी नहीं. दृष्टांतः—जैसे गृहकेविषे जो अंधकार है सो काहू क्रियासूं दूरि होवै नहीं केवल प्रकाशसे दूरि होवै है; तैसे अज्ञानरूपी जो अंधकार है; सो ज्ञानरूपी प्रकाशसे दूरि होवै, और काहू साधनसे नहीं ॥ ६३ ॥

दोहा ।

भाष्यो शिष उपदेश मैं, जगभंजक हिय धारि ॥
जो यामें संशय रह्यो, सो तूं पूछ विचारि ॥ ६४ ॥

शिष्य उवाच—चौपाई ।

भो भगवन जो कछु तुम भाष्यो ।
सो सब सत्य जानि हिय राख्यो ॥
जगनिदान अज्ञान बखान्यो ।

ताको भंजक ज्ञान पिछान्यो ॥ ६५ ॥
ज्ञानरूप वर्णन पुनि कीना।
जगमिथ्या सो मैं भल चीना ॥
सुखस्वरूप आतम परकाश्यो।
दया तिहारीसों मुहि भास्यो ॥ ६६ ॥
पुनि भाष्यो तूं ब्रह्म स्वरूपं।
यह मैं लख्यो न भेद अनूपं ॥
यामैं मुहि शंका इक आवै।
जीव ब्रह्मको भेद जनावै ॥ ६७ ॥

टीका—हे भगवन्! आपने जो कहा, सो मैं आपके वचन सत्य जानूं हूं. आपने कहा जो, "जगत्का कारण अज्ञान है, ता अज्ञानके नाश करिके, जगत्की निवृत्ति ज्ञानकरिके होवै है;" सो वार्ता मैं जानी. सो ज्ञानका स्वरूप आपने कहाः—जगत् मिथ्या है, और जीव आनंदस्वरूप है. सो ब्रह्मसे भिन्न नहीं. किंतु ब्रह्मरूप है, ऐसे निश्चयका नाम ज्ञान है. ताकेविषे जगत् मिथ्या है और जीव आनंदस्वरूप है." यह वार्ता मैं जानी. परंतु " जीव ब्रह्म दोनों एक हैं." यह वार्ता नहीं जानी. काहेतें, जीव ब्रह्मके भेदकूं जनावनेवाली शंका मेरे हृदयमें फुरै है ॥ ६७ ॥

अथ शंकाकी—चौपाई।

पुण्यपापका हूं मैं कर्त्ता।
जन्म मरण औ सुख दुख धर्त्ता ॥

और अनेक भाँति जग भासै।
चहूं ज्ञान अज्ञान जु नासै ॥ ६८ ॥
जो याते विपरीतस्वरूपा।
ताकूं ब्रह्म कहत मुनि भूपा ॥
कहो एकता कैसे जानूं।
रूप विरुद्ध हिये पहिचानूं ॥ ६९ ॥

टीका—हे भगवन्! मैं पुण्यपापका कर्त्ता हूं और तिनका जो फल जन्म मरण, और सुख दुःख, तिनकूं धारणकरूं हूँ, और नानाप्रकारका जगत् मेरेविषे प्रतीत होवै है; और जगत्का कारण जो अज्ञान है, ताके दूरि करनेकूं मैं ज्ञान चाहूँ हूं. और ब्रह्मविषे न पुण्य है, न पाप है, न जन्म है, न मरण है. न सुख है, न दुःखहै और कोई क्लेश ब्रह्मविषे नहीं, और ज्ञानकी इच्छा नहीं है. याते ब्रह्मका और मेरा स्वरूप परस्पर विरुद्ध है. याते दोनोंकी एकता बनै नहीं. यद्यपि मेरेविषे भी जन्मादिक संसार परमार्थ करिके है नहीं, तथापि मिथ्या जो जन्मादिक हैं; सो मेरेकूं भ्रांतिसे प्रतीत होवैं हैं और ब्रह्ममें नहीं. यातैं इतना भेद है. एकता बनै नहीं.

अन्यसंशयकी—चौपाई।

सुनहु गुरू दूजो पुनि संशै। जीवब्रह्म एकत्व प्रनंशै ॥
एक वृक्षमें सम द्वै पक्षी। फल भौगै इक दूजो स्वच्छी ॥ ७० ॥
भोगरहित परकाश असंगा। वेदवचन यह कहत प्रसंगा ॥
कर्मउपासन पुनि बहु भाखै। जीव ब्रह्म याते द्वय राखै ॥ ७१ ॥

टीका—हे गुरो ! मेरे एक और संशय है, सो आप सुनो कैसा वह संशय है:—जासूं जीवब्रह्मकी एकताका निश्चय प्रनंशै कहिये दूरि होय जावे; सो संशय मैं आपकूं कहूँ हूँ आप सुनिके तिस संशयकूं दूरि करो. वेदविषे मैं ने ऐसे देख्या है:—एक बुद्धिरूपी वृक्षमें दो पक्षी हैं, सो दोनों समान हैं तिनविषे एक तौ कर्मके फलकूं भोगै है, एक स्वच्छ कहिये शुद्ध है, भोगरहित है, असंग है. और ता भोगनेवालेकूं प्रकाशै है. याके विषे भोगनेवाला जीव प्रतीत होवै है, और दूसरा परमात्मा प्रतीत होवै है, याते उनकी एकता बनै नहीं.

और वेदके विषे कर्म और उपासना बहुतप्रकारके कहे हैं. सो जीवब्रह्मकी एकताविषे निष्फलहोय जावेंगे. काहेते जो आप जीवब्रह्मकी एकता कहो हो सो; सो ब्रह्मविषे जीवके स्वरूपकूं अंतरभाव कहो हो, अथवा जीवविषे ब्रह्मके स्वरूपकूं अंतरभाव कहो हो ? जो कदाचित् ब्रह्मविषे जीवके स्वरूपकूं अंतरभाव कहोगे; तौ जीवकं ब्रह्मरूपहोनेते अधिकारीका अभाव होवेगा याते कर्म और उपासना निष्फल होवैंगे. और जो जीवविषे ब्रह्मके स्वरूपका अंतरभाव कहोगे, तौ ब्रह्मकूं जीवरूप होनेते जाकी उपासना करिये है; ता उपास्य का अभाव होवेगा. याते उपासना निष्फल होवेगी. और कर्मका फल देनेवाला जो परमात्मा, ताका अभाव होवेगा; याते कर्म निष्फल होवें गे. और मीमांसक जो कहैं हैं, कर्मही ईश्वर है, तिनसेही फल होवै है, सो वार्ता समीचीन नहीं.काहेते,जो कर्म हैं सो जडहैं तिनकूं फल देनेका सामर्थ्य बनै

नहीं; याते कर्मका फल ईश्वरही देवै है. या रीतिसे परमात्मा और जीवकी एकता बनै नहीं ॥ ७१ ॥

श्रीगुरुरुवाच–चौपाई।

सुनहु शिष्य इक कहूं विचारा। है जाते शंका निस्तारा ॥
घटाकाश इक जल आकाशा। मेघाकाश महा आकाशा॥७२
च्यारिभेद ये नभके जानहु। पुनि चेतनके तथा पिछानहु॥
इक कूटस्थ जीव पुनि कहिये। ईश ब्रह्म हिय जाने रहिये॥
जब इनको तू रूप पिछानै। निज शंका तबही सबभानै ॥
याते सुन इनको अब भेदा। नशै सुनत जन्मादिक खेदा॥

टीका–जो तेरेकूं शंका हुई है, तिसका निस्तार कहिये निराकरण जातैं होवै, सो विचार मैं कहूं हूं; तूं सुन. जैसे एक आकाशमें च्यारि भेद हैं–एक घटाकाश है और एक जलाकाश है, और मेघाकाश है, और महाकाश है. तैसे एक चेतनके च्यारि भेद हैं. एक कूटस्थ है, और जीव है, और ईश्वर है, और ब्रह्म है. ये च्यारिभेद आकाशकी न्याई चेतन विषै हैं. हे शिष्य ! जब इनके स्वरूपकूं तूं भली प्रकारसे पिछानेगा; तब अपनी शंकाका तूं आपही समाधान जानि लेवेगा. यातैं मैं इनका स्वरूप वर्णन करूं हूं, तू सुन जाकूं सुनिके संशयरहित ज्ञान होइके जन्मादिक दुःखका नाश होवेगा ॥ ७२–७४ ॥

अथ घटाकाशवर्णन–दोहा।

जलपूरित घटकूं जु है। जितनो नभ अवकाश ॥

युक्तिनिपुण पंडित कहैं, ताकूं घट आकाश ॥ ७५ ॥

टीका–हे शिष्य! जलसे भरे घटकूं जितना आकाश अवकाश देवै है, तितने आकाशकूं पंडितजन घटाकाश कहैं हैं ॥ ७५ ॥

अथ जलाकाश वर्णन–दोहा।

जलपूरित घटमैं जु पुनि, है नभको आभास ॥
घटाकाशयुत विज्ञजन, भाषत जलआकास ॥ ७६ ॥

टीका–हे शिष्य ! जलसे भऱ्या जो घट है. ताकेविषे नक्षत्रादिसहित आकाशका प्रतिबिंब होवै है; सो आकाशका प्रतिबिंब और घटाकाश, दोनों मिले हुये जलाकाश कहिये है. याकेविषे, कोई शंका करे है आकाशका प्रतिबिंब नहीं होवै है. किंतु केवल नक्षत्रादिकनकाही प्रतिबिंब होवै है. काहेते, आकाश स्वरूपकरिके रहित है; और रूपवाले पदार्थका प्रतिबिंब होवै है. याते आकाशका प्रतिबिंब बनै नहीं। ऐसी शंका करै है ॥ ७६ ॥

ताके समाधानका–दोहा।

जो जलमैं आकाशको, नहिं प्रतिबिंब लखाइ ॥
थोरेमैं गंभीरता, ह्वै प्रतीत किहिं भाइ ॥ ७७ ॥
यातैं जलमैं व्योमको, लखि आभास सुजान ॥
रूपरहित जिमि शब्दतैं, ह्वै प्रतिध्वनिको भान ॥ ७८ ॥

टीका–जो जलके विषे आकाशका प्रतिबिंब नहीं होवे, तौ गोडेपरिमाण जलविषे मनुष्यपरिमाण गंभीरताकी जो प्रतीति होवै है

सो नहीं हुई चाहिये. याते आकाशका प्रतिबिंब अंगीकार करन योग्य है. और जो कहे है." रूपरहित पदार्थका प्रतिबिंब नहीं होवै है " सो भी नियम नहींहै. काहेतैं, रूपरहित जो शब्द है, ताकी प्रतिध्वनि होवै है, सो शब्दका प्रतिबिंब है. याते रूपरहित जो आकाश है, ताका भी प्रतिबिंब बनै है ॥ ७७ ॥ ७८ ॥

अथ मेघाकाश वर्णन-दोहा।

जो मेघहि अवकाश दे, पुनि तामें आभास ॥
तिन दोनोंकूं कहत हैं, बुधजन मेघाकास ॥ ७९ ॥

टीका-मेघ जो बादल, तिनकूं जो आकाश अवकाश देवै है और मेघके जलमें जो आकाशका प्रतिबिंब है, तिन दोनोंकूं मेघाकाश कहैं हैं. याकेविषे कोई शंका करै है ॥ ७९ ॥

जो मेघ तो आकाशविषे हैं,तिनमें जल और आकाशका प्रतिबिंब दीखे विना कैसे जाने जावैं हैं? ताका समाधान-

दोहा।

वर्षत मेघ अनंत जल, उदकसहित इहि हेत ॥
दक नहिं नभआभास बिन, इमि प्रतिबिंब समेत ॥ ८० ॥

टीका-यद्यपि मेघविषे जल और आकाशका प्रतिबिंब प्रत्यक्ष नहीं है, तथापि अनुमानकरिके जाने जावैं हैं. मेघ जो जलकी वृष्टिकरै है, याते ऐसा अनुमान होवै है; जो मेघविषे जल है. जो मेघविषे जल न होवे, तौ जलकी वृष्टि मेघसे नहीं होवे और मेघविषे जल है, सो आकाशके प्रतिबिंबसहित है काहेते

जो जल होवै है, सो आकाशके प्रतिबिंब विना नहीं होवै है. याते मेघविषे जो जल है, सो भी आकाशके प्रतिबिंबवाला है. इसरीतिसे मेघविषे जल और आकाशके प्रतिबिंबका अनुमान होवै है. उदक और दक ये दोनों जलके नाम हैं ॥ ८० ॥

अथ महाकाशवर्णन–दोहा ।

बाहिर भीतर एकरस, व्यापक जो नभरूप ॥
महाकाश ताकूं कहैं, कोविद बुद्धि अनूप ॥ ८१ ॥

टीका–बाहिर और भीतर सारे एकरस व्यापक जो नभ कहिये आकाशका स्वरूप है, ताकूं अनूप कहिये अद्भुत बुद्धिवाले पंडित महाकाश कहे हैं ॥ ८१ ॥

दोहा ।

चतुभाँति नभके कहे, लक्षण श्रुति अनुसार ॥
अब चेतनके शिष्य सुन, जासूं लहै विचार ॥ ८२ ॥

टीका–हे शिष्य ! च्यारिप्रकारके आकाशके लक्षण कहे अब च्यारि भाँतिके चेतनके लक्षण सुन जाके सुनेते विचार कहिये विचारका फल ज्ञान प्राप्त होवे ॥ ८२ ॥

अथ कूटस्थवर्णन–दोहा ।

मति वा व्यष्टि अज्ञानको, अधिष्ठान चैतन्य ।
घटाकाश सम मानिये, सो कूटस्थ अजन्य ॥ ८३ ॥

टीका–बुद्धि अथवा व्यष्टि अज्ञानका जो अधिष्ठानचेतन है सो कूटस्थ कहिये है. जा पक्षमें बुद्धिसहित चेतन जीव है, ता

पक्षमें बुद्धिका अधिष्ठान कूटस्थ कहिये है. और जा पक्षमें व्यष्टि-अज्ञानसहित चेतन जीव कहिये है. ता पक्षमें व्यष्टि अज्ञानका जो अधिष्ठान है, सो कूटस्थ कहिये है. या स्थानविषे यह सिद्धांत है:—जीवपनेका जो विशेषण है, ताके अधिष्ठानका नाम कूटस्थ कहिये है. सो कूटस्थ अजन्य है. उत्पत्तिसे रहित है. याका अभिप्राय यहहै:—ब्रह्मसे न्यारा जैसे चिदाभास उत्पन्न होवै है; तैसे यह उत्पन्न नहीं हुआ. किंतु ब्रह्मरूपही है जैसे घटाकाश महाकाशसे न्यारा नहीं होय गया,किंतु महाकाशरूप है. यह जो कूटस्थ है सोई आत्मपदका लक्ष्य अर्थ है. और याहीकूं प्रत्यक् कहे हैं और याहीकूं निजरूप कहैं हैं. और यही जीव साक्षी है ॥ ८३॥

अथ जीववर्णन–दोहा ।

काम्य कर्मयुत बुद्धिमैं, जो चेतन प्रतिबिंब ॥
जीव कहै विद्वान तिहिं, जलनभतुल्य सबिंब ॥८४ ॥

टीका—नाना काम्य और कर्मसहित जो बुद्धि है; तामें जो चेतनका प्रतिबिंब है, ताकूं विद्वान् कहिये ज्ञानी, जीव कहैं हैं.सो केवल प्रतिबिंब मात्रकूं नहीं जीव कहैं हैं; किंतु तैसे घटाकाशसहित आकाशके प्रतिबिंबकूं जलाकाश कहैं हैं. तैसे सबिंब कहिये बिंब जो कूटस्थ, ता सहित चिदाभासकूं जीव कहैं हैं. यातैं यह सिद्धांत हुवा:—बुद्धिमें जो चिदाभास और बुद्धिका अधिष्ठाता चेतन, दोनोंका नाम जीव है ॥ ८४ ॥

दोहा।

अधिष्ठान कूटस्थसे, है आभास बहाल॥
रक्तपुष्प ऊपर धर्‍यो, स्फटिक होइ जिमि लाल॥८९॥

टीका-पूर्व दोहेविषे बिंब जो कूटस्थ तासहित आभासकं जीव कह्या. याते यह प्रतीति होवै हैः-जो बुद्धिमें प्रतिबिंब है सो कूटस्थका है; और बाहिरके ब्रह्मचेतनका नहीं. काहेते, जाका प्रतिबिंब होवे, सो बिंब कहिये है. सो कूटस्थकूं बिंब कह्या. याते ताका प्रतिबिंब है; यह प्रतीति होवे है. सो या दोहेसे प्रतिपादन करें हैः-जैसे बड़े लाल पुष्पके ऊपर धर्‍या जो सफेद स्फटिकहै ताके विषे फूलकी लालीकी दमक होवै है; सो लालफूलका प्रतिबिंब है, तैसे कूटस्थके आश्रित जो बुद्धि, ताकेविषे कूटस्थके प्रकाशकी दमक होवै है. जैसे स्फटिक अत्यंत उज्ज्वल है, तैसे बुद्धिभी अत्यंत शुद्ध है. काहेते बुद्धि सत्त्वगुणका कार्य है; याते कूटस्थकी दमक नाम प्रतिबिंब है.

अथवा ब्रह्मचेतनका प्रतिबिंब है. जैसे महाकाशका घटके जलमें प्रतिबिंब होवै है, और भीतरके आकाशका नहीं. काहेतें जितनी गंभीरता जलविषे प्रतीत होवै है, उतनी गंभीरता भीतरके आकाशमें है नहीं, सो गंभीरता आकाशका प्रतिबिंब है याते बाहिरके आकाशका प्रतिबिंब है. यह जो कहैं हैं; "व्यापक चेतनका प्रतिबिंब बने नहीं." सो आकाशके दृष्टांतसे शंका दूरि होवै है. काहेते, जो आकाश भी व्यापक है, और ताका प्रतिबिंब होवे है तैसे व्यापकचेतनका भी प्रतिबिंब बनै है.

और जो कहैं हैं. "रूपवाले पदार्थका रूपवालेपदार्थमें प्रतिबिं-ब होवै है;" सो भी नियम नहीं है, काहेते रूपरहित शब्दका रूपरहित आकाशमें प्रतिबिंब होवै है, यह पूर्व कहि आए; याते चेतनका प्रतिबिंब बन है.

इसरीतिसे बुद्धिमें आभास और बुधिका अद्धिष्ठान चेतन, दोनोंका नाम जीव है, यह कह्या. सो जीव त्वंपदका वाच्य कहिये है, और ताकेविषे चिदाभासका त्याग करिके केवल जो कूटस्थ है, सो त्वंपदका लक्ष्य कहिये है. और अहंशब्दका वाच्य भी जीव है. केवल कूटस्थ लक्ष्य है ॥ ८५ ॥

दोहा।

बुद्धिमाहिं आभास जो, पुण्य पाप फलभोग ॥
गमन आगमन सो करै, नाहिं चेतनमैं जोग ॥ ८६ ॥
मिथ्या नभ घट संग ज्यों, लहै क्रिया बहु भाँति ॥
घटाकाश अक्रिय सदा, रहै एकरस शांति ॥ ८७ ॥

टीका—यद्यपि जीव नाम चिदाभास और कूटस्थ दोनोंका है, तथापि जीवपनेके जो धर्म हैं, सो सारे आभासविषे हैं. पुण्य और पाप और पुण्य पापके फल सुख दुःख, और लोकांतराविषे गमन, और या लोकविषे आगमन, इसते आदिलेके सारे आभासहित बुद्धि करै है. और कूटस्थ नहीं करै है. कूटस्थ विषे केवल भ्रांतिसे प्रतीति होवैहै सो भ्रांतिसे प्रतीति भी बुद्धिसहित आभासकूं होवै है; कूटस्थकूं नहीं. काहेते कूट, जो लुहारका अहरन

ताकी न्याईं निर्विकाररूपसे स्थितहोवै सो कूटस्थ कहियेहै. अथवा कूट कहिये मिथ्या जो बुद्धि और चिदाभास, ताकेविषे असंगरूपसे स्थित होवै, सो कूटस्थ कहिये है. याते कूटस्थविषे भ्रांति आदिक बनैं नहीं, किंत चिदाभासमें बनैं है.

और अत्यंत विचार । देखिये तो पुण्य, पाप, सुख दुःख लोकांतरमें गमन और आगमन केवल बुद्धिमें हैं; आभासमें भी नहीं. बुद्धिके संयोगसे अभासमें हैं; जैसे जलसहित जो घट है, सो टेढा होवै है, और सीधा होवै है, और जावै आवै है; और ताके संबंधसे व्योमका आभास संपूर्ण क्रिया करै है. और स्वतंत्र कछु भी नहीं करै है. तैसे काम्यकर्मरूपी जलसे भऱ्या जो बुद्धिरूपी घट है, सो पुण्यसे आदिलेके संपूर्ण विकार धारै है, और ताके संबंधसे चिदाभास धारै है. और कटस्थ सर्व विकारसे रहित है. जैसे जलपूरित घटके विकारसे रहित घटाकाश है. ताकी न्याईं कूटस्थकूं जान, यातैं जीवपनेके धर्म चिदाभासमें हैं; तथापि कूटस्थमें अज्ञानसे प्रतीत होवैं हैं. याते बुद्धिकेविषे कूटस्थसहित जो चिदाभास सो जीव कहिये है ॥ ८७ ॥

यह जो जीवका स्वरूप वर्णन किया, याके विषे प्राज्ञकी हानि होवै है. काहेते जो सुषुप्ति के अभिमानी जीवका नाम प्राज्ञ है, ता सुषुप्तिविषे बुद्धिका अभाव होवै है यातैं बुद्धिमें आभासभी बनै नहीं. यातैं प्राज्ञके स्वरूपका प्रतिपादक जो शास्त्र है, ताका विरोध होवेगा इस कारणते जीवका स्वरूप और प्रतिपादन करैं हैं:—

दोहा ।

अथवा व्यष्टिअज्ञानमैं, जो चेतन आभास ॥
अधिष्ठान कूटस्थयुत, कहै जीवपद तास ॥ ८८ ॥

टीका—अज्ञानके अंशका नाम व्यष्टि अज्ञान कहिये है. और संपूर्ण अज्ञानका नाम समष्टिअज्ञान है. ता अज्ञानके अंशविषे जो चेतनका आभास, और अज्ञानके अंशका अधिष्ठान जो कूटस्थ है, तिन दोनोंकूं जीवपद कहैं हैं; याते प्राज्ञका अभाव नहीं होवै है. काहेते, सुषुप्तिविषे अज्ञान रहै है. जो सुषुप्तिविषे चेतनके प्रतिबिंबसहित अज्ञानका अंश है, सोई बुद्धिरूपकूं प्राप्त होवै है. और चेतनका प्रतिबिंब साथही होवै है. ता चिदाभाससहित बुद्धिमें पुण्यादिक संसार प्रतीत होवै है. इस अभिप्रायसे बुद्धिही कहूं शास्त्रनविषे जीवपनेकी उपाधि वर्णन करी है. और विचारदृष्टिसे जीवपनेकी उपाधि अज्ञान है ॥ ८८ ॥

अथ ईशवर्णन—दोहा ।

चितछाया मायाविषे, अधिष्ठान संयुक्त ॥
मेघ व्योम सम ईश सो, अंतर्यामी मुक्त ॥ ८९ ॥

टीका—मायाकेविषे जो चेतनकी छाया कहिये आभास और मायाका अधिष्ठान चेतन, दोनोंकूं ईश्वर कहैं हैं सो ईश्वर मेघाकाशके सम है. सो इश्वर अंतर्यामी है. काहेते, सर्वके अंतर प्रेरणा करै है; याते अंतर्यामी है. और सदा मुक्त है. काहेते वाकूं अपने स्वरूपमें आवरण नहीं, याते जन्ममरणादिक बंधकी प्रतीतिनहीं.

इस हेतुते ईश्वर नित्यमुक्त है. और सर्वज्ञ है, सब पदार्थनके जाननेवाला है, याकेविषे यह हेतु हैः—मायाविषे शुद्धसत्त्वगुण है. तमोगुण और रजोगुणसे दबाहुआ सत्त्वगुण नहीं; किंतु रजोगण और तमोगुणकूं आप दबायनेवाला होवै, सो शुद्धसत्त्वगुण कहिये है. सत्त्वगणसे ज्ञानकी उत्पत्ति होवै है. यातें प्रकाशस्वभाववाला सत्त्वगुण है. ऐसी सत्त्वगणवाली मायाकेविषे जो चेतनका आभास. ताकूं स्वरूपविषे अथवा और पदार्थविषे आवरण संभवै नहीं याते मुक्त है, और सर्वज्ञ है अधिष्ठान जो चेतन है सो तो जीव और ईश्वर दोनोंविषे बंधमोक्षभेदसे रहित है;आकाशकी न्याईं एकरस है परंतु आभासअंशविषे बंधमोक्ष है. अधिष्ठानविषे आभासकूं भ्रांतिसे प्रतीत होवै है. याते केवलआभासमें बंधमोक्ष है. तिसविषे भी इतना भेद हैः—जा आभासमें आवरण है ताके विषे बंध है. जाविषे स्वरूपका आवरण नहीं है, सो मुक्त है ईश्वरमें आवरण नहीं; याते ईश्वर सदामुक्त है. और जीवविषे आवरण है, सो बंध है. बंधकहिये बँध्या हुवा है. काहेते जा अविद्याके अंशमें चेतनके आभासको जीव कह्या, ता अविद्याका आवरण करनेका स्वभाव है. यद्यपि अविद्या और अज्ञान और माया एकही वस्तुकूं कहैं हैं. तथापि शुद्धसत्त्वगुणकी प्रधानतासे माया कहिये है, और मलिन सत्त्वगुणकी प्रधानतासे अज्ञान और अविद्या कहैं हैं रजोगुण और तमोगुणसे दबा जो सत्त्वगुण है,सो मलीनसत्त्वगुण कहिये है याते तमोगुण और रजोगुणकी अधिकता होनेते अविद्यामें जो जीवका आभास-अंश, ताकूं अविद्या, स्वरूपका आवरणकरै है, याते जीवमें बंधन है

और ईश्वरमें नहीं अधिष्ठानचेतनसहित जो मायामें आभासरूप ईश्वर है सो तत्पदका वाच्य कहिये है, और केवल अधिष्ठानचेतन तत्पदका लक्ष्य है, जो ईश्वर है, सोई जगत्की उत्पत्ति और पालन और संहार करै है. यह संपूर्ण शास्त्रमें कह्या है. ताका यह अभिप्राय है:—चेतनअंश तौ आकाशकी न्याई असंग है और आभासअंश जगत्की उत्पत्ति आदि करै है. और ताहीविषे सर्वज्ञता है. और भक्तजनके ऊपरि अनुग्रह जो करै है सो भी केवल आभासअंश करै है. और जो कछु ऐश्वर्य है, सो केवल आभासमें है. और चेतन अंश एकरस है, वाकेविषे सत्तास्फूर्ति देने विना और ऐश्वर्य बनै नहीं ॥ ८९ ॥

अथ ब्रह्मस्वरूपवर्णन–दोहा ।

अंतर बाहिर एकरस, जो चेतन भरपूर ॥
विभु नभ सम सो ब्रह्म है, नहिं नेरे नहिं दूर ॥ ९० ॥

टीका–ब्रह्मांडके अंतर कहिये भीतर, और बाहिर जो महाकाशकी न्याई भरपूरचेतन है; सो ब्रह्म कहिये है. सो ब्रह्म नेरे नहीं और दूरि नहीं काहेते, जो वस्तु अपनेसे भिन्न होवै, और देशरूप उपाधिवाला होवै, सो नेरे और दूरि कहा जावै है. ब्रह्म भिन्न नहीं, किंतु सबका आत्मा है, और देशादिक सर्व उपाधिते रहित है; याते नेरे और दूरि नहीं कह्या जावै. यद्यपि ब्रह्मशब्दका वाच्यभी सोपाधिक है. काहेते व्यापकवस्तुका नाम ब्रह्म है. सो व्यापकता दो प्रकारकी है:—एक तो आपेक्षिकव्यापकता है, और एक निरपेक्षिकव्याप

कता है. जो वस्तु किसी पदार्थकी अपेक्षासे व्यापक होवै, और किसीकी अपेक्षासे न होवै ताके विषे आपेक्षिकव्यापकता कहिये है. जैसे पृथ्वी आदिकी अपेक्षासे माया व्यापक है, और चेतनकी अपेक्षासे नहीं है. याते मायाविषे आपेक्षिक व्यापकता है.और जो वस्तु सर्वकी अपेक्षासे व्यापक होवै. ताकेविषे जो व्यापकता, सो निरपेक्षिकव्यापकता कहिये है. सो निर्पेक्षिक व्यापकता चेतन विषे है. काहेते चेतनके समान अथवा चेतनसे अधिक और कोई व्यापक है नहीं, किंतु चेतन ही सर्वसे व्यापक है, याते चेतन विषे निरपेक्षिकव्यापकता है. यह दोनों प्रकारकी व्यापकतासहित जो वस्तुहै, सो ब्रह्मशब्दका वाच्य है. सो दोनों प्रकारकी व्यापकता माया विशिष्टचेतनविषे है. काहेते, विशिष्ट विषे जो मायाअंश है, ताकेविषे तो आपेक्षिकव्यापकता है. और चेतनअंश विषे निरपेक्षिकव्यापकता है. यद्यपि मायाविशिष्ट चेतनविषे निर्पेक्षिकव्यापकता बने नहीं. काहेते; माया चेतनके एकदेशविषे है. ता मायाविशिष्ट चेतनसे शुद्ध चेतनकी व्यापकता अधिक है; याते शुद्धचेतनविषे निरपेक्षिकव्यापकता है; तथापि मायाविशिष्ट जो चेतन है; सो परमार्थ दृष्टि करिकै शुद्धसे भिन्न नहीं; किंतु शुद्धरूपही है; याते मायाविशिष्टमें भी जो चेतनअंश है, ताकेविषे निरपेक्षिकही व्यापकता है. इसरीतिसे मायाविशिष्टही ब्रह्मशब्दका वाच्य बनै है. और शुद्ध चेतन ब्रह्म शब्दका लक्ष्य याते ईश्वर शब्द और ब्रह्म शब्दहै.दोनोंका समानही अर्थ प्रतीत होवै है; भिन्न अर्थ नहीं. तथापि ब्रह्मशब्दका तो यह स्वभाव है जो बहुत स्थानविषे लक्ष्य अर्थकूं बोधन करै है; और काहू स्थान-

विषे वाच्य अर्थकूं कहै है. और ईश्वर शब्दका यह स्वभाव है:—
जो बहुत स्थानमें वाच्य अर्थका बोधन करै है; इतना भेद है.यातैं
लक्ष्य अर्थकूं लेके ब्रह्मशब्दका अर्थ भिन्न निरूपण कियाहै॥९०॥

दोहा ।

चतुर्भांति चेतन कह्यो, तामें मिथ्या जीव ॥
पुण्य पाप फल भोगवै, चित्कूटस्थ सु शीव ॥ ९१ ॥

टीका—हे शिष्य ! चारि प्रकारका चेतन कह्या. तानें जीवके
स्वरूपमें जो मिथ्या आभासअंश है, सो पुण्य पाप करै है. और
तिनके फलको भोगै है. और कूटस्थ जो चेतन है, सो शीव कहिये
शिवरूप है. शिव नाम कल्याणका है. याते प्रथम जो शंका करी
थी; " जो बुद्धिरूपी वृक्षमें दो पक्षी हैं; एक परमात्मा और जीव"
ताका यह उत्तर कह्या. परमात्मा और जीवका ग्रहण नहीं करना
किंतु कूटस्थ तो प्रकाशमान है; और आभास भोगै है ॥ ९१ ॥

दोहा ।

कर्मी छाया देत फल, नहिं चेतनमें योग ॥
सो असंग इकरूप है, जानै भिन्न कुलोग ॥ ९२ ॥

टीका—जीवके स्वरूपमें जो चेतनकी छाया कहिये आभास-
अंश है, सो कर्मी कहिये कर्म करै है, ता कर्म करनेवालेकूं छाया
जो ईश्वरका आभासअंश है, सो फल देवै है, छाया शब्दका
देहली दीपकन्याय करिके पूर्व उत्तर दोनों ओरकूं संबंध है, जैसे
देहलीके ऊपर धन्या जो दीपक है, सो दोनों ओरकूं प्रकाशै है.
" छाया कर्मी" और "छाया देत फल" याते यह वार्त्ता सिद्ध हुई:—

जीवके स्वरूपमें जो आभासअंश है, सो तौ पुण्य पाप करै है, और तिनका फल भोगै है; और ईश्वरमें जो आभासअंश है, सो कर्मका फल देवै है. और दोनोंविषे जो चेतनअंश है, तिसविषे किसी बातका योग नहीं. जीवमें जो चेतनअंश है, ताविषे तो कर्म और फलका योग नहीं. और ईश्वरमें जो चेतनअंश है, तामें फल देनेका योग नहीं है. ता चेतनमें जो कहै है, सो मूर्ख है, काहेतैं चेतन दोनोंविषे असंग है; और एकरूप है, चेतनमें भेद नहीं जीवचेतनकूं जो ईश्वरचेतनसे अथवा ईश्वर चेतनकूं जो जीवचेतनसे भिन्न कहिये न्यारा जाने सो कुलोग कहिये निंदन करने-योग्य लोग हैं. या कहनेते दूसरा जो प्रश्न कियाथा जो "जीव और परमात्माकी एकता अंगीकार करनेते कर्म और उपासनाका प्रतिपादक वेद निष्फल होवैगा" ताका उत्तर कह्या. जो जीव और ईश्वरमें चेतनभाग हैं; तिनका तो अभेद हैं; और आभासका भेद है. याते दोनोंप्रकारके वचन बनैं हैं ॥ १२ ॥

चौपाई ।

अहो शिष्य तैं प्रश्न जु कीने । तिनके ये उत्तर मैं दीने ॥
कहे जु तैं तरुमैं द्वै पक्षी । इक भोगै इक आहि अनिक्षी ॥१३॥
ते चेतन आभास लखाये । नभछाया ज्यों भिन्न बताये ॥
कह्यो भिन्न कर्मी फलदाता । मति माया छाया सौं ताता१४
जीव ईशमैं चेतनरूपं । भेदगंधतैं रहित अनूपं ॥
यातैं "अहं ब्रह्म" यह जानौ । "अहं" शब्दकूटस्थपिछानौ ।

"ब्रह्म"शब्दको अर्थ सुभाख्यो।महाकाशसमलक्ष्यजुराख्यो॥
"अहं ब्रह्म"नाहिं जौलौंजानैं।तौलौंदीन दुखित भय मानैं९६

टीका—हे शिष्य ! जों तैंने प्रश्न करे, तिनके मैं उत्तर कहे जो तैंने कह्याथा"एक वृक्षमें दो पक्षी हैं एक भोगै है, और एक इच्छाते रहितहै.याते जीवब्रह्मको एकता बनै नहीं,,याका हमने उत्तर कह्या जो "या स्थानमें जीवब्रह्मका ग्रहण नहीं करना; किंतु कूटस्थ औरबुद्धिके जो आभास; तिनका ग्रहण करना. सो आपसमें घटाकाश और आकाशकी छायाकी न्याईं भिन्न हैं" और जो तैं प्रश्न कियाथाः— ".जीव तौ कर्मउपासना करनेवाला है, और परमात्मा फल देनेवाला है; तिनकी एकता बनै नहीं." याका भी हमने यह उत्तर कह्या जो " कर्म करनेवाला जीव नहीं है, और फल देनेवाला ईश्वर नहीं है, किंतु जीवमें जो आभास अंश है सो करै है. ईश्वरमें जो अभास अंश है, सो फल देवै है. और जीव ईश्वरमें जो चेतनअंश है, सो घटाकाश महाकाशकी न्याईं भेदका जो गंध कहिये लेश, तासे रहित है" इसरीतिसे हे शिष्य ! जीव और ब्रह्मकी एकता बनै है. याते:" अहं " कहिये " मैं ब्रह्म हूं " ऐसे तूं जान. अहंशब्दका अर्थ तौ कूटस्थकूं पिछान. और ब्रह्मशब्दका, जो महाकाशके सम लक्ष्य अर्थ कह्या है. सो जान." अहं " शब्दका और " ब्रह्म " शब्दका वाच्यअर्थ अभेद नहीं भी है परंतु लक्ष्य अर्थका अभेद है. और हे शिष्य ! जबलग त " अहं ब्रह्मास्मि " ऐसे नहीं जानेगा, तबलग तू अपनेकूं दीन मानेगा

और दुःखी मानेगा. और न्यारा जो परमात्मा जान्या है, सो तेरेकूं भयका हेतु होवैगा. याते "मैं ब्रह्म हूं" ऐसे जान॥९३-९६॥

तत्त्वदृष्टिरुवाच–दोहा।

कहो गुरू है कौनकूं, "अहं ब्रह्म" यह ज्ञान ॥
नहिं जानूं मैं आपके, भाषे बिना सुजान ॥ ९७ ॥

टीका–हे गुरु ! आप कृपा करिकैं कहो. " अहं ब्रह्मास्मि " ऐसा ज्ञान किसकूं होवै है? आपके कहेबिना यह वार्त्ता मैं जानूं नहीं हूं. शिष्यके चित्तमें यह गूढअभिप्राय है:–" मैं ब्रह्म हूं, " ऐसा ज्ञान कूटस्थविषे होवै है, अथवा आभाससहित बुद्धिमें होवै है ? जो कूटस्थम कहोगे, तौ कूटस्थविकारी होवेगा, और आभाससहित बुद्धिमें कहोगे तौ वाकूं " मैं ब्रह्म हूं. " ऐसा ज्ञान भ्रांतिरूप होवैगा. काहेतैं आपने ऐसैं पूर्वे कह्या जो " कूटस्थकी और ब्रह्मकी एकता है, और आभास भिन्न है. " याते ब्रह्मसे भिन्न जो आभास ताका ब्रह्मरूपकरके जो ज्ञान सो भ्रांतिही होवेगा. जैसे सर्पते भिन्न जो रज्जु, ताका सर्परूप करिके ज्ञान भ्रांति है. इस रीतिसे आभाससहित बुद्धिकं " मैं ब्रह्म हूं " यह ज्ञान यथार्थ नहीं होवैगा. किंतु भ्रांतिरूप होवेगा. और जो कदाचित " अहं ब्रह्मास्मि" इस ज्ञानकूं भ्रांतिरूपकही अंगीकार करोगे. तौ या ज्ञानते मिथ्याजगत्की निवृत्ति नहीं होवैगी, किंतु यथार्थज्ञानसे मिथ्याकी निवृत्ति होवै है. जैसे रज्जुके यथार्थज्ञानसे मिथ्यासर्पकी

निवृत्ति होवै है. इसरीतिसे आभाससहित बुद्धिकूं "मैं ब्रह्म हूं" यह ज्ञान बनै नहीं ॥ ९७ ॥

श्रीगुरुरुवाच-सोरठा।

कहूं अवस्था सात, सुन शिष्य व आभासकी ॥
नाहिं चेतनकी तात, तिनहीमैं यह ज्ञान है ॥ ९८ ॥

टीका-हे शिष्य ! अब आभासकी सात अवस्था मैं कहूं हूं सो तू सुनः-(अबकी ठौर बकार पढ्या है.) तिन सात अवस्थामें कोइ भी चेतन जो कूटस्थ, ताकी नहीं है. और "मैं ब्रह्म हूं" यह ज्ञान भी तिन सातके भीतरही है ॥ ९८ ॥

अथ सप्तअवस्था नाम-चौपाई।

इक अज्ञान आवरण जानौ।भ्रांति द्विविध पुनिज्ञानपिछानौ॥
शोकनाश अतिहर्ष अपारा।सप्तअवस्था इमि निर्धारा॥९९॥

अर्थ स्पष्ट ॥ ९९ ॥

अथ अज्ञान और आवरणस्वरूप वर्णन-दोहा।

नाहिं जानूं मैं ब्रह्मकूं, याकूं कहत अज्ञान ॥
ब्रह्म है न नाहिं भान है, यह आवरण सुजान ॥

टीका-हे शिष्य ! "मैं ब्रह्मकूं जानूं हूँ" यह जो पुरुष कहैं हैं, या व्यवहारका हेतु अज्ञान है. "ब्रह्म है नहीं, और भान नहीं होवै है" इस व्यवहारका हेतु आवरण है. आवरणसे यह व्यवहार होवै है काहेतें, दो प्रकारकी अज्ञानकी शक्ति हैः-एक तो असत्त्वापादक है, और एक अभानापादक है तिन दोनोंकं आवरण कहैं

हैं. "वस्तु नहीं है" ऐसी प्रतीति करावनेवाली जो शक्ति, सो असत्त्वापादक कहिये है. और वस्तुका भान नहीं होवै है, ऐसी प्रतीति करावनेवाली जो अज्ञानकी शक्ति, सो अभानापादक कहिये है. इसरीतिसे "ब्रह्म नहीं है" इस व्यवहारकी हेतु अज्ञानकी असत्त्वापादक शक्ति है. और "ब्रह्म भान नहीं होवै है" इस व्यवहारकी हेतु अज्ञानकी अभानापादक शक्ति है इन दोनोंका नाम आवरण है ॥ १०० ॥

अथ भ्रांतिवर्णन—दोहा।

जन्ममरण गमनागमन, पुण्यपाप सुखखेद ॥
निजस्वरूपमैं भानहै, भ्रांति बखानी वेद ॥ १०१ ॥

टीका—जन्मसे आदिलेके जो संसार है, ताकी जो निजस्वरूप कहिये कूटस्थमें प्रतीति, सो वेदमें भ्रांति कहिये है. और याहीकूं शोक कहैं हैं ॥ १०१ ॥

अथ द्विविधज्ञानवर्णन—दोहा।

द्वैविधज्ञान बखानिये, इक परोक्ष अपरोक्ष ॥
"अस्ति ब्रह्म" परोक्षहै, "अहं ब्रह्म" अपरोक्ष ॥
"नहीं ब्रह्म" या अंशको, करै परोक्ष विनाश ॥
सकलअविद्याजालकूं, दूजो नशै प्रकाश ॥ १०२ ॥

टीका—ब्रह्म "नहीं है" या आवरणके अंशकूं, ब्रह्म है ऐसा परोक्षज्ञान विनाशै है. काहेते "सत्य ज्ञान अनंत रूप ब्रह्म है" ऐसा जो ज्ञान, ताका नाम परोक्षज्ञान है, सो "ब्रह्म नहीं है" ऐसी

प्रतीतिका विरोधी है औरका नहीं. और "मैं ब्रह्म हूँ " ऐसा जो अपरोक्ष ज्ञान सो सकल अविद्याजालका विरोधी है. या कारणते " मैं ब्रह्मकूं नहीं जानूं हूँ " यह अज्ञान, और " ब्रह्म नहीं है " और " भान नहीं होवै है " यह आवरण; और " मैं ब्रह्म नहीं हूँ, किंतु पुण्यपापका कर्त्ता और सुख दुःखका भोक्ता जीव हूँ " यह भ्रांति; इतना जो अविद्याजाल है, ताकूं अपरोक्षज्ञान नाश करै है ॥ १०३ ॥

अथ भ्रांतिनाशवर्णन-दोहा ।

जन्म मरण मोमैं नहीं, नाहिं सुखदुखको लेश ॥
किंतु अजन्यकूटस्थमैं, भ्रांतिनाश यह वेश ॥ १०४ ॥

टीका-मेरेविषे जन्म और मरण नहीं है. और सुख दुःखका लेश भी नहीं है. और कोई भी संसारधर्म मेरेविषे नहीं है किंतु अजन्य कहिये जन्मसे रहित जो कूटस्थ, सो " मैं हूं " हे शिष्य ! इसरीतिसे सर्व अनर्थका जो निषेध, यह भ्रांति नाशका वेष कहिये स्वरूप है. अथवा यह भ्रांतिनाश वेष कहिये उत्तम है या जगह कूटस्थमें जन्मका निषेधकरनेते सर्वका निषेध जानि लेना. काहेते, जन्मप्रतीतिसे अनंतर और अनर्थ प्रतीत होवै है. याते जन्मके निषेधते सर्व अनर्थका निषेध है. यह जो भ्रांतिनाश है, याहीकूं शोकनाश भी कहैं हैं ॥ १०४ ॥

अथ हर्षस्वरूपवर्णन-दोहा ।

संशयरहित स्वरूपको, होय जु अद्वयज्ञान ॥

तब उपजै हिय मोद तब, सो तू हर्ष पिछान ॥ १०५ ॥

टीका—हे शिष्य ! जब तेरेकूं संशयरहित अपने स्वरूपका ऐसा ज्ञान होवैगा, जो "मैं अद्वय ब्रह्मरूप हूं" तब तेरेकूं जो मोद होवैगा; ताकू तूं हर्ष पिछान ॥ १०५ ॥

दोहा ।

कही अवस्था सात मैं, तोकूं शिष्य सुजान ॥
सो सगरी आभासकी, है तिनहीमैं ज्ञान ॥ १०६ ॥
"ज्ञान होत है कौनकूं", यह पूछी तैं बात ॥
मैं ताको उत्तर कह्यो, चहै सु पूछ ब तात ॥ १०७ ॥

अर्थ स्पष्ट है ॥ १०६ ॥ १०७ ॥

जा गूढ अभिप्रायते प्रश्न कर्‌या था, ताकूं अब शिष्य प्रगटकरै है:—

दोहा ।

भगवन है आभासकूं, "अहं ब्रह्म" यह ज्ञान ॥
तुम भाष्यो सो मैं लख्यो, पुनि शंका इक आन॥ १०८॥

चौपाई ।

है आभास ब्रह्मतैं न्यारा । अस तुम पूर्व कियो निर्धारा ॥
"अहं ब्रह्म" सो कैसे जानै । आपहि भिन्न ब्रह्मतैं मानै १०९॥
जो जानैं तौ मिथ्या ज्ञाना । होइ जेवरी भुजग समाना ॥
श्रीगुरु यह संदेह मिटाऊ।युक्तिसहित निजउक्ति सुनाऊ ११०

टीका—हे भगवन् ! आपने यह पूर्व कह्या जोः—"कूटस्थ और ब्रह्म तौ दोनों एक हैं; और आभास ब्रह्मते न्यारा है;" ता

ब्रह्मसे भिन्न आभासकूं " मैं ब्रह्म हूं " ऐसा ब्रह्मरूप करिके ज्ञान बनै नहीं. मेरा अधिष्ठान जो कूटस्थ सो ब्रह्मरूप है, ऐसा जो आभासकूं ज्ञान होवे, ते यथार्थ ज्ञान होवे; और " अहं ब्रह्म ", ज्ञान यथार्थ नहीं बनै. काहेते, अहं नाम अपने स्वरूपका है. जाकूं मैं कहैं हैं.सो आभासका स्वरूप मिथ्याहै.याते भिन्नहै याते ब्रह्मसे भिन्न आभासका जो स्वरूप वाकूं ब्रह्मरूपकरिके ज्ञान होवे, तौ मिथ्या-ज्ञान होवे. जैसे सर्पसे भिन्न जो जेवरी, ताका सर्परूपकरिके ज्ञान मिथ्या होवै है. मिथ्या नाम भ्रांतिका है, सो ब्रह्मज्ञानकूं भ्रांति रूप कहना बनै नहीं ॥ ११० ॥

दोहा ।

"अहं शब्दके अर्थको, सुन अब शिष्य विवेक ॥
तब हियके जासूं नशैं, शंक कलंक अनेक ॥ १११ ॥

अर्थ स्पष्ट ॥ १११ ॥

है यद्यपि आभासमैं, "अहं ब्रह्म" यह ज्ञान ॥
तथापि सो कूटस्थको, लहै आप अभिमान ॥ ११२ ॥
ताको सदा अभेद है, विभुचेतनतैं तात ॥
बाध समैं निजरूपहू, ब्रह्मरूप दरशात ॥ ११३ ॥

टीका—हे शिष्य ! यद्यपि " मैं ब्रह्म हूं " ऐसा ज्ञान बुद्धिसहित आभासकूं होवै है, और कूटस्थकूं नहीं; तथापि सो आभास कूटस्थकूं और अपने स्वरूपकूं दोनोंकूं अपना आत्मा जानै है. ता आत्माका मैं शब्द करिके ग्रहण होवै है सोई अहं शब्दका अर्थ है

ता अहं शब्दमें भान जो होवै है कूटस्थ, ताका तौ ब्रह्मके साथ सदा अभेद है जैसे घटाकाशका और महाकाशका सदा अभेद है इसी कारणते कूटस्थका ब्रह्मके साथ मुख्यसमानाधिकरण वेदांतशास्त्रमें कह्या है. जा वस्तुका जा वस्तुके संग सदा अभेद होवै, ता वस्तुका ताके संग मुख्यसमानाधिकरण कहिये है; जैसे—घटाकाशका महाकाशके संग सदा अभेद है. याते घटाकाश महाकाश है. इसरीतिसे घटाकाशका महाकाशके साथ मुख्यसमानाधिकरण है. इसरीतिसे कूटस्थका ब्रह्मके संग मुख्यसमानाधिकरण है. काहेते कूटस्थका ब्रह्मते सदा अभेद है. याते मैं-शब्दमें भान जो होवै है कूटस्थ, ताका तो ब्रह्मके संग सदा अभेद है और मैंशब्दमें भान जो होवै है आभास, ताका ब्रह्मसे अपने स्वरूपकूं बाधिके अभेद होवै है; जैसे मुखका जो प्रतिबिंब ताका बिंबस्वरूप मुखके संग प्रतिबिंब स्वरूपकूं बाधिके अभेद होवै है इसीकारणते वेदांतशास्त्रविषे आभासका ब्रह्मके संग बाधसमानाधिकरण कह्यां है. जा वस्तुका बाध होइके जाके संग अभेद होइ, ता वस्तुका ताके साथ बाधसमानाधिकरण कहिये है जैसे—मुखके प्रतिबिंबका बाध होयके मुखके साथ अभेद होवै है. याते प्रतिबिंब मुख है, न्यारा नहीं ऐसा प्रतिबिंबका मुखके साथ बाधसमानाधिकरण है.

किंवा, जैसे स्थाणुमें पुरुषभ्रम होयके स्थाणुज्ञानसे अनंतर, "पुरुष स्थाणु है" इस रीतिसे पुरुषका स्थाणुसे बाधसमानाधिकरण,

होवै है, तैसे आभासका बाध होइके ब्रह्मके साथ अभेद होवै है. याते मैंशब्दविषे भान जो होवै आभास, सो ब्रह्म है न्यारा नहीं. ऐसा बाधसमानाधिकरण आभासका ब्रह्मके साथ होवै है इस रीतिसे हे शिष्य ! अहं शब्द से भान जो होवै है कूटस्थ ताका तौ मुख्य अभेद है, और आभासका बाध करिके अभेद है ॥ ११३ ॥

तत्त्वदृष्टिरुवाच-दोहा।

अहंवृत्तिमें भान है, साक्षी अरु आभास ॥
सो क्रमतें वा क्रमबिना,याको करहु प्रकाश ॥ ११४ ॥

टीका-हे भगवन् ! आपने कह्या जो " अहंवृत्तिमें साक्षी अरु आभास दोनोंका भान होवै है" याके विषे में एक वार्त्ता नहीं जानूं हूं. सो कूटस्थ और आभासको भान अहंवृत्तिविषे क्रमसे होवै है; अथवा क्रमसे विना होवै है याका अर्थ यह है:-क्रमसे कहिये भिन्न भिन्न कालमें होवै है, अथवा दोनोंका एकही कालमें भान होवै है ? याका आप मेरेकूं प्रकाश कहिये बोध करो.

श्रीगुरुरुवाच-दोहा।

सावधान है शिष्य सुन, भाषूं उत्तर सार ॥
सुनत नशै अज्ञानतम, बोधभानुउजियार ॥ ११५ ॥

टीका-हे शिष्य ! जो तैंने प्रश्न किया; मैं ताका सारभूत उत्तर कहूंहूं. तूं सावधान होइके सुन. कैसा उत्तर है, याके सुनतेही बोध रूपी सूर्यका प्रकाश होयके अज्ञानरूपी तमकुं नाशै है ॥ ११५ ॥

दोहा ।

एकसमयही भान है, साक्षी अरु आभास॥
दूजो चेतनको विषय, साक्षी स्वयंप्रकास ॥ ११६ ॥

टीका—हे शिष्य ! एकही समय साक्षीका और आभासका अहंवृत्तिविषे भान होवै है. सारे प्रकरणविषे आभासशब्दसे अंतः-करणसहित आभासका ग्रहण करना याते दूजो कहिये अंतःकर-णसहित जो आभास है, सो तौ चेतन जो साक्षी, ताका विषय हो-इके भान होवै है. और साक्षी स्वयंप्रकाशरूप करिकै भान होवैहै. और अंतःकरणकी जो आभाससहित वृत्ति, ताका विषय साक्षी नहीं. और घटादिक बाहिरके पदार्थनविषे तौ ऐसी रीति है:—जब इंद्रियका और घटका संयोग होवै; तब इंद्रियद्वारा अंतःकरणकी वृत्ति निकसिके घटके समान आकारकूं प्राप्त होवै है. जैसे मूषामें गेऱ्या जो ताम्र, ताका मषाके आकारके समान आकार होवै है, तैसे, अंतःकरणकी वृत्तिका भी घटके आकारके समान आकार होवै है. सो वृत्ति, आभास बिना नहीं होवै है; किंतु आभाससहित होवै है. काहेते वृत्ति अंतःकरणका परिणाम है. अंतःकरणका जो परिणाम ताकूं वृत्ति कहैं हैं. जैसे अंतःकरण सत्त्वगुणका कार्य होनेते स्वच्छ है, याते अंतःकरण विषे चेतनका आभास होवै है तैसे वृत्ति भी स्वच्छ अंतःकरणका कार्य है याते वृत्तिविषे चेतनका आभास होवै है. और वृत्ति जो उत्पन्न होवै है,सो आभाससहित अंतःकरणसे उत्पन्न होवै है. इस कारणतेभी वृत्ति आभाससहितही होवै है और

विषय जो घट है, सो तमोगुणका कार्य है, यातैं स्वरूपसे जड है, और ताकेविषे अज्ञान और ताका आवरण है. यामें यह शंका होवै है:—अज्ञान और ताका आवरण विचारदृष्टिसे चेतनविषे हैं, घटविषे नहीं. काहेते, अज्ञान चेतनके आश्रित है, और चेतनहीकूं विषय करै है, यह वेदांतका सिद्धांत है. और सात अवस्थाके प्रसंगमें जो अज्ञानका आश्रय अंतःकरणसहित आभास कह्या, सो अज्ञानका अभिमानी है; "मैं अज्ञानी हू" ऐसा अभिमान अंतः—करणसहित आभासकूं होवै है. इस कारणते अज्ञानका आश्रय कहिये है. और मुख्य आश्रय चेतन है; आभाससहित अंतःकरण नहीं. काहेते, आभाससहित अंतःकरण अज्ञानका कार्य है. जो जाका कार्य होवै है; सो ताका आश्रय बनै नहीं यातैं चेतनही अज्ञानका अधिष्ठानरूप आश्रय है. और चेतनहीकूं अज्ञान विषय करैहै. स्वरूपका जो आवरण करना सोई अज्ञानका विषय करना है. सो अज्ञानकृत आवरण जडवस्तुविषे बनै नहीं. काहेते, जडवस्तु स्वरूपसेही आवृत है वाके विषे अज्ञानकृत आवरणका कछु उपयोग नहीं इसरीतिसे अज्ञानका आश्रय और विषय चैतन्य है. जैसे गृहके मध्य जो अंधकार है, सो गृहके मध्यकूं आवरणकरै है. याते घटकेविषे अज्ञान और ताका आवरण बनै नहीं. ताका यह समाधान है.

जैसे चेतनके स्वरूपसे भिन्न सत् असत्से विलक्षण अज्ञान चेतनके आश्रित है, ता अज्ञानसे चेतन आवृत होवै है; तैसे घटके स्वरूपसे भिन्न अज्ञान यद्यपि घटके आश्रित नहीं है, तथापि

अज्ञानमें घटादिक,स्वरूप से प्रकाशरहित जडस्वरूप रचै है. यातैं सदाही अंधके समान आवृत है. सो आवृतस्वभाव घटादिकनका अज्ञानने किया है. काहेतें, तमोगुणप्रधान अज्ञानसे भूतकी उत्पत्तिद्वारा घटादिक उपजें हैं. सो तमोगुण आवरणस्वभाववाला है; यातें घटादिक प्रकाशरहित अंध ही होवैं हैं. इसरीतिसे अंधतारूप आवरण घटादिकनमें अज्ञानकृत स्वभावसिद्ध है. और घटादिकनके अधिष्ठान चेतनआश्रित अज्ञान चेतनकूं आच्छादित करिकें स्वभावसें आवृत घटादिकनकूं भी आवृत करै है. यद्यपि स्वभावसें आवृतपदार्थके आवरणमें प्रयोजन नहीं है, तथापि आवरणकर्त्ता पदार्थ प्रयोजनकी अपेक्षासे विनाही निरावरणकी न्याईं आवरणसहितमें भी आवरण करै है; यह लोकमें प्रसिद्ध है. ता अज्ञानसे आवृत घटकूं व्याप्त जो होवै है; अंतःकरणकी आभाससहित घटाकारवृत्ति; तामें वृत्तिभाग तो घटके आवरणकूं दूरि करै है, और वृत्तिमें जो आभासभाग है; सो घटका प्रकाश करै है. इसरीतिसे वाहिरके पदार्थविषे वृत्ति और आभास दोनोंका उपयोग है.

दृष्टांत।

जैसे अंधकारमें कूंडेसे मृत्तिका अथवा लोहका पात्र ढका धरा होवै, तहां दंडसे कूंडेकूं फोड़े विगैर पीछे दीपकविना उस निरावरणपात्रका भी प्रकाश होवै नहीं, किंतु दीपकसे प्रकाश होवै है तैसे अज्ञानसे आवृत जो घट, ताके आवरणकूं वृत्तिभंग

भी करै है, तथापि घटका प्रकाश होवै नहीं काहेतैं, घट तो स्वरूपसे जड़ है और वृत्ति भी जड है; ताका आवरणभंगमात्र प्रयोजन है तासे प्रकाश होवै नहीं. यातैं घटका प्रकाशक आभास है. नेत्रका विषय जो वस्तु है, ताके प्रत्यक्षज्ञानकी यह रीति कही. और श्रवणादिकका जो विषय है. ताके प्रत्यक्षकी भी रीति ऐसेही जानि लेनी.

वृत्ति और घट दोनों एकदेशमें स्थित होनेतैं घटका ज्ञान प्रत्यक्ष कहिये है. और अंतःकरणकी वृत्ति तौ घटाकार होवै, और घटके संग वृत्तिका संबंध न होवै. किंतु अंतरही वृत्ति होवै सो घटका परोक्षज्ञान कहिये है. " यह घट है " ऐसा अपरोक्षज्ञानका आकार है. और " घट है " अथवा " सो घट है " ऐसा परोक्षज्ञानका आकार है, यद्यपि स्मृतिज्ञान भी परोक्षज्ञानही है, तथापि स्मृतिज्ञान तौ संस्कारजन्य है; और अनुमितिआदिक परोक्षज्ञान प्रमाणजन्य हैं; इतना भेद है. प्रमाणके प्रसंगसे हम प्रमाण निरूपण करैं हैं.

चार्वाक जो हैं. सो एक प्रत्यक्षप्रमाण अंगीकार करैहैं और, कणाद और सुगतमतके जो अनुसारी हैं, सो दूसरा अनुमान प्रमाण भी अंगीकार करैं हैं. काहेतैं, एक प्रत्यक्षही प्रमाण अंगीकार करैं तौ तृप्तिके अर्थीकी भोजनविषे प्रवृत्ति नहीं होवैगी. काहेतैं, अभुक्तभोजनविषे तृप्तिकी हेतुताका प्रत्यक्षप्रमाणजन्य प्रत्यक्षज्ञान है नहीं. यातैं भुक्तभोजनमें अनुभव जो, करी है तृप्तिकी हेतुता, सो अभुक्तभोजनमें भी अनुमानसे जानिकै तृप्तिके अर्थीकी

भोजनमें प्रवृत्ति होनेतें अनुमानप्रमाण भी अंगीकार करना चाहिये इसरीतिसे कणाद और सुगतमतके अनुसारी प्रत्यक्ष और अनुमान दो प्रमाण अंगीकार करैं हैं. और,

सांख्यशास्त्रका कर्ता जो कपिल हैं; ताके मतके अनुसारी तीसरा शब्दप्रमाण भी अंगीकार करैं हैं. काहेतें, जो प्रत्यक्ष और अनुमान दोही प्रमाण अंगीकार करैं तो देशांतरविषे जाका पिता मरिगया होवे, ताकूं कोई यथार्थवक्ता आनिकै कहै, " तेरा पिता मरिगया है " तब श्रोताकूं पिताके मरनेका निश्चय नहीं हुवा चाहिये, काहेते, देशांतरविषे स्थित पिताके मरणका ज्ञान प्रत्यक्ष और अनुमानकारिकै बनै नहीं, इसरीतिसे कपिलमतके अनुसारी प्रत्यक्ष और अनुमान और शब्द तीनप्रमाण अंगीकार करैं हैं और-

न्यायशास्त्रका कर्त्ता जो गौतम है, ताके मतके अनुसारी उपमान भी चतुर्थप्रमाण अंगीकार करैं हैं. काहेतें, प्रत्यक्ष आदिक तीनही प्रमाण अंगीकार करैं, तो जा पुरुषने गवय नहीं देखा है, और वनवासी पुरुषसे ऐसा श्रवण किया है—"गौके सदृश गवय होवै है." सो पुरुष जो वनमें चला जावे, और गवयकूं देखलेवे तब ताकूं वनवासी पुरुषने कह्या जो "गौके सदृश गवय होवै है" यह वाक्य; ताके अर्थका स्मरण होवै है. ता स्मृतिसे अनंतर पुरुषकूं ऐसा ज्ञान होवै है.—"यह पशु गवय है," ऐसा ज्ञान नहीं हुआ चाहिये. यातैं ऐसे विलक्षण ज्ञानका हेतु उपमानप्रमाण भी अंगीकार करैं हैं. और-

पूर्वमीमांसाका एकदेशी जो भट्टका शिष्य प्रभाकर है, सो पंचम अर्थापत्तिप्रमाण भीअंगीकार करै है. दिनमें भोजनत्यागी-पुरुषकूं स्थूल देखिकै ऐसा ज्ञान होवैहै—"यह पुरुष रात्रिकूं भोजन करै है" तहां रात्रिभोजनविना दिनमें भोजनत्यागीके विषे स्थूलता बनै नहीं. यातैं रात्रिभोजनका, स्थूलता संपादक है. रात्रिभोजन संपाद्यहै. संपाद्य जो रात्रिभोजन, ताके ज्ञानका हेतु स्थूलताका ज्ञान अर्थापत्ति प्रमाण कहिये है और—

पूर्वमीमांसक जो भट्ट है, सो षष्ठ अनुपलब्धिप्रमाण भी अंगीकार करै है. और वेदांतशास्त्रविषे भी षट् प्रमाण अंगीकार किये हैं. अनुपलब्धिप्रमाणका प्रयोजन यह है—गृहादिकनमें घटादिकनके अभावका ज्ञान होवै है. तहां जा पदार्थकी प्रतीति नहीं होवैहै ताके अभावका ज्ञान होवै है. अप्रतीतिकूं अनुपलब्धि कहैं हैं. घटकी जो अनुपलब्धि कहिये अप्रतीति, ताते घटका अभाव निश्चय होवैहै ऐसे पदार्थनके अभावनिश्चयका हेतु जो पदार्थनकी अप्रतीति, ताकूं अनुपलब्धिप्रमाण कहैं हैं.

प्रमाज्ञानका जो करण है, सो प्रमाण कहिये है. स्मृतिसे भिन्न जो अबाधित अर्थकूं विषयकरनेवाला ज्ञान है, सो प्रमा कहिये है स्मृतिज्ञान जो है, सो प्रमा नहीं है. काहेते जो प्रमाज्ञान है सो प्रमाताके आश्रित होवै है. और स्मृतिप्रमाताके आश्रित नहीं; किंतु साक्षीके आश्रित अंगीकार करी है और भ्रांतिज्ञान और; संशयभी साक्षीके आश्रित अंगीकार किये हैं' इसी करणते स्मृति और भ्रांति और संशय ज्ञान, ये तीनों आभाससहित अविद्याकी

वृत्तिरूप है; अंतःकरणकी वृत्तिरूप नहीं. याते प्रमाताके आश्रित नहीं; किंतु साक्षीके आश्रित है जो अंतःकरणकी वृत्तिरूप ज्ञान होवै सो प्रमाताके आश्रित होवै है. और सोई प्रमा कहिये है. स्मृति ज्ञान अंतःकरणकी वृत्ति नहीं; यातें प्रमाताके आश्रित नहीं; और प्रमाभी नहीं यातें प्रमाके लक्षणविषे स्मृतिसे भिन्न कह्या चाहिये अबाधितअर्थकूं विषय करनेवाला ज्ञान तौ स्मृतिज्ञानभी है, परंतु स्मृतिज्ञान स्मृतिसे भिन्न नहीं है. यातें अबाधितअर्थकूं विषय करनेवाला जो स्मृतिसे भिन्न ज्ञान है, सो प्रमा कहिये है. या लक्षण विषे कोई दोष नहीं.

और कोई स्मृतिज्ञानकूं भी प्रमारूप मानैं हैं. तिनके मतमें प्रमाके लक्षणविषे स्मृतिसे भिन्न ऐसा नहीं कहना किंतु अबाधित अर्थकूं विषय करनेवाला जो ज्ञान है; सो प्रमा कहिये है. भ्रांति ज्ञान जो है, सो अबाधित अर्थकूं विषय नहीं करै है; किन्तु बाधित अर्थकूं विषय करै है यातें प्रमाका लक्षण भ्रांतिज्ञानमें, नहीं जावै है. जिन्होंके मतमें स्मृतिज्ञान विषेभी प्रमा व्यवहार है तिनके मतमें स्मृतिज्ञान अंतःकरणकी वृत्ति है; अविद्याकी वृत्ति नहीं; और साक्षीके आश्रित भी नहीं; किन्तु प्रमाताके आश्रित है. काहेतें अंतःकरणकी वृत्तिका आश्रय प्रमाता ही बनै है; साक्षी- बनै नहीं इसी रीतिसे स्मृतिज्ञान किसीके मतमें तौ अंतःकरणकी वृत्ति है; यातैं प्रमारूप है और किसीके मतमें अविद्याकी वृत्ति है, यातें प्रमारूप नहीं है, और भ्रांतिज्ञान और संशयज्ञान, ये दोनों सर्वके

मतमें अविद्याकी वृत्ति हैं; और साक्षीके आश्रित हैं; यामें कोई विवाद नहीं. और विचार करिके देखिये तो स्मृतिज्ञान भी अविद्याकी वृत्ति है; और साक्षीके आश्रित है; प्रमारूप नहीं. काहेते, जो वेदांतसंप्रदायके वेत्ता हैं, तिन्होंनें प्रमाज्ञान षट्प्रकारका कहा है. ता षट्प्रकारमें स्मृतिज्ञान है नहीं, यातें प्रमा नहीं—

और मधुसूदनस्वामीने स्मृतिज्ञान साक्षीके आश्रितही कह्या है एक तौ प्रत्यक्षप्रमा है; और दूसरी, अनुमिति प्रमा है, और तीसरी उपमिति प्रमा है; और चतुर्थी शाब्दीप्रमा है, और पंचमी अर्थापत्तिप्रमा है, और षष्ठी अभावप्रमा है, ये षट्प्रमा हैं, और पूर्व कहे जो प्रत्यक्षआदिक षट्प्रमाण हैं, सो इनके क्रमतें करण हैं. प्रत्यक्षप्रमाका जो करण होवे,सो प्रत्यक्षप्रमाण कहियेहै. असाधारण कारण जो होवै सो करण कहिये है. जो सर्वकार्यका कारण होवै सो साधारण कारण कहिये है जैसे धर्म अधर्मादिक सर्व कार्यके कारण हैं यातें साधारण कारण हैं. सर्वकार्यका कारण न होवे, किंतु किसी कार्यका कारण होवे, सो असाधारण कारण कहिये है. जैसे दंड जो है सो सर्वकार्यका कारण नहीं; किंतु घटआदिक जो कार्यविशेष हैं. तिनका कारण है. यातें दंड असाधारणकारण कहिये है, और घटका कारण भी कहिये है. तैसे प्रत्यक्षप्रमाके ईश्वर और ताकी इच्छासे आदिलेके तौ साधारण कारण हैं, काहेतैं ईश्वरसे आदिलेके सर्वकार्यके कारण हैं. तिन विना कोई कार्य होवे नहीं, याते ईश्वरादिक साधारण कारण हैं

और नेत्रसे आदिलेके जो इंद्रिय हैं, सो प्रत्यक्षप्रमाके असाधारण-कारण हैं यातें नेत्र आदिक जो इंद्रिय हैं, सो प्रत्यक्षप्रमाके करण हैं. इसरीतिसे नेत्र आदिक जो इंद्रिय हैं, हो प्रत्यक्षप्रमाण कहिये हैं.

यद्यपि इंद्रियकूं वेदांतसिद्धांत विषे प्रमाज्ञानकी कारणता कहना बनें नहीं. काहेतें, चेतनके च्यारि भेद हैं.—एक तौ प्रमाताचेतन है, और दूसरा प्रमाणचेतन है, और तीसरा प्रमितिचेतन है, ताहीकूं प्रमाचेतन भी कहें हैं. और चौथा प्रमेयचेतन है, ताहीकूं विषयचेतनभी कहैं हैं. इसरीतिसे प्रमा नाम चेतनका है; सो नित्य है, इंद्रियजन्य नहीं. यातें इंद्रिय ताका कारण नहीं तथापि चेतनमें प्रमाव्यवहारका संपादक वृत्ति भी प्रमाकहिये है. ताके इंद्रिय करण हैं.

देहके मध्य जो अंतःकरण, ता करिके अवच्छिन्न जो चेतन सो प्रमाता कहिये है सोई अंतःकरण नेत्रादिक इंद्रियद्वारा निकसिके जितने दूरि घटादिक विषय स्थित होवें, उतना लंबा परिणाम अंतःकरणका होवे है. और आगे विषय जो घटादिक हैं, तिनमें मिलिके जैसा घटादिकका आकार होवे, तैसाही अंतःकरणका आकार होवै है. जैसे कोठेमें भर्या जो जल सो छिद्रद्वारा निकसिके, लंबेनालेका आकार होयके बगीचेके, केदारमें जावै है और केदारमें जाइके जैसा केदारका आकार होवे, तिस आकारकूं जल प्राप्त होवै है. तैसे अंतःकरण भी इंद्रियरूपी छिद्रद्वारा निकसिके विषयरूपी केदारकूं जावै है. तहां शरीरसे लेके घटादिक विषयप्र-

यंत जो अंतःकरणका नालेके समान परिणाम, ताकूं वृत्तिज्ञान कहें हैं. ताकरिके अवच्छिन्न जो चेतन, ताकूं प्रमाण चेतन कहें हैं. और वृत्तिज्ञानरूप जो अंतःकरणका परिणाम, ताकूं प्रमाण कहें हैं. जैसे केदारविषे जल जाइके केदारके समान आकार होवै है; तैसे घटादिकके जो विषय हैं. तिनमें वृत्ति जाइके समान आकारकूं प्राप्त होवै है. ता करिके अवच्छिन्न जो चेतन सो प्रमाचेतन कहिये है. ज्ञानके विषय जो घटादिक, तिन करिके अवच्छिन्न जो चेतन सो विषयचेतन कहिये है; और प्रमेयचेतन भी है. यह वेदअर्थके जाननेवाले जो आचार्य हैं, तिनकी परिभाषा है,

यामें इतना भेद है जो अवच्छेदवाद; अंगीकार करें हैं, तिनके मतमें तो अंतःकरणविशिष्ट जो चेतन है, सो प्रमाता है. और सोई कर्ता भोक्ता है. और अंतःकरणउपहित साक्षी है.एकही अन्तःकरण प्रमाताका तो विशेषण है, और साक्षीकी उपाधि है. स्वरूपविषे-जाका प्रवेश होवे, ऐसी जो व्यावर्तक वस्तु है, सो विशेषण कहिये है. और पदार्थसे भिन्नता करिके वस्तुके स्वरूपकूं जो जनावे, सो व्यावर्तक कहिये है. जाकूं भिन्नता करिके जनावे, सो व्यावर्त्य कहिये है. जैसे "नीलघट है" या स्थानमें घटका नीलता विशेषण है. काहेतें, नीलघटके विषे नहीं; और बाहिरके आकाशते भिन्नताकरिके श्रोत्रकूं जनावे है; यातैं व्यावर्त्तक है. और घटाकाश जो है, सो मनपरिमाण अन्नकूं अवकाश देवै है, या स्थानमें भी आकाशकी घट उपाधि है, काहेते, मन अन्नकूं अवकाश देनेवाला जो आकाश है, ताके स्वरूपविषे तो घटका प्रवेश है

नहीं. घट पार्थिव है,ताकेविषे अवकाश देना बनै नहीं; याते घटका स्वरूपमें प्रवेश बनै नहीं. और व्यापक आकाशते भिन्नताकरिके जनावै है याते मन अन्नकूं अवकाश देनेवाला जो आकाश ताकी घट उपाधि है. तैसे अंतःकरणउपहित जो चेतन है, सो साक्षी है. या स्थानमें अंतःकरण साक्षीकी उपाधि है. काहेते,

साक्षीके स्वरूपविषे तौ अंतःकरणका प्रवेश है नहीं. और प्रमेयचेतनसे साक्षीकूं भिन्नताकरिके जनावै है. याते एकही अंतःकरण साक्षीकी तौ उपाधि है, और प्रमाताका विशेषण है.इसरीतिसे अंतःकरणउपहित जो चेतन है सो तौ साक्षी है; और अंतःकरणविशिष्टचेतन प्रमाता है. जो उपाधिवाला होवै, सो उपहित कहिये है और विशेषणवाला होवै सो विशिष्ट कहिये है. जो अंतःकरण विशिष्ट प्रमाता है, सोई कर्ता भोक्ता सुखी दुःखी संसारी जीव है यह अवच्छेदवादकी रीति है. और कहूं आभासवादमें आभाससहित अंतःकरण जीवका विशेषण है और आभाससहित अंतःकरण साक्षी की उपाधि है. याते साभास अंतःकरणविशिष्टचेतन जीव है, औरं साभासअंतःकरणउपहित चेतन साक्षी है यद्यपि दोनोंपक्ष में विशेषणसहित चेतन जीव है, सोई संसारी है; तथापि विशेष्यभाग जो चेतन है, ताके विषे तौ जन्ममरणसे आदिलेकै संसारका संभव है नहीं. याते विशेषणमात्रमें संसार है, सोई विशिष्टचेतनमें प्रतीत होवै है. कहूं तो विशेषणके धर्मका विशिष्टमें व्यवहार होवै है, और कहूं विशेष्यके धर्मका विशिष्टमें व्यवहार होवै है; और

कहूं विशेषण विशेष्य दोनोंके धर्मका विशिष्टमें व्यवहार होवै है: जैसे दंडकरिके घटाकाशका नाश होवै है, या स्थानमें विशेषण जो घट है, ताका दंडकरिके नाश होवै है; और विशेष्य जो आकाश है ताका नाश बनै नहीं. तो भी विशिष्ट जो घटाकाश है ताका नाश प्रतीत होवै है. और "कुंडलीपुरुष सोवै है" या स्थानमें कुंडल विशेषण है; और पुरुष विशेष्य है. विशेषण जो कुंडल है, ताकेविषे सोवना बनै नहीं. किंतु विशेष्य जो पुरुष है, ताके विषे सोवना बनै है. और "कुंडलविशिष्ट विप्र सोवै है" ऐसा विशिष्टमें व्यवहार होवै है. और "शस्त्री पुरुष युद्धमें गया है." या स्थानमें विशेषण जो शस्त्र और विशेष्यपुरुष. दोनों युद्धमें गये हैं; याते दोनोंके धर्मका विशिष्टमें व्यवहार होवै है. या स्थानमें अवच्छेदवादमें तौ अंतःकरण विशेषण है, और आभासवादमें साभास अंतःकरण विशेषण है; और दोनों पक्षमें चेतन विशेष्य है. ताकेविषे तो जन्मादिकसंसार बनै नहीं. किंतु विशेषण अंतःकरण अथवा साभास अंतःकरण ताका धर्म जो जन्मादिक संसार, ताका विशिष्टचेतनमें व्यवहार करिये है. व्यवहार नाम प्रतीति और कहनेका है. इसरीतिसे आभासवाद और अवच्छेदवादका भेद है.

आभासवादमें तौ अंतःकरण आभाससहित है और अवच्छेदवादमें अंतःकरण आभासरहित है. दोनों पक्षमें आभासवाद श्रेष्ठ है. काहेते भाष्यकारने आभासवाद अंगीकार किया है. और अवच्छेदवादमें विद्यारण्यस्वामीने दोषभी कह्या है—जो आभासरहित अंतःकरण अवच्छिन्न चेतनकूं प्रमाता मानो

तो घटअवच्छिन्नचेतन भी प्रमाता हुवा चाहिये. काहेतें, जैसे अंतःकरण भूतनका कार्य है, तैसे घटभी भूतनका कार्य है. और जैसे अंतःकरण चेतनका अवच्छेदक कहिये व्यावर्त्तक है. तैसे घट भी चेतनका अवच्छेदक है याते अंतःकरणविशिष्टकी न्याईं घटविशिष्ट भी प्रमाता हुवा चाहिये और अंतःकरणमें आभास अंगीकार कियेते यह दोष नहीं. काहेते, अंतःकरण तौ भूतनके सत्त्वगुणका कार्य हैं; याते स्वच्छ है. और घटादिक भूतनके तमोगुणके कार्य हैं, याते स्वच्छ नहीं. जो स्वच्छपदार्थ होवे, सोई आभासके योग्य होवै है. मलीनपदार्थ आभासके योग्य नहीं. जैसे काँच और ताका ढकना दोनों पृथिवीके कार्य हैं, परंतु काँच तो स्वच्छ है, तामें मुखका आभास होवै है; ढकना स्वच्छ नहीं याते तामें आभास होवे नहीं तैसे सत्त्वगुणका कार्य होनेसे अंतःकरण स्वच्छ है, ताहीमें चेतनका आभास होवै है. शरीरादिक और घटादिक तमोगुणके कार्य होनेते स्वच्छ नहीं, तिनमें चेतनका आभास होवै नहीं.

इसरीतिसे अंतःकरणमें द्विविधप्रकाश है, एक तो व्यापक चेतनका प्रकाश, और दूसरा आभासका प्रकाश है. शरीरादिक और घटादिकनमें एक व्यापकचेतनका प्रकाश तौ है. दूसरा आभासका प्रकाश नहीं. यातैं द्विविधप्रकाशसहित अंतःकरणविशिष्टही चेतन प्रमाता कहिये है. एक प्रकाशसहित जो घटादिक तिन करिके संयुक्त चेतन प्रमाता नहीं. जिनके मतमें अंतःकरणमें आभास नहीं, तिनके मतमें घटादिकनकी न्याईं अंतःकरणमें भी

आभासका दूसरा प्रकाश तौ है नहीं. व्यापकचेतनका जो एक प्रकाश अंतःकरणमें, सोई व्यापकचेतनका प्रकाश घटादिकनमें है. यातैं अंतःकरणविशिष्टकी न्यांई घटविशिष्ट वा शरीरविशिष्ट वाभी तद्विशिष्ट चेतन भी प्रमाता हुवाचाहिये इस रीतिसे घट शरीरादिक-नते अंतःकरणमें यही विलक्षणता है. अंतःकरण सत्त्वगुणका कार्य है, याते स्वच्छ होनेते चेतनका आभास ग्रहण करनेके योग्य है; और पदार्थ स्वच्छ नहीं याते आभास ग्रहण करनेके योग्य नहीं आभासग्रहणके योग्य जो अंतःकरण, ता करिके संयुक्तही चेतन प्रमाता कहिये है. घटादिक और शरीरादिक आभासग्रहणके योग्य नहीं यातैं तिनकरिके विशिष्टचेतन प्रमाता नहीं. इस रीतिसे आभासवादही उत्तम है; अवच्छेदवाद नहीं.

जैसे अंतःकरण आभाससहित है, तैसे अंतःकरणकी वृत्ति भी आभाससहितही होवै है, साभासवृत्तिविशिष्ट चेतन प्रमाणचेतन कहिये है. अंतःकरणकी घटादिविषयाकार जो वृत्ति, तामें आरूढचेतनकूं प्रमा और यथार्थज्ञान कहैं हैं. ताका साधन जो इंद्रिय सो प्रमाण कहिये है. काहेते विषयाकारवृत्तिमें आरूढचेत-नकूं प्रमा कहैं हैं. तहां चेतन यद्यपि स्वरूपकरिके नित्य है याते इंद्रियजन्य ताके अभावते प्रमाचेतनका साधन इंद्रिय नहीं; तथापि निरुपाधिकचेतनमें तौ प्रमाव्यवहार है नहीं, किंतु विषयाकारवृत्ति-उपहित चेतनमें प्रमाव्यवहार होवे है. याते चेतनविषे प्रमाशब्दकी प्रवृत्तिमें विषयाकर वृत्ति उपाधि है. सो विषयाकार वृत्ति इंद्रियजन्य है, इंद्रिय ताका साधन है प्रमापनेकी उपाधि जो वृत्ति,

ताको इंद्रियजन्य होनेते उपहित जो प्रमा, सो भी इंद्रियजन्य कहिये है. याते इंद्रिय प्रमाका साधन कहिये है. परंतु अंतःकरणका परिणाम सारा प्रमा नहीं कहिये है. किंतु शरीरके भीतर जो अंतःकरण ताका विषय घटादिकनताई परिणाम, ताकूं प्रमाण कहैं हैं. विषयते मिलिके विषयके समान जो अंतःकरणका परिणाम, उतनेकूं प्रमा कहैं हैं. शरीरके भीतर जो अंतःकरण तासे लेके घटादिक विषयताई पहुँचा जो अंतःकरणका परिणाम; सोई प्रमारूपकूं धारै है. याते प्रमाका प्रमाणरूप अंतःकरणकी वृत्तिसे अत्यंतभेद नहीं. इसरीतिसे बाहिरके पदार्थनका प्रत्यक्ष ज्ञान जहां होवे तहां अंतःकरणकी वृत्ति बाहिर जायके विषय जो घटादिक, तिनके समान आकाररूपकूं धारै है. और शरीरके अंतर जो आत्मा ताका प्रत्यक्ष होवै, तब अंतःकरणकी वृत्ति बाहिर जावे नहीं. किंतु शरीरके भीतरही वृत्ति आत्माकार होवे है, ता वृत्तिसे आत्माके आश्रित आवरण दूरि होवै है. और आत्मा अपने प्रकाशते ता वृत्तिमें प्रकाशै है. इसीकारणते वृत्तिका विषय आत्मा कह्या है. और चिदाभासरूप जो वृत्तिमें फल, ताका विषय आत्मा नहीं, या प्रकारते साक्षी आत्मा स्वयंप्रकाश रूप भान होवै है; यह सिद्ध हुआ ॥ ११६ ॥

तत्त्वदृष्टिरुवाच–दोहा।

इंद्रियके संबंध विन, "अहं ब्रह्म" यह ज्ञान ॥
कैसे है प्रत्यक्ष प्रभु, मोकूं कहौ बखान ॥ ११७ ॥

टीका-“ ब्रह्मके अपरोक्षज्ञानते सकल अविद्याजालका नाश होवै है. परोक्षज्ञानते नहीं, ” यह पूर्व कह्या. ताकेविषे शंका करैं हैं—ब्रह्मका ज्ञान प्रत्यक्ष बने नहीं. काहेते इंद्रियजन्य ज्ञान प्रत्यक्ष होवै है. ब्रह्मका ज्ञान इंद्रियजन्य बनै नहीं. काहेते, नेत्र इंद्रियते रूपवान्का अथवा नीलादिक रूपका ज्ञान होवै है, ऐसा ब्रह्म नहीं. याते नेत्रइंद्रियजन्य ज्ञान ब्रह्मका बनै नहीं. रामकृष्णादिकनकी जो मनुष्याकार मूर्ति हैं सो यद्यपि रूपवाली हैं. तथापि सो मूर्ति मायारचित हैं, मिथ्या हैं सो मूर्ति ब्रह्म नहीं और पुराणनमें रामकृष्णादिकनकूं ब्रह्म रूपता कही है सो तिनकी शरीररूप मूर्ति ब्रह्मरूप है; इस अभिप्रायते नहीं कही किंतु तिनके शरीरका अधिष्ठानचेतन ब्रह्म है; इस अभिप्रायते कही है याकेविषे ऐसी शंका होवै है-सर्व शरीरनका अधिष्ठान चेतन ब्रह्म है, याते अधिष्ठानचेतन अभिप्रायते रामकृष्णादिकनकूं ब्रह्मरूपता कही होवै, तौ सर्वशरीरनका अधिष्ठानचेतन ब्रह्म होनेते मनुष्य पशु पक्षी आदिक सर्वही ब्रह्मरूप हैं तिनके समानही रामकृष्णादिक होवेंगे याते रामकृष्णादिकनकूं, अधिष्ठानचेतन ब्रह्म है, इस अभिप्रायते ब्रह्मरूपता नहीं कही, किंतु तिनकूं और जीवनते विशेषरूपताकी सिद्धिवास्ते तिनका शरीरही ब्रह्म है, ऐसा मानना योग्य है. सो बनै नहीं, काहेते; शरीरका बाध करिके तिनके शरीरनकूं ब्रह्म रूपता मानैं, तौ सर्वशरीरनका बाध करिके सारेही शरीर ब्रह्मरूप हैं, और बाध किये विना तो अन्यशरीरनकी न्याईं, हस्त-

पादादिक अवयवसहित रूपवान् क्रियावान् शरीरका निरवयव निरूप आक्रिय ब्रह्मते अभेद बनै नहीं याते रामकृष्णादिकनका शरीर ब्रह्म नहीं. परंतु इतना भेद है:-जीवनके शरीर पुण्य पापके अधीन हैं, भूतनके कार्य हैं, और जीवनकूं देहादिक अनात्मपदार्थनविषे अविद्यावलते अहं मम अध्यास है; आचार्यके उपदेशतैं ता अध्यासकी निवृत्ति होवै है. और रामकृष्णादिकनके शरीर अपने पुण्य पापते रचित नहीं, भूतनके कार्य नहीं. किंतु जैसे सृष्टिके आदिमें प्राणियोंके कर्म भोगदेनकूं सन्मुख होवै, तब आप्तकाम ईश्वरमें भी प्राणियोंके कर्मके अनुसार " मैं जगत्की उत्पत्ति करूं " ऐसा संकल्प होवै है. ता संकल्पते जगत्की उत्पत्तिरूप सृष्टि होवै है. तैसे सृष्टिते अनंतर भी " मैं जगत्का पालन करूं " ऐसा ईश्वरका संकल्प होवे है ता संकल्पते जगत्का पालन होवै है. कर्मनके अनुसार सुख दुःखका संबंध पालन कहिये है. ता पालन संकल्पके मध्य उपासकपुरुषनकी उपासनाके बलते ईश्वरकूं ऐसा संकल्प होवै है:-" रामकृष्णादिकनामसहित मूर्ति सर्वकूं प्रतीत होवे. " ता ईश्वरसंकल्पते विशेषनामरूपरहित ईश्वरमें रामकृष्णादिक नाम, पीतांबरधरादि श्यामसुंदरविग्रहरूपकी उत्पत्ति होवै है. सो विग्रह कर्मके अधीन नहीं. यद्यपि रामकृष्णादिके विग्रहते साधु और दुष्टनकूं क्रमते सुख दुःख होवैं हैं जो जाके सुख दुःखका हेतु होवै है, सो ताके पुण्य पापते रचित होवै है. याते पुण्य पाप अधीन कहिये है; इसरीतिसे अवतारनके शरीर साधुपुरुषनकूं सुखके हेतु होनेते साधुपुरुषनके पुण्यसमुदायते

रचित हैं तैसे असुरादिक असाधुपुरुषनकूं दुःखके हेतु होनेते तिन-के पापते रचित हैं. याते " अवतारनके शरीर पुण्य पापकें अधीन नहीं, " यह कहना नहीं संभवे. तथापि जैसे जीवनें पूर्वशरीरमें पुण्यपाप कर्म किये हैं, तिनका फल उत्तरशरीरमें ता जीवकूं सुख दुःख होवै है. तहां शरीरअभिमानीजीवके पूर्वशरीरके आपने पुण्यपापके अधीन उत्तरशरीर कहिये है. तैसे, राम कृष्णादिकनके शरीर यद्यपि साधु असाधु पुरुषनके पुण्यपापके अधीन हैं, और तिनकूं सुख दुःखके हेतु हैं; परंतु रामकृष्णादिकनके पुण्यपापते रचित अवतारशरीर नहीं. और तिनकूं अपने शरीरते सुखका तथा दुःखका भोग होवे नहीं याते रामकृष्णादिकनके शरीर अपने पुण्य पापके अधीन नहीं. यह संभवै है.

तैसे भूतनके परिणाम भी रामकृष्णादिक शरीर नहीं किंतु चेतन आश्रितमायाका परिणाम है, जो पंचीकृत भूतनके परिणाम होवें तौ कृष्णशरीरविषे रज्जुकृत बंधनादिकनका अभाव शास्त्रमें कह्या है, सो असंगत होवैगा. यद्यपि पंचभूतरचित सिद्ध योगीशरी-रमें भी बंधनादिक होवें नहीं. तथापि योगीशरीरमें प्रथम बंधनादि-कनका संभव होवै है, फेरि योगाभ्यासरूप पुरुषार्थते बंधनदाहादि-कनकी योग्यता नाश होवै है, कृष्णादिकनके शरीरमें योगीकी न्याई कछु पुरुषार्थसे बंधनादिकनका अभाव नहीं, किंतु तिनके शरीर सहजही बंधनादि योग्य नहीं, याते भूतनके परिणाम नहीं. और मांडूक्यभाष्यकी टीकामें आनंदगिरिनै रामादिक शरीर भूतनके परि णाम कहे हैं, सो स्थूलदृष्टिसे और शरीरनके समान वे शरीर प्रतीत

होवै हैं;इस अभिप्रायते कहे हैं काहेतैं, भाष्यकारने गीताभाष्यमें यह कह्या है:—"जीवनके ऊपर अनुग्रहकारिके शरीरधारीकी न्याईं मायाके बलते परमात्मा कृष्णरूप प्रतीत होवैं हैं, सो जन्मादिक रहित हैं. ताका वसुदेवद्वारा देवकीते जन्म भी मायाते प्रतीतहोवै है." इस रीतिसे भाष्यकारने कृष्णशरीर मायाका कार्य कह्या है; याते भूतनते अवतार शरीरनकी उत्पत्ति नहीं; किंतु तिनके शरीरनका उपादानकारण साक्षात् माया है.

और जीवनकूं देहादिकनमें आत्मभ्रांति है; रामकृष्णादिकनकूं नहीं काहेते, जीवकी उपाधि अविद्या मलिनसत्त्वगुणवाली है. राम कृष्णादिकनकी उपाधि माया शुद्धसत्त्वगुणवाली है, याते जीवनकूं अविद्याकृतभ्रांति, और रामकृष्णादिकनकूं मायाकृत सर्वज्ञता होवै है—जीवनकूं अज्ञानकृत आवरण भ्रांतिके नाशनिमित्त आचार्यद्वारा महावाक्यके उपदेशजन्य ज्ञानकी अपेक्षा है. तैसे रामकृष्णादिकनकूं आवरण और भ्रांति नहीं; याते उपदेशजन्य ज्ञानकी अपेक्षा नहीं किंतु जीवकूं अंतःकरणकी वृत्तिरूपज्ञानकी न्याईं, ईश्वरकूं मायाकी वृत्तिरूप आत्माका ज्ञान तौ उपदेशादिक विना भी होवै है; परंतु ता ज्ञानते कछु प्रयोजन तिनकूं सिद्ध होवै नहीं काहेते, जीवनकूं घटादिकनके ज्ञानते आवरणभंग, और विषय जो घटादिक तिनका प्रकाश होवै है. और ब्रह्मरूपते आत्माका ज्ञान जो जीवकूं होवै है, ता ज्ञानका विषय जो आत्मा, ताका आवरणभंग तौ ज्ञानते होवै है, और आत्माविषय स्वयंप्रकाश है; याते आत्मज्ञानते विषयका प्रकाश होवै नहीं. तैसे ईश्वरकूं

मायाकी वृत्तिरूप जो "अहं ब्रह्मास्मि" ऐसा ज्ञान, ताका विषय ईश्वरका आत्मा, सो आवरणरहित स्वयंप्रकाश है, याते आवरणभंग वा विषयका प्रकाश ईश्वरके ज्ञानका प्रयोजन नहीं. जैसे जीवन्मुक्त विद्वान्कूं निरावरणआत्माकूं विषय करनेवाली अंतःकरणकी "अहं ब्रह्मास्मि" ऐसी वृत्ति आवरणभंगादिक प्रयोजनरहित होवै है तैसे ईश्वरकूं भी आवरणभंगादिक प्रयोजनविना मायाकी वृत्तिरूप " ऐसा ज्ञान उपदेशादिकते विना होवै है.

इसरीतिसे रामकृष्णादिकनकूं जीवनते विलक्षणता ईश्वरता है, तौ भी तिनका शरीर मायारचित है, याते ब्रह्म नहीं; किंतु मिथ्या है, मायाने उत्पन्न किया जो अवतारनका शरीर, सो हस्तपादादिक अवयवसहित, और रूपसहित किया है; याते नेत्रइंद्रियका विषय तिनका शरीर होवै है. ब्रह्मकूं नेत्रइंद्रिय विषय करै नहीं. तैसे त्वचा इंद्रिय भी स्पर्शकूं और स्पर्शके आश्रयकूं विषय करै है. ब्रह्म स्पर्शका आश्रय नहीं, और स्पर्श नहीं. याते त्वचाइंद्रियका विषय नहीं-

रसनाइंद्रियते रसका ज्ञान, घ्राणते गंधका ज्ञान, श्रोत्रते शब्दका ज्ञान, होवै है. रस गंध शब्दते ब्रह्म विलक्षण है; याते रसनाघ्राण और श्रोत्रते ब्रह्मका ज्ञान नहीं और कर्मइंद्रियज्ञानके साधन नहीं किंतु वचनादिक क्रियाके साधन हैं. याते तिनते तौ किसीका ज्ञान होवै नहीं. इसरीतिसे किसी इंद्रियते ब्रह्मका ज्ञान बनै नहीं और इंद्रियते जो ज्ञान होवै, सो ज्ञान प्रत्यक्ष कहिये है, प्रत्यक्षकूं ही अपरोक्ष कहैं हैं. याते ब्रह्मका अपरोक्षज्ञान बनै नहीं; किंतु

शब्दसे ब्रह्मका ज्ञान होवै है. जो शब्दसे ज्ञान होवै, सो परोक्ष होवै है. याते ब्रह्मका ज्ञान भी परोक्षही होवै है ॥ ११७ ॥

श्रीगुरुरुवाच-दोहा।

इंद्रिय बिन प्रत्यक्ष नहिं, शिष यह नियम न जान ॥
विन इंद्रिय प्रत्यक्षहै, जैसे सुख दुखज्ञान॥ ११८॥

टीका-इंद्रियसंबंधविना प्रत्यक्षज्ञान होवे नहीं, यह नियम नहीं, काहेते, जैसे सुखका और दुःखका ज्ञान होवे सो किसी इंद्रियते होवे नहीं. सो सुख दुःखका ज्ञान भी प्रत्यक्ष होवै है, याते इंद्रियसंबंधते जो ज्ञान होवै, सोई प्रत्यक्षज्ञान होवे, यह नियम नहीं. किंतु विषयते वृत्तिका संबंध होयके विषयाकारवृत्ति जहां होवे, तहां प्रत्यक्षज्ञान कहिये है. सो विषयते वृत्तिका संबंध कहूं इंद्रियद्वारा होवे है; और कहूं शब्दसे होवे है; जैसे" दशम तू है " इस शब्दते, दशम जो आप ताते अंतःकरणकी वृत्तिका संबंध होयके दशमाकारवृत्ति होवै है. याते शब्दजन्य भी दशमका ज्ञान प्रत्यक्ष होवे है. तैसे प्रमाताविषे सुखदुःख होवे, तब सुखाकार दुःखाकार अंतःकरणकी वृत्ति होवे; ता वृत्ति से सुख दुःखका संबंध होवै है, याते सुख दुःखका ज्ञान प्रत्यक्ष कहिये है. पूर्व उत्पन्न सुख दुःख नष्ट हुये पाछे जहां पुरुषकूं याद आवै तहां सुखाकार दुःखाकार अंतःकरणकी वृत्ति तौ होवै है. परंतु वृत्तिकूं नष्ट हुये सुख दुःखते संबंध नहीं, याते सो ज्ञान स्मृतिरूप है; प्रत्यक्षरूप नहीं. यद्यपि अंतःकरणके धर्म सुख दुःख साक्षीभास्य हैं, तथापि सुखाकार

दुःखाकार अंतःकरणकी वृत्तिद्वारा साक्षी सुख दुःखका प्रकाश करै है जो साक्षी भास्यपदार्थ हैं, तिनकूं भी साक्षी वृत्तिकी अपेक्षातेही प्रकाशै है, जैसे शुक्तिरजत साक्षीभास्य है, तहां अविद्याकी वृत्तिकी अपेक्षाकारिके साक्षी रजतकूं प्रकाशै है. परंतु सुख दुःखके प्रकाशमें अंतःकरणकी वृत्ति साक्षीकी सहायक है. और मिथ्यारजतादिकनके प्रकाशमें अविद्याकी वृत्ति सहायक है.

इसरीतिसे साक्षी भास्यपदार्थके ज्ञानमें भी वृत्तिकी अपेक्षा है.सो वृत्ति जहां इंद्रियादिक बाह्य साधनते होवे, ताका विषय साक्षीभास्य नहीं कहिये है. सुख दुःखकूं विषय करनेवाली वृत्तिमें बाह्यइंद्रियादिक हेतु नहीं किंतु जब सुखादिक उत्पन्न होवैं; तिसीकालमें अन्यसाधनकी अपेक्षाबिना सुखाकार दुःखाकार अंतःकरणकी वृत्ति होवे है. ता वृत्तिमें आरूढ साक्षी सुख दुःखकूं प्रकाशै है, याते सुख दुःख साक्षीभास्य कहियें हैं.

और बाह्य जो घटादिक हैं, तिनसे अंतःकरणकी वृत्तिका संबंध नेत्रादिक इंद्रियद्वारा होवै है. याते घटादिक साक्षीभास्य नहीं तैसे ब्रह्माकार अंतःकरणकी वृत्ति होवै है. सो अंतःकरणकी वृत्ति बाहिर नहीं जावै है; किंतु शरीरके अंतरही होवै है. ता वृत्तिसे ब्रह्मका संबंध है, याते ब्रह्मका ज्ञान भी सुख दुःखके ज्ञानकी न्याईं प्रत्यक्षरूप है. परंतु सुखाकार दुःखाकारवृत्तिमें बाह्यसाधनकी अपेक्षा नहीं. याते सुख दुःख साक्षीभास्य हैं. और ब्रह्माकार जो अंतःकरणकी वृत्ति, तामें तौ गुरुद्वारा वेदवचनका श्रोत्रसे संबंध बाह्यसाधन चाहिये है; याते ब्रह्म साक्षीभास्य नहीं

इस रीतिसे जहां विषयते वृत्तिका संबंध होवे, तहां प्रत्यक्षज्ञान कहिये है "अहं ब्रह्मास्मि" या वृत्तिका विषय जो ब्रह्म, तासे संबंध है. याते ब्रह्मका ज्ञान प्रत्यक्ष संभवे है.

और जहां धूमकूं देखिके अग्निका ज्ञान होवे है, तहां धूमका ज्ञान तौ प्रत्यक्ष है और अग्निका ज्ञान प्रत्यक्ष नहीं. काहेते, नेत्र द्वारा अंतःकरणकी वृत्तिका धूमते संबंध है; यातें धूमका ज्ञान प्रत्यक्ष कहिये है. और अनुमानते अंतःकरणकी वृत्ति शरीरके अंतर अग्निके आकारकूं ग्रहण करनेवाली तौ हुई, परंतु अग्निसे वृत्तिका संबंध नहीं, याते अग्निका ज्ञान प्रत्यक्ष नहीं. इसरीतिसे जहां वृत्तिसे विषयका संबंध होवे, तहां प्रत्यक्ष ज्ञान कहिये है जहां वृत्तिसे विषयका संबंध नहीं होवे विषय बाहिर दूरि होवे, अथवा भूत वा भविष्यत होवे और अनुमानते, अथवा शब्दते विषयाकारवृत्ति अंतर होवे, सो ज्ञान परोक्ष कहिये है. इंद्रियजन्य ज्ञानही प्रत्यक्ष होवे है, यह नियम नहीं. जैसे सुख दुःखका ज्ञान इंद्रियजन्य नहीं. और प्रत्यक्ष है; तैसे दशमपुरुषका ज्ञान शब्दजन्य है; तौभी प्रत्यक्ष होवे है इसरीतिसे गुरुद्वारा श्रवण किया जो "महावाक्यरूप वेद शब्द" तासे उत्पन्न हुवा ब्रह्मज्ञान भी प्रत्यक्षही संभवे है ॥ ११८ ॥

दोहा।

गुरुको अस उपदेश सुनि, तत्त्वदृष्टि बुधिमंत ॥
ब्रह्मरूपलखि आतमा, कियो भेदभ्रमअंत ॥ ११९ ॥

"अहं ब्रह्म" या वृत्तिमें, निरावरण द्वै भान ॥
दादू आइरूप सो, यों मैं लियो पिछान ॥ १२० ॥
इति श्रीउत्तमाधिकारी उप०नाम चतुर्थस्तरंगः समाप्तः ॥ ४ ॥

पंचमस्तरङ्गः ५.

अथ श्रीगुरुवेदादिव्यावहारिकप्रतिपादन मध्यमाधिकारीसाधननिरूपणम्।

पूर्वतरंगमें यह कथाः—" गुरुमुखद्वारा श्रवण किये वेदवाक्यते अद्वैत ब्रह्मका साक्षात्कार होवै है. ताकूं सुनिके अदृष्ट नाम द्वितीय शिष्य, यह शंका करै हैः—वेद गुरु सत्य होवैं तौ अद्वैतकी हानि; असत्य होवै तौ तिनते पुरुषार्थकी प्राप्ति बनै नहीं दोनोंरीतिसे वेद गुरुते अद्वैतज्ञान बनै नहीं.

चौपाई।

वेद रु गुरु जो मिथ्या कहिये। तिनते भवदुख नश्या न चाहिये
जैसे मिथ्यामरुथलको जल। प्यास नाशको नाहिं तामैं वल १
सत्य वेदगुरु कहैं तु द्वैत । भयो गयो सिद्धांत अद्वैत ॥
यों शंकरमत पेखि अशुद्धा। तज्यो सकल मध्वादि प्रबुद्धा २

"भयो" पदको प्रथमपादसे अन्वय है.

यह शंका भगवन् मुहिं उपजै। उत्तर देहु दयालु न कुपिजै ॥
गुरुबोले शिषकी सुनि वानी। शंकरको मत परम प्रमानी ३

च्यारि यार मध्वादिक जे हैं। वेदविरुद्ध कहत सब ते हैं॥
यामैं व्यासवचन सुनि लीजै। शंकरमतहि प्रमाण करीजै॥
कलिमैं वेदअर्थ बहु करिहैं। श्रीशंकराशिव तब अवतारिहैं॥
जैन बुद्धमत मूल उखारै। गंगाते प्रभु मूर्ति निकारै॥५॥
जैसे भानु उदय उजियारो। दूरि करै जगमें अँधियारो॥
सबवस्तुहि ज्योंकी त्यों भासैं। संशय और विपर्यय नाशैं६॥
वेदअर्थमें त्यों अज्ञाना। नाशि है श्रीशंकरव्याख्याना॥
करि हैं ते उपदेश यथारथ। नाशहि संशय अरु अयथारथ॥

अयथार्थ, कहिये भ्रांति.

और जु वेद अर्थकूं करि हैं। ते शठ वृथापरि श्रम धरि हैं॥
यों पुराणमें व्यास कही है। शंकर मतमैं मान यही है॥८॥
मध्वादिकको मत न प्रमानी। यह हम व्यासवचनते जानी॥
और प्रमाण कहूं सो सुनिये। वाल्मीकिऋषि मुख्यजु गिनिये
तिन मुनि कियो ग्रंथ वासिष्ठा। तामैं मत अद्वैत स्पष्टा॥
श्रीशंकर अद्वैतहि गान्यो। तिनको मत यह हेतु प्रमान्यो१०
वाल्मीकिऋषि वचन विरुद्धं। भेदवादलखिसकलअशुद्धं११

टीका—सर्व प्रकरणका भाव यह हैः—व्यास भगवान्ने पुराणमें यह कहा हैः—"जब कलिमें वेदके अर्थकूं नाना भांति करैंगे, तब कृपालुशिव, श्रीशंकर नाम धारके अवतार लेके बदरीनाथकी मूर्तिका देवनदीमध्यते उद्धार, स्वस्थानमें स्थापन, जैनबुद्धमतखंडन, और वेदका यथार्थव्याख्यान करैंगे," या व्यासवचनते श्रीशंकरमत

प्रमाण है, और मध्वादिकनका वेदमत अप्रमाण है और उपनिषद्-गीता, सूत्र, ये तीनि जो वेदांतके प्रस्थान हैं, तिनके यद्यपि मध्वादिकनने किसीतरह खैंचिके स्वस्वमतके अनुसार व्याख्यान किये हैं; तथापि व्यासवचनते श्रीशंकरकृत व्याख्यानही यथार्थ है. और आदिकवि सर्वज्ञवाल्मीकिऋषिने उत्तररामायण वासिष्ठ नामग्रंथ किया है; तहां अद्वैतमतमें प्रधान जो दृष्टिसृष्टिवाद है सो अनेक इतिहासनसे प्रतिपादन किया है. याते वाल्मीकिवचनअनुसार अद्वैतमत प्रमाण है, और वाल्मीकिवचनविरुद्ध भेदमत अप्रमाण है इसरीतिसे सर्वज्ञ ऋषि मुनि वचन विरोधते भेदवाद अप्रमान कह्या. और युक्तिसे भी भेदवाद विरुद्ध है, यह खंडनआदिक ग्रंथनमें श्रीहर्षादिकननैं प्रतिपादन किया है. युक्ति कठिन है, याते भेदमत-खंडनकी युक्ति नहीं लिखी. और,

ऋषिमुनिवचनते विरुद्ध भेदमतमें जैनमतकी न्याई अप्रमाणता निश्चय हुयेते युक्तिसे खंडनकी आस्तिकअधिकारीकूं अपेक्षा भी नहीं. यह तीनि चौपाईसों कहै हैं:—

चौपाई ।

कियो ग्रंथ श्रीहर्ष जु खंडन । खंडन भेद एकता मंडन ॥
लिख्यो तहाँ यह बहु विस्तारा।भेदवाद नहिंयुक्तिसहारा १२॥
और भेद धिक्कार जु ग्रंथा । तहां भेदखंडनको पंथा ॥
कठिन दुरूहतर्क हैं ते अति। नहिं पैठिहिशिष तिनमैंतेमति॥

याते कही न ते तुहि उक्ती। करैं जु भेदहि खंडन युक्ती॥
अप्रमाण मत भेद लख्योजब।खंडनमेंयुक्तिनचहियततब१४

वेदवचनसे भी भेदमतविरुद्ध है; यह कहैं हैं:-

भेदप्रतीति महादुखदाता। यम कंठमैं यह टेरत ताता॥
याते भेदवाद चित त्यागहु। इक अद्वैतवाद अनुरागहु १५॥

"मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति" इति श्रुतेः
"द्वितीयाद्वै भयं भवति"
"अन्योसावन्योहमस्मीति न स वेद यथा। पशुरेव स देवानाम्" इति द्वे श्रुती॥

अर्थ--जो द्वितीयकूं मतिमैं धारै।भय ताकूं यह वेद पुकारै॥
ज्ञेय ध्येय मोतैं कछु ओरा। लखै सुपशु यह वेद ढँढोरा १६॥
शिष यातैं मध्वादिकवानी। सुनी सु बिसरहु अतिदुखदानी॥
द्वैतवचन तव हियमैं जौलौं। है साक्षात अद्वैत न तौलौं १७॥
द्वैतवचनको स्मरण ज्रु होवै। है साक्षात तू ताहि बिगोवै॥
पूर्वस्मृति साक्षातविनाशत।सुनइकअस तुहिक्थाप्रकाशत॥
राजाको इक भर्छूमंत्री। राज काज सब ताके तंत्री॥
और मुसाहिब मंत्री जेते। करैं ईरषा तासूं तेते॥ १९॥

तंत्री कहिये अधीन।

---

१ अर्थ-"पुरुष इस परमात्माविषे नानाकी न्याई देखता है, सो मृत्युते मृत्युकूं पावता है" इति।

करी न सकत भर्छुकी हाना। महाराज निजजिय प्रियजाना॥
तब सब मिलि यह रच्यो उपाया। धारि दौर दंगा मचवाया॥
सो सुनि राजहि करी कचहरी। लिये बुलाय मुसाहिबजहरी॥
तिनसूं कह्यो वेग चढि जावहु। दौरतधारि सु धूम नशावहु॥
तब सबमिलि उत्तर यह दीना। सदा एक भर्छुहि तुमचीना॥
मरणलिये अब हमहि पठावतु। भर्छूकूं कहु क्यों न चढावतु
तब बोल्यो भर्छू करजोरी। महाराज सुनु विनती मोरी॥
आज्ञा होय मोहिं यह रौरी। मारूं सकल धारि जो दौरी॥
तब भर्छूकूं बोल्यो राजा। तुम चढि जाहु समारहु काजा॥
ते जातहि भर्छू सब मारे। बणिक कृषीवल किये सुखारे॥
भर्छू विजय सुन्यो तिन जबही। राजापै भाष्यो यह तबही
भर्छू मरयो न सुधरयो काजा। मिथ्यावचन सुनतही राजा
और प्रधान मुसाहिब कीनो। छत्र रु पीनश पंखा दीनो॥
बँदोबस्त तिन कीने अपनहु। सुनै न राजा भर्छुहि सुपनहु॥
सबवृत्तांत भर्छु तब सुनिके। रूप तपस्वि धरयो यह गुनिके
राजापै मुहिजानन दे हैं। गयेद्वारलग प्राणहु ले हैं॥२७॥
अबलग सबहि पदारथ भोगे। देह रु इंद्रिय रहे अरोगे॥
तियजोचारिचतुष्पदसोहत। च्यारिफूलफलखगमनमोहत॥

"तिय" आदि, "खग" अंत, ये दो पदके अर्थ कहे।

दोहा—च्यारिचतुष्पद।

करिकर उरु मृगखुरु पुरज, केहरिसी कटि मान॥
लोचन चपल तुरंगसे, वरणैं परमसुजान॥ २९॥

च्यारि फूल।

कमलवदनअलसीकुसुम, चिबुकचिह्नमतिधाम ॥
तिलप्रसूनसी नासिका, चंपकतनु अभिराम ॥ ३० ॥

च्यारिफल।

बिंब अधर दाडिम दशन, उरज बिल्वसे धीर ॥
कोहरसी एडी कहत, कोविद मति गंभीर ॥ ३१ ॥

च्यारिफल।

है मरालसी मंदगति, कंठ कपोत सुढार ॥
पिकसी वाणी अतिमधुर, मोरपुच्छसे वार ॥ ३२ ॥

चौपाई।

गंग पयोनिधि कबहु न त्यागत।जातेरसिकसुमनअनुरागत
विधि तिलोत्तमा अपर बनाई।हन्यो सुंद जिन सो न सुहाई
मिंहदी जावककर पदरागा। तिनको मैं किय निमिषनत्यागा
और भोग तिनके उपकरना।भोगैं सबै निकट भौ मरना३४॥
अहो मूढ को मम सम जगमैं। भो लंपट अबलग मैं भगमैं।
गीलो मलिनमूत्रतैंनिशिदिन।स्रवतमांसमयरुधिरजुछताबिन
चर्म लपेट्यो मांस मलानी। ऊपरि वार अशुद्ध अलानी॥
इनमैं कौन पदारथ सुंदर। अति अपवित्र ग्लानिको मंदिर
तियकी जंघ जघन्य सदाही। रंभा करिकर उपमितजाही।
आर्द्र मूतको मनु पतनारो। रुधिर मांस त्वक अस्थि पसारो।

लगत जु नीके स्थूलनितंबा। तिनके मध्य मलिनमलवंबा।
तट ताके ते अतिदुर्गंधा। ह्वै आसक्त तहां सो अंधा॥३८॥
अधर जो थूक लारसे भीजत।तजि ग्लानी निजमुखमैं दीजत
दृष्टमदा नारी मदिरा भजि। शुद्ध अशुद्ध विवेक दियो तजि

दृष्टमदा कहिये जाके देखतही मदचढै।

कहत नारिके अंग जु नीके। करत विचारलगत यों फीके
कपट कूटको आकर नारी।मैं जानी अब तजन विचारी४०॥
केलाकँद दधि पायस षेरा। तंदुलघृत व्यंजन बहुतेरा॥
और विविधभोजन जे कीने।तिन सबके रसना रस लीने४१
अबलौं भई न तृप्ति जु याकूं। याते वृथा पोषिना ताकूं॥
क्षुधा विनाशहि वन फलकंदा।ह्वै क्यों पराधीन यह बंदा४२
गुहा महल बन बाग घनेरा। क्यों राजाको ह्वै हूं चेरा॥
सेजशिलाअरुनिजभुजतकिया।निर्झरजलकर पात्रनरुकिया
बैठि इकंत होय सुच्छंदा। लहिये भछूं परमानंदा॥
बिन एकांत न आनँद कबहू।मिलैअब्धिलौं पृथ्वी सबहू४४

दोहा।

पृथ्वीपती निरोग युव, दृढ स्थूल बलवंत॥
विद्यायुत तिहि भूपमैं, मानुष सुखको अंत॥४५॥

चौपाई।

जे मानव गंधर्व कहावत। ता नृपते शतगुण सुख पावत॥
होत देवगंधर्व जु औरा। तिनते लहँ सौगुण सुख न्यौरा४६॥

सुख गंधर्वदेवको जो है। ताते शतगुण पितरनको है॥
पुनि आजानदेवमैं तिनतैं।सौगुण कर्मदेवमैं जिनतैं॥४७॥
मुख्यदेव जे हैं पुनि तिनमैं। कर्मदेवते सौगुण जिनमैं॥
जो त्रिलोकपाति इंद्रकहीजै। तामैं पुनिसौगुणगिनि लीजै॥

मुख्यदेव कहिये ग्यारह रुद्र,बारहआदित्य,आठ वसु; ये इकतीस.

सवदेवनको गुरू बृहस्पति। लहै इंद्रतैं शतगुण सुखगति॥
जाको नाम प्रजापतिभाषत।गुरुते सुखसौगुणसो राखत ४९
ताहूतैं सौगुण ब्रह्महि सुख। लहै न रंचक सो कबहूं दुख॥
इतने या क्रमतैं सुख पावत।तैत्तिरीयश्रुति यों समुझावत॥५०

सोरठा।

राजातैं ब्रह्मांत, कह्यो जु सुख सगरो लहै॥
रहत सदा एकांत, कामदग्ध जाको न हिय॥ ५१॥

चौपाई।

है एकांतदेशमैं अस सुख। युवति पुत्र धन संग सदा दुख॥

अथ युवतीसंग दुःख वर्णन।

युवति कुरूप कुबोलनि जाके।सदाशोकहिय है यहताके ५२॥
प्रभु पुरीषपंडा यह रंडा। दिय मुहि कौन पापको दंडा॥
बोलत वैन व्याल कागनिके।भेड भैंसिन्योरीनागिनिके५३॥
भूत भावती ऊठनिको है। बोल खरीको सुनि खर मोहै॥
रैनि जु ऊंचे स्वरहि उचारत।स्यारहजारनसुनतपुकारत५४॥
निरपराध तिय बिन वैरागा।तजत न बनत पाप जिय लागा॥

रहतदुखीयोंनिशिदिनापियमन । तियकुबोलसुनिलखिकुरूपतन
कामिनि ह्वै जु सुरूप सुबानी । सो कुरूपते ह्वै दुखदानी ॥
चमकचामकी पियहि पियारी।अर्थधर्म नशिमोक्ष बिगारी५६

अथ धनबिगार ।

मीठे बैन जहरयुत लडवा । खाय गमाय बुद्धि ह्वै भडवा ॥
और कछूसुपनहुनाहिं देखै।कामअंधइक कामिनिलेखै॥५७॥
धन कछुमिलै जु बाहिर घरमें।सो सब खरचै कामिनि घरमें ॥
भूषण वस्त्र ताहि पहिरावै।गुरु पितु मात न यादिहु आवै५८॥
पायस पान मिठाई मेवा । देय भक्तितें तिय निजदेवा ॥
नेह नाथ नाथ्यो नहि छूटै।तियकृशानु पियवैलहि कूटै५९॥

अथ धर्मबिगार ।

ज्यों सूवा पिंजरेमें बँधुवा । सिखयो बोलत शुद्ध अशुधवा ॥
तैसें जो कछुनारिसिखावत।सोगुरुमातपिताहिसुनावत६०॥
जैसे मोर मोरनी आगे । नाचि रिझाय आप अनुरागे ॥
तैसे विविध वेषकरितियको।मनरिझायरीझतमनापियको६१
जब दुहूँनको मन अनुराग्यो।तबहि मदनमदिरामदजाग्यो॥
भये बावरे वसनहु त्यागे।अतिउन्मत घूरन पुनि लागे६२॥
प्रेतरूप धारि नग्न अमंगल।भिरि फिरि भिरत मेष मनु दंगल॥
ज्यों लोटत मद्यपि मतवारो।गिनतमलीनगलीनननारो६३॥
त्यों नर नारि मदन मद अंधे । अतिगलीन अंगनमें बंधे ॥
करतमदनमदभ्रमजेमनकूं।ह्वैअचरज मुनित्यागीजनकूं६४॥

नशै मदन मदते मति नरकी। लखत न ऊँच नीचपरघरकी॥
तियहु बावरी मदन बनाई।क्रियादुखदाजिहिंह्वैसुखदाई६५॥
प्रबलकाम मदिरा मद जागै। तब द्विजतिय धानकते लागै॥
पिये मदन मदिरा नर नारी। ऐसैं करत अनंतखुवारी६६॥
कामदोष यों नरहि बिगोवत।सोइ प्रगट सुंदरि तिय जोवत॥
यातेअतिसुरूपातिय दुखदा।ताकोत्यागकहतमुनिसुखदा६७
जो सुरूप तियमें अनुरागत।विषय दुखत पेखी नहिंभागत॥
उभयलोककीकरतसुहानी। मुनिजनगनगुनसाखबखानी॥
जो नानाविध भोजन खावै। रस ताको फल बिंदु उपावै॥
जीवनबिंदुअधीनसबनको। नशतशोकबिंदुहुतेमनको॥६९
ह्वै जब जनको मन मलवासी। करत शोक अति धरत उदासी
रुधिरनिवासधरतमनजबहू।चंचलअधिकरजोगुणतबहू॥७०
जब मन करत बिंदुमें वासा। तबहि शोक चंचलता नासा॥
पुनि आपहि बलवत जन जानै।ह्वै प्रसन्न शुभ कारज ठानै७१
बिंदु अधिक होवै जा जनमें। सुंदरकांतिरूप ता तनमें॥
बिंदुहुको तनुमैं उजियारो। नशै बिंदु तन मन हतियारो ७२
जाको बिंदु न कबहू नाशै।वलि न पलित तिहिं तन परकाशै॥
योगी करत खेचरी मुद्रा। ताते बिंदु राखि ह्वै भद्रा॥७३॥
अष्टसिद्धि जे धारत योगी। बिंदु खसै हारत ते भोगी॥
अस अतिउत्तमबिंदु जु जगमें।तिहिंतियछीनिलेत निजभगमें
ज्यों किसान बेलनमें ऊषहि। पेरत लेत निचोरि पियूषहि॥
बार बार बेलनमें धारहि। ह्वै असार दथ्या तब जारहि७५॥

हलकीबाँध गंडेकी बँधी हुई वेलनमें देवे, ताका नाम दथ्या पंजाबमें प्रसिद्ध है.

त्यों तिय भींचि भुजनमें पीकूं।भरत योनि घट खींचिअमीकूं
पुनिपुनि करत क्रिया निततौलौं । शेष बिंदुको बिंदू जौलौं
कियो असार नारि नरदेहा।खींच फुलेल फूल ज्यों खेहा ॥
भौ अकाम सत्र ताहि जरावै । सूखे बैन मुरार लगावै ७७
है जु सुरूप जोर धन भारी । ता नरपै नारी बलिहारी ॥
करि सुरूप धन बलको अंता।कहत ताहि तू काको कंता॥७८
तिहिंपुनिमिलनचहैजु अनारी । करधरपैधरतहुदेगारी ॥
नाक चढाय आँखिहू मोरै । जाय न पति सेजहुके धोरै ७९
कोटिवज्र संघात जु करिये। सबको सार खींचि इक धरिये
तियके हिय् समसो न कठोरा।ऋषि मुनिगण यह देत ढँढोरा

करत गुमान हठत तिय ज्यों ज्यों ।
चिपटत शठ मति जन मन त्यों त्यों ॥
कबहुक ताको वांछित करिके ।
मरण अंत छोड़त न पकरिके ॥ ८१ ॥
पढ़्यो पुराण वेद् स्मृति गीता ।
तर्कनिपुण पुनि किनहु न जीता ॥
करत अधीन ताहि तिय ऐसे ।
बाजीगर बंदरकूं जैसे ॥ ८२ ॥
सब कछु मनभावत करवावत ।

पढै पशुहि भलभाँति नचावत ॥
उक्ति युक्ति सब तबही विसरै ।
जव पंडित पड़ि तियपै ढिसरै ॥ ८३ ॥
जब कबहूं सुमरत यह वेदा ।
तब तियमें मानत कछु खेदा ॥
तिहि त्यागनकी इच्छा धारै ॥
पुनि तिय नैन सैन शर सारै ॥ ८४ ॥
जहरकटाक्ष नैनशर बोरै ।
तानि कमान भौंह युग जोरै ॥
मारत सारत हिय सव जनको ।
विज्ञहुँ बचत न धन शठगन को॥ ८५॥

विज्ञ कहिये विद्वान्‌हू न बचत, शठगणको धन कहिये कहा चीज.

भयो न तियमें तीव्रविरागा । यों मतिमंद करत पुनिरागा॥
करत विविध आज्ञा ज्यों चाकर।हुकुमकरै बैठी मनु ठाकर॥
जे नर नारि नयनशर बींधे । तिनके हिये होत नहिं सीधे॥
भलो बुरो सुख दुख सब बिसरत।ते कैसे भवदुखते निसरत॥
नारि बुरी वेश्या अरु परकी । तीजी नरकनिशानी घरकी ॥
तजत विवेकी तिँहुमें नेहा । करै नेह तिहशठमुख खेहा८८

दोहा ।

अर्थ धर्म अरु मोक्षकूं, नारि बिगारत ऐन ॥
सव अनर्थको मूल लखि, तजै ताहि है चैन ॥ ८९ ॥

पुत्र सदा दुख देतयों, बिनप्रापति दुख एक ॥
गर्भसमय दुख जन्म दुख, मरैतु दुःख अनेक ॥ ९० ॥

चौपाई।

गर्भ धरत जौलौं नहिं नारी। दुख दंपति मन तौलौं भारी ॥
ह्वै जु गर्भ यह चिंतन नाशै।पुत्री होय कि पुत्र प्रकाशै ॥९१॥
गर्भ गिरनके हेतु अनंता । तिनते डरत करत अतिचिंता ॥
ह्वै जु पूतनवमास विहानै।जननीजनक अधिकदुखसानै ९२
नवग्रहमें इक ह्वै नहिं बिगैरै।अस जन को न जन्म जगसगैरै॥
बिगरेग्रहकीनिशिदिनचिंता।करतमातपितुबैठिइकंता ॥९३॥
शिशु उदास ह्वै जब तजिबोबा।तब दोऊ मिलिलागत रोवा ॥
यों चिंतत कछु गये महीने । दाँतपूतके निकसे झीने ॥९४॥
मरत बाल बहु निकसत दंता। तब यह चिंतादुखतियकंता॥
जिये दूबरो दुखतें बारो । देखि चुराहे धरत उतारो ॥ ९५ ॥
म्लेच्छ चमारचूहरे कोरी । तिनते झरवावत द्विज धोरी ॥
सैय्यद ख्वाजा पीरफकीरा।धोकतजोरत हाथअधीरा ॥९६॥
जाकूं हिंदु कबहुँ नहिं मानै । पुत्रहेतु तिहिं इष्ट पिछानै ॥
भैरों भूत मनावत नाना।धरत शिवावलि भूमिमशाना९७॥
थानकको डमरू घरि बाजै । कर जोरत पूजत नहिं लाजै ॥
और यंत्र ताबीज घनेरे । लिखिमढवाय पूतगर गेरे ॥९८॥
निजकुलमें इक अच्युतपूजा।किनहु न सुपनहु सुमन्योदूजा
सोकुलनेमपूताहितत्याग्यो । व्यभिचारनज्योंजहँतहँलाग्यो

होत शीतलाकोजबनिकसन।नशतमातपितुमनकोविकसन॥
स्नानक्रियातजिरहतमलीना।परमदेवगदहाकूंकीना॥१००॥
मोरिबाग वखसहु शिशु मोरा। गदहामात चराऊँतोरा॥
यों कहि चना गोदमैं धारै। विनतीकरि गदहाकूंचारै॥१०१॥
अस अनंतदुखते शिशु पारन। युवा होत लौ और हजारन॥
उमर पूतकी ह्वै जो थोरी।मरिहै करहु उपाय करोरी१०२॥
मरे मात पित कूटहिं माथा। मानि आपकूं दीनअनाथा॥
हायहायकरिनिशिदिनरोवैंकारिधिकरनिजजन्मबिगोवैं१०३
पूतमरणको दुख ह्वै जैसो। लखत सपूत अपूत न तैसो॥
जो जीवै तो होतहि तरुना।लगत नारिके पोषण भरना१०४
सपूत कहिये जाकापूत जीवै है, औ अपूत कहियेजाकैपूतनहीं हुआ।
दिन अनेक यत्नानि प्रतिपारौ।तिनकूं जल प्यावन है भारौ॥
रजनि सेजपै सिखवै नारी।तव पितमात देहु मुहिं गारी १०५
ह्वै सुपूत तौ प्रातहि उठिके। नवै दूरतेमाथ न गठिके।
चहै मात पित आवैं नेरे। पूत न सन्मुख आँखिहु हेरे१०६
ह्वै कुपूत तौ उठतहि प्राता। वचन गारिसम बाकि असुहाता
जुदोहोयलेसब घरकोधन।देपितमातहिइकतिनकोतुन१०७
फारिसैंभारतकबहुनातिनकूं।पोषतसबदिन तियनिजतिनकूं॥
देखि लेत पितमात उसासा।या विधिपुत्र सदादुखराशा१०८

दोहा।

करि बिचार यों देखियै, पुत्र सदा दुखरूप॥

सुख चाहत जे पूततैं, ते मूढनके भूप ॥ १०९ ॥
तजि तिय पूत जु धन चहै, ताके मुखमैं धूर ॥
धन जोरन रक्षा करन, खरच नाश दुखमूर ॥ ११० ॥

चौपाई।

जो चाहै माया बहु जोरी। करै अनर्थ सु लाख करोरी ॥
जाति धर्मकुलधर्म सुत्यागै।जो धनकूंजोरन जनलागै ११११॥
बिनाभागतदपिनधनजुरिहै। जुरै तु रक्षा करिकरिमरिहैं ॥
खर्चतधनघटिहैयहचिंता।नाशैंनिशिदिनतापअनन्ता ११२
सदा करत यूंदुखधनमनकूं।चहैताहिधिकधिकतिहिंजनकूं॥
युवतिपूतधनलखिदुखदाता।तज्योभछुंममताको नाता ११३

कुंडलिया-छंद।

भछूं बन एकांतमें, गयो कियो चित शांत।
भयो नयो दीवान तिन, सुन्यो सकल वृत्तांत ॥
सुन्यो सकलवृत्तांत, चिन्त यह उपजी ताके।
जो नृप जीवत सुनै, मिलै वा काहू नाके ॥
तौ झूठे हम होहिं, भूप दे सबको दंडा।
याते अब मिलि कहौ, भछुं भो प्रेत प्रचंडा ॥ ११४ ॥

दोहा।

करि सलाह यह परस्पर, गये कचहरी बीच ॥
सबहि कही यह भूपते, भछुं प्रेत भो नीच ॥ ११५ ॥

राख लगाये देहमैं, मिलै जाहि बतरात ॥
ताहिं मारत सो नर बचत, जोतिहिदेखिपरात ॥
परात कहिये भाग जावै ।
सुनि भूपहु निश्चय कियो, मछू मरि भो प्रेत ॥
साँच झूठ भूप न लखत, ह्वै जु प्रमाद अचेत ॥११७॥
कछु दिन वीते भूप तव, मारन गयो सिकार ॥
पैठ्यो गिरि वनसघनमें, जहँ मृगराज हजार॥११८॥
तपत तहाँ इक तरुतरे, मछू निजदीवान ॥
पेखिताहि भाज्यो उलटि । मानिप्रेतदुखदान ॥११९॥

इंदव छंद ।

मछुमन्योरु परेत भयो यह, वाक्यअसत्यहुसत्यपिछाना ॥
देखिलियोनिजआँखिनजीवत, तोहु परतेहु मानि भगाना ॥
वंचकते सुनि द्वैत तथा,म ति मैं विसवास करै जु अजाना ॥
ब्रह्म अद्वैत लखै परतच्छहु, तौहु न ताहि हिये ठहराना ॥

दोहा ।

भेदवचन विश्वास करि, सुनत जु कोउ अजान ॥
सो जन दुख भुगतै सदा, है न ब्रह्मको ज्ञान ॥
याते सुनै जु भेदके, वचन लखै सु असत्य ॥
तवही ताकूं ज्ञान है, महावाक्यते सत्य ॥ १२२ ॥

चौपाई ।

शिष तैं सुनी जु भेदकहानी। जानि झूठ ते नरकनिज्ञानी ॥

तिनके कहनहार सब झूठे। पुरुषारथ मुखतेशठ रूठे॥ १२४॥
तिनको संग न कबहूँ कीजै। है जो संग न वचन सुनीजै॥
जोकहुँसुनैतुसुनतहित्यागहु। म्लेच्छजैनवचसमलखिभागहु।
जो मिथ्या है दैशिक वेदा। कैसे करहीं भवदुख छेदा॥
याको अब उत्तर सुनि लीजै। मिथ्यादुख मिथ्याते छीजै १२५
वेदरु गुरू सत्य जो होवै। तौ मिथ्याभवदुख नहिं खोवै॥
यामैं इक दृष्टांत सुनाऊँ। जाते तव संदेह नशाऊँ॥ १२६॥
सुरपति इंद्र स्वर्गमैं जैसो। प्रबलप्रताप भूप इक ऐसो॥
भीमसमान शूर वहुतेरे। तिनके चहुँधा डेरे गेरे॥ १२७॥
योधालेनिजनिजहथियारन। खरेरहैंतिहिंद्वार हजारन॥
अंदिर मंदिर ड्योढीठाढे। लियेखड्ग कोशनते काढे॥१२८॥

कोश कहिये म्यान.

ऊँचोमहल अटारी जामैं। फूलसेज सोवे नृप तामैं॥
पंछीहू पहुँचन नहिं पावै। तहां और कैसे चलिजावै॥१२९॥
तहां भूपदेख्यो असमुपना। पकर्‍यो पैर गादरी अपना॥
भूपछुडायोचाहतानिजपग। तजतनगादरिपकरिजुपगरग१३०
तब राजा यों खरोपुकारै। है को अस जो गादरि मारै॥
जोधाजोठाढेंनिजद्वारा। तिनरंचकहुनदियोसद्दारा॥ १३१॥
तबनृपदंडलियोनिजकरमें। आपुहि मार्‍योस्यारानि शिरमें॥
लगतदंड भो ताको अंता। तब निसरे पग रगते दंता१३२॥
दांत लगे गाढ नृप पगमैं। यों लंगरात सु चालत मगमैं॥
तब चाल्योले लाठी करमें। पहुंच्यो घावरियाके घरमैं॥१३३॥

ताहि कह्यो फोहा अस दीजै। घाव पाँवको तुरत भरीजै॥
घावरिया नृपते यह भाख्यो।फोहा नहिं तयार घर राख्यो॥
जो तू दे पैसा इक मोकूं। तो तयार करि देहूं तोकूं॥
तव उलटचो नृप लाठीटेका। नहिं देनेकूं कौडिहु एका॥
लाग्यो सोच करन टरि घरते।बूझे बात कौन बिन जरते॥
जो मैं होत धनी बड़भागा। आवतु घर घावरिया भागा॥
मोहिं निकम्मा जानि कँगाला। घरते तुरत रोगज्यों टाला॥
याहीकूं कछु दोष न दीजै।विनस्वारथ को किहिं न पतीजै॥
मातपिता बांधव सुत नारी। करत प्यार स्वारथतैं भारी॥
जो नहिं स्वारथ सिद्धी पावै। तो इनकूं देख्यो हु न भावै॥
जा विन घरी एक नहिं रहते। दुख:अपार विछुरेसबलहते॥
जव देखै आयो घर पौरी।घरके मिलत भाजि भरिकौरी॥
विधि अधीन कोढ़ी सो होवै।सब अंगनिमें पानी चोवै॥
अरु गरि परी आँगुरी जाके।भिनभिनात मुख माखी ताके॥
कहत ताहि ते घरके प्यारे। मरि पापी अव तो हतियारे॥
जिहिंदेखतअँखियाँनअघानीतिहिंलखिग्लानिवमनज्योंआनी
जो तिय हिय लागत:पति प्यारो। कियनचहतपलडरतेन्यारो
ताकी पवन वचायो लोरै। भिरै जु वसन तु नाक सकोरै॥
जिहिं पितु मात गोदमैं लेते। सकुचत तिहिंकरते कछुदेते॥
मिलतभ्रात जो भरि भुज कोरी। सो बतरात बीच दैडोरी॥
एसे जग स्वारथको सारो।बिनस्वारथको काको प्यारो॥

मुहिं स्वारथयोग्यनविधिकीनो।याते इनफोहानहिं दीनो ॥
यों चिंततइकमुनि तिहिं भेटचो।तिन दैजरीघावदुखमेटचो॥
निद्राते जाग्यो नृप जबहीं। घावदरदमुनि नाशै तवहीं १४५
शिषयहतुहिदृष्टांतप्रकाश्यो।लखिमिथ्यातैंमिथ्या नाश्यो ०
मिथ्यादुखदेख्योजवराजा।साचसमाजनकियकछुकाजा १४६

टीका—सर्व प्रकरणका अर्थ स्पष्ट. भाव यह है—संसाररूप दुःख मिथ्या है, याते तिसके दूरि करनेके साधन वेदगुरु मिथ्याही चाहियें हैं, मिथ्याके नाशमें सत्यसाधनकी अपेक्षा नहीं. और सत्यसाधन होवै, तौ तिनते मिथ्याका नाश होवै नहीं; जैसे राजाके समीप मिथ्यागादरी स्वप्नमें पहुँची, किसी सत्ययोद्धासे रुकी नहीं; और राजा पुकाऱ्यो जबकाहूसेभी मरी नहीं; और राजाके पासअनेक साँचे शस्त्र धरे रहे, तौ भी मिथ्यादंडसे मरी. और राजाके मिथ्या-घाव भया. तब कोई वैद्यजराह साँचा पाया नहीं. मिथ्या जरा-हके पास गया; ताने पैसा माँग्या, तौ अनंत खजाने सांचे धरेही रहे, एक पैसा भी राजाकूं मिला नहीं कोई भी सत्यसाधन राजाके दुःखके नाश करनेमें समर्थ हुआ नहीं; किंतु मिथ्या मुनिने मिथ्या-जरी देके मिथ्या दुःखका नाश किया इसरीतिके. स्वप्नसर्वकूं अनु-भवसिद्ध है जाग्रत्पदार्थका स्वप्नमें काहूकूं कभीभी उपयोग होवैनहीं तैसे मिथ्या जो संसारदुःख, ताका नाश मिथ्यावेदगुरु से होवै है, सांचे वेदगुरु अपेक्षित नहीं.

जैसे मरुस्थलके मिथ्याजलते तृषाका नाश होवै नहीं, तैसे मिथ्यावेदगुरुते संसारदुःखका नाश होवै नहीं; और मिथ्या वेदगुरु

मानिके संसारदुःखका तिनते नाश अंगीकार करोगे, तौ मरुभूमिके जलते भी तृषाका नाश हुवा चाहिये. यह शंका शिष्यने करीथी, ताका समाधान—

चौपाई ।

यद्यपि मिथ्या मरुतलपानी।ताते किनहु न प्यास बुझानी॥
तदपि विषमदृष्टांत सु तेरो । सत्ताभेद दुहुनमें हेरो ॥१४७॥

टीका—यद्यपि मिथ्या जो मरुभूमिका पानी, ताते किसीने प्यास नहीं बुझाई; और मिथ्यागुरुवेदते दुःखके नाशकी न्याई मिथ्याजलसे प्यासका नाश हुआ चाहिये; और प्यास नाश होवै नहीं; तैसे मिथ्यागुरुवेदते संसारका नाश बनै नहीं; तदपि कहिये तौभी तेरा दृष्टान्त विषम है. काहेते, दुहुनमें कहिये मरुस्थलका जल और प्यास इन दोनोंमें सत्ताका भेद है, ताकूं हेरो कहिये देखो

चौपाई ।

समसत्ता भवदुख गुरुवेदा।यों गुरुवेद करत भवछेदा॥
आपसमैंसमसत्ताजिनकी । लखिसाधकबाधकतातिनकी ॥

टीका—भवदुःख और गुरुवेदकी समसत्ता कहिये एकसत्ता है; याते गुरुवेदके भवदुःखका छेद होवैहै, जिनकी आपसमें समसत्ता होवे, तिनकी आपसमें साधकता और बाधकता होवै है; जैसे मृत्तिका और घटकी समसत्ता है,याते मृत्तिका घटका साधक है;अग्नि और काष्ठकी समसत्ताहै. तहां अग्नि काष्ठका साधकहै. साधक कहिये कारण और बाधक कहिये नाशक. मरुस्थलके जलकी और प्या-

सकी समसत्ता नहीं याते मरुस्थलका जल प्यासका बाधक नहीं. या स्थानमें यह रहस्य हैः—चेतनमें परमार्थसत्ता है. और चेतनसे भिन्न जो मिथ्या पदार्थ;तिनमें दो प्रकारकी सत्ता है—एक तौ व्यवहार सत्ता है और दूसरी प्रतिभास सत्ता है.

जा पदार्थका ब्रह्मज्ञान विना बाध होवे नहीं, किंतु ब्रह्मज्ञान-सेही बाध होवे, ता पदार्थमें व्यवहारसत्ता कहिये है. सो व्यव-हारसत्ता ईश्वरसृष्टिमें है; काहेते, देहइंद्रियादिक प्रपंच जो ईश्वर-सृष्टि, ताका ब्रह्मज्ञानसे बिना बाध होवे नहीं ब्रह्मज्ञानसेही बाध होवै है. यद्यपि ईश्वरसृष्टिके पदार्थनका ब्रह्मज्ञानसे विना नाश तौ होवै भी है, परंतु ब्रह्मज्ञानसे बिना बाध होवे नहीं. अपरोक्षमिथ्यानि-श्चयका नाम बाध है. सो अपरोक्षमिथ्यानिश्चय ईश्वरसृष्टिके पदा र्थनमें ब्रह्मज्ञानसे प्रथम किसीकूं होवे नहीं; ब्रह्मज्ञानसे अनंतरही होवै है. याते मलअविद्याके कार्य जो जाग्रत्के पदार्थ; ईश्वरसृष्टि तामें व्यवहारसत्ताहै. जन्म मरण बंधमोक्षआदिक व्यवहारके सिद्ध करनेवाली जो सत्ता कहिये होना, सो व्यवहारसत्ता कहिये है.

और ब्रह्मज्ञानसे बिनाही जिनका बाध होवे,तिनका पदार्थनमें प्रति भाससत्ता कहिये है. जैसे ब्रह्मज्ञानसे बिनाही, शुक्ति, जेवरी, मरु स्थल, आदिकनके ज्ञानते; रूपा, सर्प, जल, आदिकनका बाध होवै है, तिनमें प्रतिभास सत्ता है. प्रतिभास कहिये प्रतीतिमात्र जो सत्ता कहिये होना, सो प्रातिभाससत्ता कहिये है. मूलअविद्याके कार्य, रूपआदिक पदार्थनका प्रतीतिमात्रही होना है; याते तिनकी प्रति भाससत्ता है.

जाका तीनकालमें बाध होवे नहीं, ताकी परमार्थसत्ता कहिये है. चेतनका बाध कभी होवे नहीं, याते परमार्थसत्ता चेतनकी है.

इसरीतिसे वेद गुरु और संसारदुःख एक व्यवहार सत्ता होनेते आपसमें समसत्ता हैं. याते मिथ्यावेदगुरुते मिथ्याभवदुःखका नाश बनै है. और क्षुधा पिपासा प्राणके धर्म हैं, प्राण और ताके धर्मनका ब्रह्मज्ञानसे बिना बाध होवे नहीं, याते पिपासाकी व्यवहारसत्ता है; मरुस्थलके जलका ब्रह्मज्ञानसे बिनाही मरुस्थलके ज्ञानते बाध होनेते मरुस्थलके जलकी प्रतिभाससत्ता है. याते प्यास और मरुस्थलके जलकी समसत्ता नहीं होनेते ता जलते प्यासका नाश होवे नहीं या प्रकारते दार्ष्टांतविषे बाधक वेद गुरु, और बाध्यसंसार दुःख, तिनकी सत्ता एक है, और दृष्टांतविषे जल और प्यासकी सत्ताका भेद है, याते दृष्टांत विषम कहिये दार्ष्टांतके सम नहीं. शंका

चौपाई ।

ब्रह्मभिन्न मिथ्या सब भाखौ। तिनको भेदहेत किहि राखौ ॥
उपज्यो यह मोकूं संदेहा। प्रभुताको अब कीजै छेहा ॥ १४९ ॥

टीका—हे प्रभु! ब्रह्मसे भिन्न आप सर्वकूं मिथ्या कहोहो; तिन मिथ्यापदार्थमें शुक्तिरूपा, रज्जुसर्प, मरुस्थलजल आदिकनका ब्रह्मज्ञानसे बिनाही बाध, और संसारदुःखका ब्रह्मज्ञानसे अनंतर बाध; यह भेद कौन हेतुसे राखो हो? उत्तर—

चौपाई ।

सकलअविद्याकारज मिथ्या। शिष तामैं रंचकहु न तथ्या ॥
जा अज्ञानसे उपजत जोई। ताके ज्ञान बाध तिहि होई १५० ॥

टीका-हे शिष्य! यद्यपि ब्रह्मसे भिन्न सकल अविद्याका कार्य है, याते मिथ्या है तामें रंचक भी तथ्या कहिये सत्य नहीं परंतु जाके अज्ञानसे जो उपजै है, ताके ज्ञानसे तिसका बाध होवै है. शुक्ति रज्जु मरुस्थल आदिकनके अज्ञानते, रूपा सर्प जल आदि उपजैं हैं, तिनका बाध शुक्ति रज्जु मरुस्थल आदिकनके ज्ञानते होवै है, और ब्रह्मके अज्ञानसे जो जन्ममरणादिक संसार दुःख उपजैं हैं, तिनका बाध ब्रह्मज्ञानते होवै है.

शिष्य उवाच-दोहा।

भगवन् ब्रह्म अज्ञानते, जो उपजै संसार ॥
सो किहिं क्रमते होत है, कहौ मोहिं निरधार ॥ १५१॥

अर्थ स्पष्ट।

श्रीगुरुरुवाच-चौपाई।

जैसे स्वप्न होत बिन क्रमते। त्यों मिथ्याजग भासत भ्रमते ॥
जो ताको क्रम जान्यो लोरै। सो मरुथलजलवसन निचोरै १५२

अर्थ स्पष्ट।

दोहा।

उपनिषदनमें बहुतविधि, जगउत्पत्तिप्रकार ॥
अभिप्राय तिनको यही, चेतन भिन्न असार ॥ १५३ ॥

टीका-यद्यपि उपनिषदमें जगतकी उत्पत्ति अनेक प्रकारसे कही है, छांदोग्यमें तो सद्रूप परमात्माते अग्नि, जल, पृथ्वी, क्रमते उपजैं हैं, यह कह्या है. और तैत्तिरीयमें आकाश, वायु,

अग्नि, जल, पृथ्वी, क्रमते होवैं हैं. इसरीतिसे पांचभूतकी उत्पत्ति कही है. और कहूं सर्वकी परमेश्वर उत्पत्ति करै है; इसरीतिसे क्रमसे विनाही उत्पत्ति कही है ऐसे जगत्की उत्पत्ति वेदमें अनेकप्रकारसे कही है. तहां वेदका यह अभिप्राय है:—जगत् मिथ्या है. जो जगत् कछु पदार्थ होता तौ ताकी उत्पत्ति, अनेक प्रकारसे वेद नहीं कहता अनेक प्रकारसे जगतकी उत्पत्ति कही है, याते जगत्की उत्पत्ति प्रतिपादनमें वेदका अभिप्राय नहीं. किंतु अद्वैतब्रह्म लखावनेकूं जगत्के निषेध करनेवास्ते मिथ्याजगत्का किसी रीतिसे आरोप किया है दृष्टांतः—जैसे विनोदके निमित्त दारुका हस्ती उड़ावनेकूं बनावैं हैं, ताके कानपूँछ टेढे होवें, तो सूधे करने वास्ते यत्न नहीं करते तैसे अद्वैतज्ञानके निमित्त प्रपंचके निषेधनकूं प्रपंचका आरोप किया है. याते वेदने प्रपंचकी उत्पत्तिक्रम, एकरूप कहनेमें यत्न नहीं किया, प्रपंचकी उत्पत्ति एकरूपसे वेदने नहीं कही, याते यह जानैं हैं:—वेदका अभिप्राय प्रपंच निषेधमें है,. ताकी उत्पत्तिमें अभिप्राय नहीं और—

सूत्रकार भाष्यकारने द्वितीयअध्यायमें उत्पत्ति कहनेवाले श्रुतिवचनका विरोध दूरि करिके जो एकरूपसे तैत्तिरीय श्रुतिके अनुसार, उत्पत्तिमें सब उपनिषदनका अभिप्राय कह्या है सो मंदजिज्ञासुके निमित्त कह्या है जो उत्पत्तिवाक्यनते पूर्व कहे अभिप्रायकूं नहीं जानै, ता मंदजिज्ञासुकूं उपनिषदनमें नानाप्रकारसे जगत्की उत्पत्ति देखिके आपसमें उपनिषदनका विरोध है, यह भ्रांति होय जावेगी. ताके दूरि करनेकूं सर्वउपनिषदनमें

एकरूपसे जगत्की उत्पत्तिप्रतिपादनका प्रकार कह्या है. और जाकूं ब्रह्मविचारसे यथार्थ ज्ञान नहीं होवे, ताकूं लयचिंतनके निमित्त भी उत्पत्तिक्रम कह्या है. जा क्रमते उत्पत्ति कही है; तासे विपरीतक्रमते लयचिंतन करै. ता लयचिंतनसे अद्वैतमें बुद्धि स्थित होवै है. सो लयचिंतनका प्रकार पंचीकरणमें वार्त्तिककारसुरेश्वराचार्यने कह्या है. यह ग्रंथ उत्तम जिज्ञासुके निमित्त है, याते जगतकी उत्पत्ति और लयका प्रकार नहीं लिखा. और सागररूप है याते संक्षेपते दिखावैं हैं. शुद्धब्रह्मसे जगत्की उत्पत्ति होवे नहीं, काहेते शुद्धब्रह्म असंग है, और अक्रिय है; किंतु मायाविशिष्ट जो ईश्वर, तासे जगत्की उत्पत्ति होवैहै. याते माया और ईश्वरका स्वरूप प्रतिपादन करैं हैं.

कवित्त।

जीव ईश भेदहीन चेतन स्वरूप माहिं,
माया सो अनादि एक शांत ताहि मानिये।
सत औ असतते विलक्षण स्वरूप ताके,
ताहिकूं अविद्या औ अज्ञानहू बखानिये॥
चेतनसामान्य न विरोधी ताको साधक है,
वृत्तिमें आरुढ़ वा विरोधी वृत्ति जानिये।
मायामें आभास अधिष्ठान अरु माया मिल,
ईशसरवज्ञ जगहेतु पहिचानिये॥ १५४॥

टीका—जीव ईश्वर भेदरहित जो शुद्धचेतन, ताके आश्रित माया है सो माया अनादि कहिये आदिरहित है. आदि नाम उत्प-

त्तिका है. जो मायाकी उत्पत्ति अंगीकार करैं, तौ मायाके कार्य प्रपंचसे तौ पुत्रसे पिताकी न्याईं मायाकी उत्पत्ति बनै नहीं. चेतनसेही मायाकी उत्पत्ति माननी होवेगी. तहां जीवभाव और ईश्वरभाव तौ मायाके कार्य हैं, मायाकी सिद्धि हुए विना जीव ईश्वरका स्वरूप असिद्ध है. याते जीवचेतन वा ईश्वरचेतनसे मायाकी उत्पत्ति कहना असंभव है. और शुद्ध चेतन असंग है, अक्रिय है, निर्विकार है; ताते मायाकी उत्पत्ति माने विकारी होवेगा. और शुद्ध चेतनसे मायाकी उत्पत्ति होवै तौ मोक्षदशाविषे माया फिर उपजेगी. याते मोक्षनिमित्त साधन निष्फल होवेंगे, इसरीतिसे माया उत्पत्तिरहित है; याते अनादि है, और एक है; शांत कहिये अंतवाली है; ज्ञानते मायाका अंत होवै है. और सत् असत्से विलक्षण है. जाका तीनिकालमें बाध होवे नहीं सो सत् कहिये है, ऐसा चेतन है. मायाका ज्ञानते बाध होवै है; याते सत्से विलक्षण है. जाकी तीनिकालमें प्रतीति होवै नहीं, सो शशशृंग, वंध्यापुत्र आकाशफूलआदिक असत् कहियें हैं. ज्ञानसे पूर्व माया और ताका कार्य प्रतीत होवै है. जाग्रत्‌विषे " मैं अज्ञानी हूं; ब्रह्मकूं नहीं जानूं हूं " इसरीतिसे माया प्रतीति होवै है, और स्वप्नके विषे जो नाना पदार्थ प्रतीत होवैं हैं, तिनका उपादानकारण माया है.

और सुषुप्तिसे अनंतर अज्ञानकी इसरीतिसे स्मृति होवै है:— " मैं सुखसे सोया, कछु भी न जानता भया " सो स्मृति अज्ञातवस्तुकी होवे नहीं, याते सुषुप्तिमें अज्ञानका भान होवै है, सो

अज्ञान और माया एकही हैं तिनका भेद नहीं. या प्रकारते तीनों अवस्थाविषे मायाकी प्रतीति होवै है, याते असत्से विलक्षण है इस रीतिसे सत् असत्से विलक्षण जो माया, ताका कार्य भी सत् असत्से विलक्षण है. सत् असत्से विलक्षणकूंही अद्वैतमतमें मिथ्या कहैं हैं, और अनिर्वचनीय कहैं, हैं, याते माया और ताके कार्यते द्वैतकी सिद्धि होवै नहीं. काहेते, जैसे चेतन सद्रूप है, तैसे माया और ताका कार्य सद्रूप होवै तो द्वैत होवै. सो माया और ताका कार्य सत् असत्से विलक्षण होनेते मिथ्या है मिथ्या पदार्थसे द्वैत होवै नहीं. जैसे स्वप्नके पदाथ मिथ्या हैं तिनते द्वैत होवै नहीं.

जीव ईश्वरविभागरहित शुद्धब्रह्मके आश्रित माया है; और शुद्धब्रह्मकूंही आच्छादन करै है; जैसे गेहके आश्रित अंधकार गेहकूं आच्छादन करै है. या पक्षको स्वाश्रय स्वविषय पक्ष कहैं हैं. स्व कहिये शुद्धब्रह्मही आश्रय; और स्व कहिये शुद्ध ब्रह्मही विषय, कहिये मायाते आच्छादित है. अर्थ यह ढका है. संक्षेप शारीरक, विवरण, वेदांतमुक्तावली, अद्वैतसिद्धि, अद्वैतदीपिका, आदिक ग्रंथकारोंने स्वाश्रय स्वविषयही अज्ञान अंगीकार किया है.

और वाचस्पतिका यह मत है:—अज्ञान जीवके आश्रित है और ब्रह्मकूं विषय करै है; "मैं अज्ञानी ब्रह्मकूं नहीं जानूं हूं" या प्रतीतिसे "मैं" शब्दका अर्थ जीव "अज्ञानी" कहनेते अज्ञा-

नका आश्रय भान होवै है और " ब्रह्मकूं नहीं जानूं हूँ" याते अज्ञानका विषय ब्रह्म प्रतीति होवै है. इसरीतिसे अज्ञान जीवके आश्रित और ब्रह्मकूं विषय कहिये आच्छादन करै है सो अज्ञान एक नहीं; किंतु अनंत हैं; काहेते जो एक अज्ञान मानें, तो एक अज्ञानकी एकके ज्ञानते निवृत्ति हुयेते औरनकूं अज्ञान और ताका कार्य संसार प्रतीत नहीं हुवा चाहिये, जो ऐसे कहैं आजतक किसीकूं ज्ञान हुवा नहीं तौ आगे भी किसीकूं ज्ञान नहीं होवैगा. याते श्रवणादिक साधन निष्फल होवेंगे याते अनंत जीवनके आश्रित अज्ञान अनंत हैं, अनंत जीवनके अनंतअज्ञानकल्पित, ईश्वर अनंत और ब्रह्मांड अनंत हैं जो जीवकूं ज्ञान होवे ताका अज्ञान ईश्वरब्रह्मांडकी निवृत्ति होवै है, जाकूं ज्ञान नहीं होवे, ताकूं बंध रहै है. यह वाचस्पतिका मत है. सो समीचीन नहीं काहेते. " ईश्वर, जीवके अज्ञानसे कल्पित है. " यह कहना श्रुति स्मृतिपुराणते विरुद्ध है. ईश्वर अनंत, और जीव जीवमें सृष्टिका भेद, यह भी विरुद्ध है. याते नाना अज्ञान मानने असंगत हैं. और नाना अज्ञान मानिके ईश्वर और सृष्टि एक मानैं, तो बने नहीं. काहेते, जीवईश्वरप्रपंच अज्ञानकल्पित है. अनंतअज्ञान मानेते, एक एक अज्ञानकल्पित जीवकी न्यांई ईश्वर और प्रपंच भी अनंतहीं होवैंगे. याहीते वाचस्पतिने अनंत ईश्वर और अनंत सृष्टि कही हैं. याते अज्ञान एक है. यह मत समीचीन है.

सो एक अज्ञान भी जीवके आश्रित नहीं; किंतु शुद्धब्रह्मके आश्रित है. काहेते, जीवभाव अज्ञानका कार्य है. सो अज्ञान स्वतंत्र कभी भी रहै नहीं, याते निराश्रयअज्ञानसे तौ जीवभाव बनै नहीं. प्रथम किसीके आश्रित अज्ञान होवे, तब अज्ञानका कार्य जीवभाव होवे जीवपनेकी न्याइ ईश्वरता भी अज्ञानका कार्य है. ताके आश्रित भी अज्ञान नहीं, किंतु शुद्धब्रह्मके आश्रित अनादि अज्ञान है. अनादि जो चेतन और अज्ञान, तिनका संबंध भी अनादिचेतनअज्ञानके अनादिसंबंधसे जीवभाव ईश्वरभाव भी अनादि है. परंतु जीवभाव और ईश्वरभाव अज्ञानके अधीन हैं. याते अज्ञानका कार्य कहिये है. यद्यपि " मैं अज्ञानी हूं " इसरीतिसे जीवके आश्रित अज्ञान, प्रतीत होवै है; तथापि शुद्धब्रह्मके आश्रित जो अज्ञान, ताका जीवकूं " मैं अज्ञानी हूं " यह अभिमान होवै है. और जीव अज्ञानका कार्य है. याते अज्ञानका अधिष्ठानरूप आश्रय जीव बनै नहीं, किंतु शुद्धब्रह्मही अज्ञानका अधिष्ठानरूप आश्रय है. शुद्धब्रह्म अधिष्ठानके आश्रित जो अज्ञान, सो ता ब्रह्मकूंही आच्छादन करै है. तिसते अनंतर " मैं अज्ञानी हूं " इसरीतिसे अज्ञानका अभिमानी रूप आश्रय जीव होवै है. या प्रकारते स्वाश्रय स्वविषय अज्ञान है.

सो अज्ञान यद्यपि एक है, और ज्ञानते निवृत्त होवै है. परंतु जा अंतःकरणमें अज्ञान होवे, ता अंतःकरण अवच्छिन्न चेतनमें स्थित जो अज्ञानका अंश ताकी निवृत्ति ज्ञानसे होवै है. सोई मुक्त होवै है. जा अंतःकरणमें ज्ञान नहीं होवे, तहां अज्ञानका

अंश रहै है, और बंध रहै हैं. या रीतिसे एकअज्ञानपक्षमें बंधमोक्ष-व्यवहार बनै है. और किसीकूं वाचस्पतिकी रीतिसे नानाअज्ञा-नवादही बुद्धिमें प्रवेश होवे, तौ वह भी अद्वैतज्ञानका उपाय है ताके खंडनमें कछु आग्रह नहीं. जिसरीतिसे जिज्ञासुकूं अद्वैतबोध होवै, तैसे बुद्धिकी स्थिति करै. शुद्धब्रह्मके आश्रित जो माया ताकूं अविद्या और अज्ञान कहैं हैं. अचिंत्यशक्ति और युक्तिकूं नहीं सहारे, याते माया कहैं हैं विद्याते नाश होवै है, याते अविद्या कहैं हैं. स्वरूपका आच्छादन करै है, याते अज्ञान कहैं हैं. जा चेतनके आश्रित है,सो सामान्यचेतन ताका विरोधी नहीं किंतु सामान्यचेतन मायाका साधक है, सत्तास्फुरण देवै है. और वृत्तिमें आरूढ कहिये स्थित, सो अथवा चेतनसहित वृत्ति ताकी विरोधी जानिये. कवित्तके तीनि पादनते मायाका स्वरूप कहा.

"मायामें आभास" इत्यादि चतुर्थपादसे ईश्वरका स्वरूप कहैं हैं, शुद्धसत्त्वगुणसहित माया और मायाका अधिष्ठान चेतन, मायामें आभास, तीनों मिले ईश्वर कहिये है. सो इश्वर सर्वज्ञ है. सोई जगत्का हेतु कहिये कारण है. कारण दो प्रकारका होवै है—एक तो उपादानकारण होवै है, एक निमित्तकारण होवै है. जाका कार्यके स्वरूपमें प्रवेश होवै, और जा बिना कार्यकी स्थिति होवै नहीं; सो उपादानकारण कहिये है, जैसे मृत्तिका घटका उपादान-कारण है. घटके स्वरूपमें ताका प्रवेश और मृत्तिका बिना घटकी स्थिति नहीं. जाका स्वरूपमें प्रवेश नहीं. किंतु कार्यकूं भिन्नस्थिति

होयके करै; और जाके नाशते कार्य विगरै नहीं; सो निमित्तकारण कहिये है. जैसे घटके कुलाल दंड चक्र आदिक निमित्तकारण हैं घटके स्वरूपमें तिनका प्रवेश नहीं. घटसे भिन्न कहिये किनारे स्थिति होयके घटकी उत्पत्ति करैं हैं. और उत्पत्ति हुये पीछे कुलाल दंड चक्र आदिकनके नाशते घट विगरै नहीं. इसरीतिसे उपादान और निमित्त दोप्रकार का कारण होवैहै.

और जगत्का उपादान और निमित्त दोनों प्रकारते ईश्वरही कारण है. जैसे एकही मकरी जालेका उपादानकारण और निमित्तकारण है और जो ऐसे कहैं—मकरीके जडशरीर जालेका उपादानकारण, और मकरीके शरीरमें जो चेतनभाग सो निमित्त कारण है; याते एक ईश्वरको निमित्तकारण और उपादानकारण माननेमें कोई दृष्टांत नहीं. तौ मकरीके न्याई ईश्वरका शरीरजड-माया जगत्का उपादान कारण. और चेतनभाग निमित्तकारण इसरीतिसे एकही ईश्वर जगत्का उपादान और निमित्तकारण है. तामें मकरीका दृष्टांत और मुख्य दृष्टांत स्वप्न है. जा समय जीवनके कर्म फल देनेको सम्मुख नहीं होवै, तब प्रलय होवै है. और जीवनके कर्म फल देनेको सम्मुख होवे, तब सृष्टि होवै है. इसरीतिसे जीवकर्मके अधीन सृष्टि है याते. जीवका स्वरूप कहैं हैं:—

दोहा।

मलिनसत्त्व अज्ञानमैं, जो चेतन आभास ॥
अधिष्ठानयुत जीव सो, करतकर्मफलआस ॥

टीका-रजोगुण तमोगुणकं दाबिलेवै, सो शुद्धसत्त्वगुण कहियै है, और रजोगुण तमोगुणसे आप दवै सो मलिनसत्त्वगुण कहिये है ता मलिनसत्त्वगुणसहित आज्ञानके अंशमेंजो चेतनका आभास, और अज्ञान और ताका अधिष्ठान कूटस्थ, तीनों मिले जीव कहिये है. सो जीव कर्म करै है और फलकी आश करै है.

ता जीवके कर्मनके अनुसार ऊँचनीचभोगके निमित्त ईश्वर सृष्टि रचै है. याते ईश्वरमें विषमदृष्टि और क्रूरता नहीं. और जो ऐसे कहैं:—सर्वसे प्रथम सृष्टिसे पूर्व कर्म नहीं. और प्रथम सृष्टिमें ऊँच नीच शरीर और भोग ईश्वरने रचे हैं, याते ईश्वर विषमदृष्टि है. सो बनै नहीं. काहेते संसार अनादि है. उत्तरउत्तर-सृष्टिमें पूर्वपूर्वसृष्टिके कर्म हेतु हैं सर्वसे प्रथम कोई सृष्टि नहीं, याते ईश्वरमें दोष नहीं.

कवित्त।

जीवनके पूर्व सृष्टि कर्म अनुसार ईश,
इच्छा होय जीवभोग जग उपजाइये ॥
नभ वायु तेज जल भूमि भूत रचैं तहां,
शब्द स्पर्श रूप रस गंध गुण गाइये ॥
सत्त्व अंश पंचनको मिलि उपजतसत्त्व,
रजोगुण अंश मिलि प्राण त्यों उपाइये।
एक एक भूत सत्त्व अंश ज्ञानइंद्रि रचै,
कर्मइंद्रि रजोगुण अंशते लगाइये ॥ १५६ ॥

टीका—जब जीवनके कर्म भोग देनेसे उदासीन होवे तब प्रलय होवै है. प्रलयमें सर्वपदार्थनके संस्कार मायामें रहैं हैं. याते जीवनके कर्मभी जो बाकी रहेथे सो सूक्ष्म होयके मायामें रहैं हैं. जब कर्म भोग देनेकूं सन्मुख होवैं, तब ईश्वरकूं यह इच्छा होवै है:—" जीवनके भोगनिमित्त जगत् उपजाइये. "

ऐसी ईश्वरकी इच्छाते माया तमोगुणप्रधान होवै है ता तमोगुणप्रधानमायाते नभ, वायु, तेज, जल, भूमि, ये पंचभूत रचे जावैं हैं. तिन भूतनमें क्रमते शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, ये पांचगुण होवैं हैं. मायाते शब्दसहित आकाशकी उत्पत्ति और आकाशते वायुकी उत्पत्ति, वायु आकाशका कार्य है, याते आकाशका शब्द-गुण वायुमें होवै है; अपना गुण स्पर्श होवै है. वायुते तेजकी उत्पत्ति और तेजमें आकाशका शब्द, वायुका स्पर्श होवै है, अपना रूप होवै है. तेजते जलकी उत्पत्ति, आकाशका शब्द, वायुका स्पर्श, तेजका रूप; जलमें होवै है; अपना रस होवै है, जलसे पृथ्वीकी उत्पत्ति और आकाशका शब्द, वायुका स्पर्श, तेजका रूप, जलका रस, पृथ्वीमें होवै है; पृथिवीका गंध होवै है. आकाशमें प्रतिध्वनिरूप शब्द है. वायुमें सीसीशब्द, और उष्णशीतकठिनते विलक्षण स्पर्श है. अग्निरूप तेजमें भकभुकशब्द, और उष्णस्पर्श और प्रकाशरूप है. जलमें चुलचुलशब्द शीतस्पर्श शुक्लरूप, मधुररस है. और क्षार तथा कटु पृथिवीके संबंधसे जल प्रतीत होवै है, जलका रस मधुरही है. सो मधुरता हरीतकीआदिक

भक्षण करिके जलपान किये प्रगट होवै है. पृथिवीमें कट कट शब्द, उष्णशीतसे विलक्षण कठिनस्पर्श है. श्वेत, नील, पीत, रक्त, हरितआदि रूप हैं. मधुर, अम्ल, क्षार, कटु, कषाय, तिक्त रस हैं. सुगंध आर दुर्गंध दोप्रकारका गंध है, इसरीतिसे आकाशमें एक, वायुमें दोय, तेजमें तीन, जलमें चारि, पृथिवीमें पांचगुण हैं. तिनमें एक एक अपना है, अधिक कारणके हैं. और सर्वका मूलकारण ईश्वर है. तामें माया और चेतन दो भाग हैं. मिथ्यापना मायाका, और सत्तास्फूर्ति चेतनका सर्वभूतनमें है. कवित्तके दो पादका यह अर्थ है.

पंच भूतनका सत्त्वगुण अंश मिलिके सत्त्व कहिये अंतःकरणको उपजावै है. अंतःकरण ज्ञानका हेतु है. और ज्ञानकी उत्पत्ति सत्त्वगुणते अंगीकार करी है. याते अंतःकरण भूतनके सत्त्वगुणका कार्य है. और पंचभूतनके कार्य पंचज्ञान इंद्रिय तिन सबका सहायकहै. याते पंचभूतनके मिले सत्त्व गुणते अंतःकरणकी उत्पत्ति कहीहै देहके अंतर कहिये भीतर है. और करण कहिये ज्ञानका साधन है याते अंतःकरण कहिये है. और भूतनके सत्त्वगुणका कार्य है. याते अंतःकरणका सत्त्व भी नाम है.

अंतःकरणका जो परिणाम ताको वृत्ति कहैं हैं सो अंतःकरणकी वृत्ति चारि हैं. पदार्थके भले बुरे स्वरूपकूं निश्चय करनेवाली वृत्ति, बुद्धि कहिये है. संकल्प विकल्पवृत्ति मन कहिये है, चिंतावृत्ति चित्त कहिये है. "अहं"ऐसी अभिमानवृत्ति अहंकार कहिये है.

पंचभूतनके मिले रजोगुण अंशते प्राणकी उत्पत्ति होवै है. सो प्राण,क्रियाभेदते और स्थानभेदते पांचप्रकारका है.जाका हृदयस्थान, और,क्षुधा पिपासा क्रिया सो प्राणकहिये है.औरजाका गुदास्थान, मूत्रमलअधोनयन क्रिया सो अपान जाका नाभिस्थान; और भुक्तपीत अन्न जलकूं पाचन योग्य सम करै सो समान. जाका कंठस्थान; और श्वास क्रिया, सो उदान, जाका सर्वशरीर स्थान रसमेलन क्रिया, सो व्यान; और कहूं, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त धनंजय, पंचप्राण अधिक कहे हैं. तिनकी उद्गार, निमेष, छींक; जंभाई, मृतशरीरफुलावन; ये क्रमते क्रिया कही हैं. पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश,पंचनके रजोगुण अंशते एकएककी क्रमते उत्पत्ति कही है और अपान, समान, प्राण, उदान, व्यान, इनकी भी पृथिवी आदिक एकएकके रजोगुण अंशते उत्पत्ति कही है. सबके विषे रजोगुण अंशते नहीं.परंतु अद्वैत सिद्धांतमें यह प्रक्रिया नहीं काहेते, विद्यारण्यस्वामीने तथा पंचीकरणमें वार्तिककारने सूक्ष्म शरीरमें और पंचकोशनमें नाग कूर्म आदिकनका ग्रहणकिया नहीं. और तिनते अपान आदिक पंचप्राणकी उत्पत्ति भी भूतनके मिले रजोगुण अंशते कही है. याते एकएकके रजोगुण अंशते अपान आदिकनकी उत्पत्ति कथन असंगत. और सूक्ष्मशरीरमें नाग कूर्म आदिनका ग्रहण असंगत. पंचप्राणका ही सूक्ष्मशरीरमें ग्रहण है. प्राण विक्षेपरूप है. और विक्षेप स्वभाव रजोगुणका है, याते भूतनके रजोगुण अंशते प्राणकी उत्पत्ति कही है. यह तृतीय पादका अर्थहै।

एक एक भूतका सत्त्वगुणअंश पंचज्ञानइंद्रिय रचै है. और एक एकका रजोगणअंश एक एक कर्मइंद्रिय रचै है. आकाशके सत्त्व गुणते श्रोत्र, वायुके सत्त्वगुणअंशते त्वक्, तेजके सत्त्वगुणअंशते नेत्र, जलके सत्त्वगुण अंशते रसना, पृथिवीके सत्त्वगुणअंशते घ्राण होवै है. ये पंचेंद्रिय ज्ञानके साधन हैं. याते ज्ञानेंद्रिय कहियें हैं. और ज्ञान सत्त्वगुणते होवें हैं, याते भूतनके सत्त्वगुणते उत्पत्ति कही है श्रोत्रेंद्रिय आकाशके गुणको ग्रहण करै है. याते श्रोत्रेंद्रियकी आकाशते उत्पत्ति कही तैसे जा भूतके गुणको जो इंद्रिय ग्रहण करै, ता भूतसे ता इंद्रियकी उत्पत्ति कही है.

आकाशके रजोगुणअंशते वाक्इंद्रियकी उत्पत्ति; वायुके रजोगुणअंशते पाणिकी; तेजके रजोगुणअंशते पादकी; जलके रजोगुण-अंशते उपस्थकी; पृथिवीके रजोगुणअंशते गुदाकी उत्पत्ति होवै है. स्त्रीकी योनि और पुरुषके मेढ्रमें जो विषयानंदका साधन इंद्रिय सो उपस्थ कहिये है. कर्म नाम क्रियाका है. ये पांचइंद्रिय क्रियाके साधन हैं. याते कर्मेंद्रिय कहियें हैं. क्रिया रजोगुणते होवै है, याते भूतनके रजोगण अंशते इनकी उत्पत्ति कही है.

सवैया-छंद ।

भूत अपंचीकृत औ कारज, इतनी सूक्ष्मसृष्टि पिछान ।
पंचीकृतभूतनते उपज्यो, स्थूलपसारो सारो मान ॥
कारण सूक्ष्म स्थूलदेह अरु, पंचकोश इनहींमें जान ।
करि विवेक लखिआतमन्यारो, मुंजइषीकातेज्योंभान १८७॥

टीका—अपंचीकृतभूत और तिनका कार्य अंतःकरण, प्राण कर्मइंद्रिय, ज्ञानइंद्रिय, इतनी सूक्ष्मसृष्टि कहिये है.सूक्ष्मसृष्टिका ज्ञान होवै नहीं. नेत्रनासिकादिकगोलक तौ इंद्रियनके विषय हैं; परंतु इंद्रियते तिन गोलकनमें स्थित जो इंद्रियन सो काहूके इंद्रियनके विषय नहीं. सूक्ष्मसृष्टिकी उत्पत्तिसे अनंतर ईश्वरकी इच्छाते स्थूल-सृष्टिके निमित्त भतनका पंचीकरण होता भया.

पंचीकरण दोभाँतिसे कहा है—एक एक भूतके दोदोभाग सम होयके एक एकभागके चारिचारि भाग भये पांचभूतनका आधा-आधा भाग, प्रथम ज्योंका त्यों रहा है, आधेआधेभागके जो चारि-चारि भाग, सो पृथक् रहे. बडेअर्धभागनमें अपने अपने भागकूं छोडिके मिले ते अर्धभाग सबभूतनमें अपना और अर्धभाग अपनेसे इतर च्यारि भूतनका मिलिके पंचीकरण कहावै है.

और दूसरा यह प्रकार है—एकएकभूतके दोदोभाग भये सो सम नहीं; किंतु एकभाग चारिअंशका, और पंचम अंशका एक भाग इसरीतिसे न्यूनअधिक दोदोभाग भये तिनमें सबके अधिक-भाग ज्योंके त्यों पृथक् स्थित रहे. और पंचभूतनके. न्यून जो पंचभाग, तिनके एकएकभाग पंचपंचभागकरिके पृथक् स्थित, अधिकपंचभागनमें एक एक भाग मिलिके पंचीकरण होवै है. प्रथमपक्षमें एक भागके चारि भाग पृथक् रहे आधेआधेभागनमें अपनेभागकूं छोडिके मिले.और दूसरेपक्षमें न्यूनभागकेपंचभाग पृथक् रेह. अधिकपंचभागनमें अपने भागसहितमें मिले. और प्रथमपक्षमें

पंचीकृतभूतनमें अपना अंश अर्ध, और अर्धअंश औरनका. दूसरे पक्षमें पंचीकरण कियेते अपनेअंश इक्कीस, और इनके अंशचारि और दूसरे पक्ष की सुगमरीति यह है—एक एक भतके पचीस पचीसभाग होयँ. इक्कीस इक्कीसभाग, और चारि चारिभाग पृथक् भये चारि भागनमेंसे एक एक भाग इक्कीस इक्कीस भागनमें मिले, अपने इक्कीसभागनकूं छोडिके. इसरीतिसे दोप्रकारका पंचीकरण कह्या है. एक एक भूतमें पांचपांचभूत मिलायके करनेका नाम पंचीकरण है. जिन भतनका पंचीकरण किया है, तिनकूं पंचीकृत कहैं हैं

तिन पंचीकृत भूतनते इंद्रियका विषय स्थलब्रह्मांड होता भया ता ब्रह्मांडके अंतर, भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक महर्लोक, जनलोक, तपलोक, सत्यलोक; ये सात भुवन ऊपरके होते भये. और अतल, सुतल, पाताल, वितल, रसातल, तलातल, महातल ये सात-लोक नीचेके होते भये. तिन चतुर्दशलोकनमें जीवनके भोगयोग्य अन्नादिक, और भोगका स्थान देव मनुष्य पशुआदि स्थूलशरीर होते भये. यह संक्षेपते सृष्टिका निरूपण किया, और मायाके कार्यका विस्तारसे निरूपण कियेते कोटिब्रह्माकी उमरते भी माया-कृतपदार्थनिरूपणका अंत होवे नहीं; यह वाल्मीकिने अनेक इतिहासनते वाशिष्ठमें निरूपण किया है. यह सवैयाके दो पादन का अर्थ है.

तृतीयपादका अर्थ यह है:—इनहीमें कहिये, माया और ताके कार्यमें तीन शरीर और पंचकोश हैं. शुद्धसत्त्वगुणसहित माया ईश्वरका कारणशरीर और मलिनसत्त्वगुणसहित अविद्या अंश

जीवका कारणशरीर है.उत्तरशरीरके आरंभक पंचसूक्ष्मभूत, मन, बुद्धि,चित्त,अहंकार,पंचप्राण,पंचकर्मइंद्रिय; पंच ज्ञानइन्द्रिय जीवका सूक्ष्मशरीर है और सर्वजीवनके सूक्ष्मशरीरही मिलिके ईश्वरका सूक्ष्मशरीरहै. संपर्ण स्थलब्रह्मांड ईश्वरका स्थूलशरीर है. और जीवनके व्यष्टिस्थलशरीर प्रसिद्ध हैं. इन तीनिशरीरनमेंही पंच-कोश हैं. कारणशरीरकूं आनंदमयकोश कहैं हैं. विज्ञानमय, मनो-मय, प्राणमय, तीनिकोश सूक्ष्मशरीरमें हैं. पंचज्ञानेंद्रिय और निश्च-यरूपअंतःकरणकी वृत्ति बुद्धि विज्ञानमयकोश कहिये है. पंचज्ञान-इन्द्रिय और संकल्प विकल्प अंतःकरणकी वृत्ति मन, मनोमयकोश कहिये है. पंचप्राण और पंचकर्मेन्द्रिय प्राणमयकोश है, स्थूलशरीरको अन्नमयकोश कहैं हैं. इसरीतिसे तीनिशरीरनमेंही पंचकोश हैं ईश्वरके शरीरमें ईश्वरके कोश, और जीवनके शरीरनमें जीवके कोश हैं. कोश नाम म्यानका है. म्यानकी न्याई पंचकोश आ-त्माके स्वरूपकूं आच्छादन करैं हैं याते अन्नमयादिककोश कहिये हैं. अनेकमंदमति पुरुष पंचकोशनमें जो अनात्मपदार्थ हैं, तिनमें किसीएककूं आत्मामानिके मुख्यसाक्षी आत्मस्वरूपते विमुखही रहैं हैं. याते अन्नमयादिक आत्मस्वरूपको आच्छादन करैं हैं तहां—

कितने पामर विरोचनमतके अनुसारी, स्थूलशरीररूप अन्नमय कोशकोही आत्मा कहैं हैं. और यह युक्ति कहैं हैं:—जामें अहंबुद्धि होवै सो आत्माहै सो अहंबुद्धि स्थूलशरीरमें होवै है."मैं मनुष्य हूं मैं ब्राह्मण हूं" ऐसीप्रतीति सर्वको होवै है. और मनुष्यपना, ब्राह्मणपना

स्थूलशरीरमेंहीहै याते स्थूलशरीरही अहंबुद्धिका विषय होनेते आत्मा है. किंवा जामें मुख्यप्रीति होवे सो आत्मा है. स्त्री,पुत्र, धन,पशुआदिक स्थलशरीरके उपकारक होवें तो तिनमें प्रीतिहोवै है.और स्थूलशरीरके उपकारक नहीं होवें तो प्रीति होवे नहीं. जाके निमित्त अन्यपदार्थनमें प्रीति होवे ता स्थूलशरीरमेंही मुख्यप्रीति है याते स्थूलशरीरही आत्मा है. ताका वस्त्र, भूषण, अंजन, मंजन, नानाविधभोजनसे शृंगार पोषणही परमपुरुपार्थ है; यह असुरस्वामी विरोचनका सिद्धांत है.

और कोऊ ऐसे कहैं हैं:—स्थूलशरीरही. आत्मा नहीं किंतु स्थूलशरीरमें जाके होने ते जीवनव्यवहार होवै है, और जाके नहीं होनेते मरणव्यवहार होवै है, सो आत्मा स्थूलशरीरसे भिन्न है जीवन मरण इंद्रियनके अधीन हैं, जितने काल शरीरमें इंद्रिय होवें उतने काल जीवन है. और कोऊ इंद्रिय न होवे तब मरण कहिये है और " मैं देखूं हूं" " मैं सुनूं हूं " " मैं बोलूं हूं " इसरीतिसे अहं बुद्धि भी इंद्रियनमें होवै है. याते इंद्रियही आत्मा है.

और हिरण्यगर्भके उपासी प्राणकूं आत्मा कहैं हैं तामें यह युक्ति कहैं हैं:—जब मरणसमय मच्छी होवै है; तब ताके संबंधी पुत्रादिक, प्राण शेष होंय ता जावन जानै हैं और प्राण शेष न होवें तौ मरण जानै हैं. किंवा शरीरमें नेत्रइंद्रिय नहीं होवे तो अंधा- शरीर रहै है. श्रोत्रसे विना बधिर रहै है. वाक्‌विना मूक रहै है. ऐसे जो इंद्रिय नहीं होवे ताके व्यापारसे विना भी शरीर स्थितही

रहै और प्राणसे बिना तिसी क्षणमें श्मशानके समान अमंगल भयंकर होयके गिरै है. और "मैं देखूं हूं" "सुनूं हूं" या प्रतीतिसे भी इंद्रियनते भिन्नही आत्मा सिद्ध होवै है. काहेते, नेत्रस्वरूप "मैं देखूं हूं," श्रवणस्वरूप "मैं सुनूं हूं," जो ऐसी प्रतीति होवे तो इंद्रियरूप आत्मा सिद्ध होवे; किंतु "मैं नेत्रवाला देखूं हूं, श्रोत्रवाला मैं सुनूं हूं;" ऐसी प्रतीति होवै है. याते इंद्रियनते भिन्नही आत्मा है. और सुषुप्तिमें सर्वइंद्रियनका अभाव है, तौ भी प्राणके होनेते जीवनव्यवहार होवै है. याते जीवनमरण भी इंद्रियनके अधीन नहीं. किंतु स्थूलशरीर और प्राणके वियोगको मरण कहैं हैं याते जीवन मरण प्राणकेही अधीन हैं. सोई आत्मा है.

और कोई ऐसे कहैं हैः—प्राण जड है, याते घटकी न्याई अनात्मा है. और बंध मोक्ष मनके अधीन है. विषयमें आसक्त जो मन; सो बंधनका हेतु है. विषयवासनारहित मन मोक्षका हेतु है. और मनके संबंधतेही इंद्रिय ज्ञानके हेतु हैं मनके संबंध बिना इंद्रियनते ज्ञान होवे नहीं याते सर्व व्यवहारका हेतु मन है सोई आत्मा है.

और क्षणिकविज्ञानवादीबौद्ध यह कहैं हैः—मनका व्यापार बुद्धिके अधीन है, काहेते, बुद्धिकाही आकार मन होवै है. याते क्षणिकविज्ञानरूप बुद्धिही आत्मा है मन नहीं. यह तिनका अभिप्राय हैः—संपूर्णपदार्थ विज्ञानकेही आकार हैं, सो विज्ञान प्रकाशरूप है, और क्षण क्षणमें विज्ञानके उत्पत्ति नाश होवैं हैं. पूर्वविज्ञा-

नके समान अन्य विज्ञानकी उत्पत्ति हुयेते पूर्वविज्ञानका नाश होवै है. तैसे तृतीयविज्ञानकी उत्पत्ति, और द्वितीयविज्ञानका नाश, चतुर्थकी उत्पत्ति, तृतीयका नाश होवै है. या रीतिसे नदीके प्रवाहकी न्याई विज्ञानकी धारा बनी रहै है. सो विज्ञानकी धारा दोप्रकारकी है. एक तौ आलयविज्ञान धारा है. और दूसरी प्रवृत्तिविज्ञान धारा है. " अहं, अहं " ऐसी विज्ञानधाराकूं आलय-विज्ञानधारा कहैं हैं. ताहीकूं बुद्धि कहैं हैं. " यह घट है, यह शरीर है " ऐसी विज्ञानधाराकूं प्रवृत्तिविज्ञानधारा कह हैं. आल-यविज्ञानधारासे प्रवृत्तिविज्ञानधाराकी उत्पत्ति होवै है. मनका स्वरूपभी प्रवृत्तिविज्ञानधारामें है. याते आलयविज्ञानधारारूप बुद्धिका कार्य है, सो बुद्धिही, आत्मा है. आलयविज्ञानधाराविषे प्रवृत्तिविज्ञानधाराका बाधचिंतनते निर्विशेषक्षणिकविज्ञानधाराकी स्थितिही तिनके मतमें मोक्ष है. इसरीतिसे विज्ञानवादी बुद्धि-कूंही क्षणिकरूप और स्वयंप्रकाशरूप कल्पना करिके आत्मा कहैं हैं.

और पूर्वमीमांसाका वार्त्तिककारभट्ट यह कहैं हैं—विद्युत्की न्याई क्षणिकरूप आत्मा नहीं. किंतु स्थिरस्वरूप आत्मा जडस्व-रूप और चेतनरूप है, यह ताका अभिप्राय है, सुषुप्तिसे जागिके पुरुष यह कहै—" मैं जड होयके सोवता भया " याते आत्मा जड-रूप है. और जागेकूं स्मृति होवै है, अज्ञातकी स्मृति होवै नहीं आत्मस्वरूपसे भिन्न ज्ञानके सुषुप्तिमें और साधन नहीं. याते स्मृतिका हेतु सुषुप्तिमें ज्ञान है, सो आत्माका स्वरूपही है. इस-रीतिसे खद्योतकी न्याई आत्मा प्रकाश और अप्रकाशरूप है.

ज्ञानरूप है, याते प्रकाशरूप; और जड़ है, याते अप्रकाशरूप है. सो प्रकाशरूप और अप्रकाशरूप आनंदमयकोश है. काहेते, सुषुप्तिमें चेतनके आभाससहित जो अज्ञान, ताकूं आनंदमयकोश कहैं हैं. तहां आभास तौ प्रकाशरूप और अज्ञान अप्रकाशरूपहै. याते भट्टके मतमें आनंदमयकोशही आत्मा है.

और शून्यवादी बौद्ध यह कहैं हैं—आत्मा निरंश है, याते एक-आत्माको प्रकाशरूप और अप्रकाशरूपकहनाबनैनहीं.और खद्योतका तौ एकअंश प्रकाशरूपहै,और दूसराअंश अप्रकाशरूपहै. ताकी न्याई अंशरहित आत्माविषे उभयरूप कहना असंगत है. याते उभयरूपकी सिद्धिवास्ते आत्मा अंशसहितही मानना होवैगा. जो अंशवाले पदार्थ घटादिक हैं, सो उत्पत्ति और नाशवाले होवैं हैं. तैसे आत्मा भी अंशसहित होनेते उत्पत्ति नाशवालाही मानना होवैगा. जो उत्पत्ति-नाशवाला पदार्थ होवै, सो उत्पत्तिसे पूर्व और नाशते अनंतर असत होवै है. जो आदि अंतमें असत् होवे, सो मध्य भी सत् होवै नहीं, किंतु मध्य भी असत्ही होवै है. याते आत्मा असद्रूप है. तैसे आत्मासे भिन्न भी संपूर्ण पदार्थ उत्पत्तिनाशवाले हैं, याते असद्रूप है. इसरीतिसे आत्मा और अनात्मा समग्रवस्तु असद्रूप होनेते शून्यही परमतत्त्वहै, यह शून्यवादी माध्यमिकबौद्धका मत है. सो भी अज्ञानरूप आनंदमयकोशको प्रतिपादन करै है. काहेते अज्ञान तीनिरूपसे प्रतीत होवै है. अद्वैतशास्त्रके संस्काररहित जो मढ, तिनको तौ जगत्रूप परिणामकूं प्राप्त अज्ञान सत्य प्रतीत होवै

है. और अद्वैत शास्त्रके अनुसार युक्तिनिपुणपंडितनकूं सत् असत्से विलक्षण अनिर्वचनीयरूप अज्ञान और ताका कार्य जगत् प्रतीत होवै है. ज्ञाननिष्ठाकूं प्राप्त जो जीवन्मुक्तविद्वान्, तिनकं कार्य-सहित अज्ञान तुच्छरूप प्रतीत होवै है. तुच्छ, असत्, शून्य, ये तीनिशब्द एकही अर्थकूं कहैं हैं. इसरीतिसे जीवन्मुक्तनकं तुच्छ रूप जो प्रतीति होवे अज्ञान, ताके विषे मोहित शून्यवादी परम पुरुषार्थकूं नहीं जानैं हैं; किंतु तुच्छरूप आनंदमयकोशकूंही अत्मा कहैं हैं.

और पूर्वमीमांसाका एकदेशी प्रभाकर और नैयायिक यह कहैं हैं—आत्मा शून्यरूप नहीं. काहेते, जो शून्यरूप आत्मा मानैं ताकूं यह पूछैं हैं—शून्यरूपका तैंने अनुभव किया है, अथवा नहीं ? जो ऐसे कहैं,—शून्यरूपका अनुभव नहीं किया; तौ शून्य नहीं है, यह सिद्ध हुवा. और जो कहैं शून्यका अनुभव किया है, तौ जाने शून्यका अनुभव किया है, सो आत्मा शून्यसे विलक्षण सिद्ध होवै है इसरीतिसे शून्यते विलक्षण आत्मा है. ताकेविषे मनके संयोगते ज्ञान होवै है. ता ज्ञानगुणते आत्मा चेतन कहिये है. और स्वरूपसे आत्मा जड है. तैसे सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म आदिक गुण आत्माविषे हैं तिनके मतमें भी आनंदमयकोशही आत्मा है, और विज्ञानमयको-शमें जो बुद्धि है, सो आत्माका ज्ञानगुण कहैं है. काहेते आनंद-मयकोशमें चेतन गूढ है; विवेकहीनकूं प्रतीत होवै नहीं. और प्रभाकर तथा नैयायिक आत्माकं सुषुप्तिमें ज्ञानहीन मानिके स्वरू-

पसे जड कहैं हैं. याते गूढ चेतन आनंदमयकोशमेंही तिनकूं आत्मभ्रांति है, और आत्मस्वरूप नित्यज्ञानकं तो जीवमें माने नहीं किंतु अनित्यज्ञान मानैं हैं: सो अनित्यज्ञान सिद्धांतमें अंतःकरणकी वृत्ति बुद्धिरूप है. या रीतिसे प्रभाकर नैयायिकमतमें आनंदमयकोश आत्मा है;और बुद्धि ताका गुण है. तिनका मत भी समीचीन नहीं. काहेते;ज्ञानसे भिन्न जो जडवस्तु घटादिक है, सो अनित्य है. तैसे आत्मा भी ज्ञानस्वरूप नहीं होवे, तौ घटादिकनकी न्याई जड होनेते अनित्य होवेगा, जो आत्मा अनित्य होवे तौ मोक्षके अर्थ साधन निष्फल होवेगा, इसरीतिसे वेदांतवाक्यनमें विश्वासहीन अनेकबहिर्मुख पंचकोशनमेंही किसी पदार्थकूं आत्मा मानैं हैं और मुख्य आत्मस्वरूप साक्षीकं नहीं जानैं हैं याते अन्नमयादिक आत्माके आच्छादक होनेते कोश कहियें हैं.

जैसे जीवके पंचकोश जीवके यथार्थस्वरूप साक्षीकूं आच्छादन करैं हैं; तैसे ईश्वरके समष्टिपंचकोश ईश्वरके यथार्थ स्वरूपकूं आच्छादन करैं हैं. काहेते, ईश्वरका यथार्थस्वरूप तौ तत्पदका लक्ष्य है. ताकूं त्यागिकें कोई तौ मायारूप आनंदमयकोशविशिष्ट जो अंतर्यामी तत्पदका वाच्य, ताकूंही परमतत्त्व कहैं हैं तैसे हिरण्यगर्भ, वैश्वानर, विष्णु, ब्रह्मा, शिव, गणेश, देवी, सूर्यसे, आदिलेके असि, कूदाल, पीपल, अर्क; वंश पर्यंत पदार्थनमें परमात्मा भ्रांति करैं हैं. यद्यपि सब पदार्थनमें लक्ष्य भाग परमात्मासे भिन्न नहीं; तथापि तिस तिस उपाधिसहितकूं जो परमात्मा मानैं हैं, सो तिन-

कूं भांति है. या रीतिसे पंचकोशनते आवृत जो जीवईश्वरका परमार्थस्वरूप तासे विमुख होयके देहादिकनमें आत्मभ्रांतिकारिके पुण्य पापकर्म करैं हैं. और अंतर्यामीसे आदिलेके वंश पर्यंतकूं ईश्वर-स्वरूप मानिके आराधनाकारिके सुख चाहैं हैं जैसी उपाधिका आराधन करैं हैं, ताके अनुसारही तिनकूं फल होवै है. काहेतें; कारण सूक्ष्म स्थूलप्रपंच सारा ईश्वरके तीनिशरीरनके अंतर्भूत है. तामें उपासनाके अनुसार फल भी सर्वसे ही होवै है परंतु ब्रह्मज्ञान विना मोक्ष होवै नहीं. जो मोक्षकी इच्छा होवे, तो विवेकते जीव ईश्वरके स्वरूपकूं पंचकोशनते पृथक् करै. दृष्टांतः—जैसे मुंज और इषीका कहिये तूली मिली होवै है, तिनकूं तोरिके पृथक् करैं है; तैसे विवेकते जीव ईश्वरके स्वरूपकूं पंचकोशनते पृथक् जानै यह सवैयाका अर्थ है. सो विवेकका प्रकार दिखावैं हैं:—

सवैया।

स्थूलदेहको भान न होवै, स्वप्नमाहिं लखि आतमज्ञान ॥
सूक्ष्मज्ञान सुषुप्ति समैं नाहिं, सुखस्वरूप है आतम भान ॥
भासै भये समाधिअवस्था, निरावरण आतम न अज्ञान ॥
ऐसे तीनि देहव्यभिचारी, आतमअनुगत न्यारो जान १८७॥

टीका—स्वप्नअवस्थामाहीं स्थूलदेहका भान होवै नहीं और आत्माका भान होवै है. तैसे सुषुप्तिमें सूक्ष्मशरीरका ज्ञान होवे नहीं और सुखस्वरूप आत्मा स्वयंप्रकाश रूपते भान कहिये प्रतीत होवै है. सुखका ज्ञान सुषुप्तिमें नहीं होवे, तौ " मैं सुखसे सोवता भया."

ऐसी स्मृति जागिके नहीं हुइ चाहिये; याते सुखका ज्ञान सुषुप्तिमें होवे है. सुख विषयजन्य तौ सुषुप्तिमें है नहीं, किंतु आत्मस्वरूप ही है सो आत्मा स्वयंप्रकाश है. याते सुखस्वरूप आत्मा स्वयं प्रकाशरूपते सुषुप्तिमें भासै है, ओर निदिध्यासनका फल निर्विकल्पसमाधि अवस्थामें निरावरण कहिये अज्ञानकृत आवरणही आत्मा भासै है, और न अज्ञान कहिये कारणशरीर अज्ञान नहीं भासै, ऐसे तीनि देह व्यभिचारी हैं. एक अवस्थाकूं छोडिके दूसरी अवस्थामें भासै नहीं. आत्मा अनुगत है. सर्व अवस्थामें भासै है, याते व्यापक है. या विवेकते तीनि शरीरनते आत्माकूं न्यारो जान स्थूलशरीर तौ अन्नमयकोश है, और कारणशरीर आनंदमय कोश है. और सूक्ष्मशरीरमें प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, तीनि कोश हैं, याते तीनि शरीरनके विवेकते पंचकोशकाही विवेक होवे है, जैसे जीवका स्वरूप पंचकोशनते पृथक् है ,तैसे ईश्वरका स्वरूप भी समष्टिपंचकोशनते पृथक् है. और चतुर्थतरंगमें चतुर्विधआकाशके दृष्टांतसे जीव ईश्वरके लक्ष्यस्वरूपका विवेक विस्तारसे करि आये हैं और उत्तर तरंगमें अस्ति भाति प्रिय रूपके निरूपणमें, तथा महावाक्यनके अर्थनिरूपणमें आत्माका परमार्थ स्वरूप प्रतिपादन करैंगे. याते इहां संक्षेपतेही आत्मविवेक कहा है. इस रीतिसे,पंचकोशनते आत्माको न्यारा जाननेसे भी कृतकृत्य होवै नहीं किंतु जीवब्रह्मके अभेद निश्चयवास्ते फेरि भी विचार कर्त्तव्य रहै है, याते कर्त्तव्यका अभावरूप कृतकृत्यताकी सिद्धिवास्ते महावाक्य का अर्थ उपदेश करैं हैं—

सवैया।

पंचकोशते आतम न्यारो, जानि सु जानहु ब्रह्मस्वरूप।
ताते भिन्न जु दीखै सुनिये, सो मानहु मिथ्या भ्रमकूप॥
मिथ्या अधिष्ठान न बिगारे, स्वप्नभीख न दरिद्री भूप।
सब कछु कर्त्ता तऊ अकर्त्ता,तवअसअद्भुतरूपअनूप॥१८९॥

टीका—हे शिष्य! पंचकोशते, आत्माकूं न्यारा जानिके सु कहिये सो आत्मा ब्रह्मस्वरूप है, यह जानों याकेविषे, ऐसी (शंका) होवे हैः—

आत्मा पुण्य पाप करै है, ताते स्वर्ग नरक और मृत्युलोकमें नानाप्रकारके सुख दुःख भोगै है, ताकी ब्रह्मसे एकता बनै नहीं.

ताका (समाधानः—)

"ताते भिन्न जु दीखै" इत्यादि तीनिपादनते कहैं हैंः—ता ब्रह्मरूप आत्मासे भिन्न जो दीखै है, और सुनिये है शास्त्र॰, स्वर्ग, नरक, पुण्य, पाप, सो संपूर्ण मिथ्याभ्रम है; ऐसे मानो. और मिथ्यावस्तु अधिष्ठानकूं विगारै नहीं. जैसे स्वप्नकी मिथ्या भीख कहिये भिक्षा माँगनेते भूप दरिद्री नहीं होवै है. और मरुस्थलके मिथ्याजलते भूमि गीली होवे नहीं मिथ्यासर्पते रज्जु विषसहित होवे नहीं. याते सब कछु कर्त्ता कहिये संपूर्णमिथ्या शुभ अशुभ क्रियाका कर्त्ता है. तऊ कहिये तौ भी, अकर्त्ता कहिये परमार्थसे कर्त्ता ऐसा नहीं तव कहिये तेरा अद्भुत आश्चर्यरूप, अनूप कहिये उपमारहित है. याका भाव यह हैः—ब्रह्मसे अभिन्न तेरा स्वरू-

विषे स्थूलसूक्ष्मशरीर, और तिनकी शुभअशुभक्रिया और ताका फल जन्म, मरण, स्वर्ग, नरक, सुख दुःख, संपूर्ण अविद्यासें कल्पित है. ता कल्पितसामग्रीसे तेरा ब्रह्मभाव बिगरै नहीं. याते ज्ञानते प्रथम भी आत्मा ब्रह्मस्वरूपही है. ताके विषे तीनिकालमें शरीर और ताके धर्मनका संबंध नहीं. किंतु आत्मा सदाही नित्यमुक्त है. ताका ब्रह्मसे कभी भी भेद नहीं.

जो ऐसे कहैंः—आत्मा सदाही नित्यमुक्तब्रह्मस्वरूप होवे तौ श्रवणादिक ज्ञानके साधन निष्फल होवेंगे. ताका (समाधान)

इन्दव छन्द।

नाहिं खपुष्पसमान प्रपंच तु, ईश कहा करता जु कहावै।
साक्ष्य नहीं इम साक्षिस्वरूपन, दृश्यनहीं दृक काहि जनावै॥
बंधहु होय तु मोक्ष बनैं अरु, होय अज्ञान तु ज्ञान नशावै।
जानियहीकरतव्यतजैसब, निश्चलहोतहिनिश्चलपावै १६०॥

टीका—जीवन्मुक्तविद्वान्‌की दृष्टिमें अज्ञान और ताका कार्य तुच्छ है. सो जीवन्मुक्तका निश्चय बतावैं हैंः—हे शिष्य! यह प्रंपच खपुष्पसमान कहिये आकाशके फूलकी न्याईं है, याते ताका कर्त्ता ईश्वरभी नहीं है साक्षीका विषय अज्ञानादिक साक्ष्य कहिये है, सो साक्ष्य नहीं, याते साक्षी भी नहीं. तैसे दृश्यका प्रकाशक दृक् कहिये है. और प्रकाशने योग्य देहादिक दृश्य कहियें हैं सो देहादिक दृश्य हैं नहीं; याते दृक् भी नहीं. यद्यपि केवल कूटस्थ चैतन्यकूं साक्षी और दृक् कहैं हैं; ताका निषेध बनै नहीं; तथापि

साक्ष्यकी अपेक्षाते साक्षी नाम, और दृश्यकी अपेक्षाते दृक् नाम है. साक्ष्य और दृश्यका अभाव है. याते साक्षी और दृक् नामका निषेध करैं हैं; स्वरूपका नहीं. और बंध होवै तौ बंधकी निवृत्तिरूप मोक्ष होवै, बंध नहीं याते मोक्ष भी नहीं. और अज्ञान होवै तौ ताका ज्ञानसे नाश होवे, अज्ञान है नहीं, याते ताका नाशक ज्ञान भी नहीं. यह जानिके कर्तव्य तजै कहिये "मेरेकूं यह करनेयोग्य है" या बुद्धिकूं त्यागै. काहेते, यह लोक तथा परलोक तौ तुच्छहै, तिनके निमित्त कछु कर्तव्य नहीं. आत्मामें बंध नहीं, याते मोक्षके निमित्तभी कर्तव्य नहीं. या रीतिसे आत्माकूं नित्यमुक्तब्रह्मरूप जानिके जब निश्चल होवै, सब कर्तव्य त्यागे तब निश्चल कहिये अक्रियब्रह्मस्वरूप विदेह मोक्षकूं प्राप्त होवै. याका अभिप्राय यह है—

यद्यपि आत्मा, ज्ञानसे प्रथम भी नित्यमुक्तब्रह्मस्वरूपही है, परंतु ज्ञानसे पूर्व आत्माकूं कर्त्ता भोक्ता मिथ्या मानिके सुखप्राप्ति और, दुःखकी निवृत्तिवास्ते अनेक साधन करैं हैं. तासे क्लेशकूं ही प्राप्त होवैं हैं. जब उत्तम आचार्य मिलैं तौ वेदांतवाक्यनका उपदेश करैं हैं. तिन वेदांतवाक्यनके श्रवण ते ऐसा ज्ञान होवै है—"मैं कर्त्ता भोक्ता नहीं, किंतु मैं ब्रह्मस्वरूप हूं, याते मेरेको किंचित भी कर्त्तव्य नहीं "ऐसा जाननाही श्रवणादिकनका फल है और ब्रह्मकी प्राप्ति वेदांत श्रवणका फल नहीं; काहेते, ब्रह्म अपना स्वरूप है याते नित्यप्राप्त है.

दोहा।

यही चिह्न अज्ञानको, जो मानै कर्त्तव्य॥
सोई ज्ञानी सुघर नर, नहिं जाकूं भवितव्य ॥ १६१ ॥

टीका—जो कर्त्तव्य माने सो अज्ञानका चिह्न है, और जाकूं भवितव्य नहीं कहिये अन्यरूप हुआ नहीं चाहै है सो नर ज्ञानी कहिये है.

इंदव–छंद ।

एक अखंडित ब्रह्म असंग, अजन्य अदृश्य अरूप अनामैं ।
मूल अज्ञान न सूक्ष्म स्थूल, समष्टि न व्यष्टिपनो नहिं तामैं॥
ईश न सूत्र विराट न प्राज्ञ, न तैजस विश्वस्वरूप न जामैं ।
भोग न योग न बंध न मोक्ष,नहीं कछु वामैं रु है सब वामैं १६२
जाग्रतमैं जु प्रपंच प्रभासत, सो सब बुद्धिविलास वन्यो है ।
ज्यों सुपनेमहिं भोग्य न भोग, तऊंइकचित्रविचित्रजन्योहै॥
लीन सुषूपतिमैं मति होतहि, भेद भगै इकरूप सुन्यो है ।
बुद्धिरच्योजुमनोरथमात्र सु,निश्चलबुद्धिप्रकाशबन्योहै १६३

सवैया–छंद ।

जाके हिये ज्ञानउजियारो, तम अँधियारो खरा विनाश ।
सदा असंग एकरस आतम, ब्रह्मरूप सो स्वयंप्रकाश ॥
ना कछु भयो न है नहिं ह्वै है, जगत मनोरथ मात्र विलास ।
ताकी प्राप्ति निवृत्ति न चाहत, ज्योंज्ञानीके कोउनआस १६४
देखै सुनै न सुनै न देखै, सब रस ग्रहे रु लेत न स्वाद ।
सूंघि पराशि परशै न न सूंघै, बैन न बोलै करै विवाद ॥
ग्रहि न ग्रहै मल तजै न त्यागै, चलै नहीं अरु धावत पाद।
भोगै युवति सदा संन्यासी,शिषलखियहअद्भुतसंवाद १६५॥

याका अभिप्राय कहैं हैंः—

सवैया-छन्द।

निज विषयनमें इंद्रिय बर्तैं,तिनते मेरो नाहीं संग।
मैं इंद्रिय नहिं मम इंद्रिय नहिं, मैं साक्षी कूटस्थ असंग॥
त्यागहु विषय कि भोगहु इंद्रिय, मोकूं लगै न रंकच रङ्ग।
यह निश्चय ज्ञानीको जाते, कर्त्ता दीखै करे न अङ्ग१६६॥

हे अंग ! प्रिय अन्य अर्थ स्पष्ट ॥ १६६ ॥

इसरीतिसे आचार्यने शिष्यकूं गोप्यतत्त्वका उपदेश किया तौ भी शिष्यका मुख अत्यंत प्रसन्न नहीं देखिके यह जान्या, शिष्य कृतार्थ नहीं हुवा जो कृतार्थ होता, तौ याका मुख प्रसन्न होता याते फेरि स्थूलरीतिसे उपदेश करनेकूं, लय चिंतन कहैं हैंः—

सवैया-छन्द।

माटीको कारज घट जैसे, माटी ताके बाहरि माहिं।
जलते फैन तरंग बुदबुदा, उपजत जलते जुदे सु नाहिं॥
ऐसे जो जाको है कारज, कारणरूप पिछानहु ताहि।
कारणईशसकलको"सो मैं",लयचिंतनजानहुविधयाहि१६७

टीका—जैसे माटीके कार्यके बाहिर भीतारि माटी है; याते माटीका सर्व कार्य माटीस्वरूपही है. फेनआदिक जलके कार्य जलस्वरूप हैं. ऐसे जो जाका कार्य है, सो ता कारण स्वरूपसे भिन्न नहीं; किंतु कार्य कारणही स्वरूप है. और सकलप्रपंचका

मूलकारण ईश्वर है. याते सर्वकार्य प्रपंच ईश्वरस्वरूपसे भिन्न नहीं. किंतु सर्वप्रपंचका स्वरूप ईश्वरही है; " सो ईश्वर मैं हूँ" या रीतिसे लय चिंतन जानिके तू कर.

लय चिंतनका संक्षेपते यह क्रम है:—स्थूलब्रह्मांडसारा पंचीकृत भूतनका कार्य है, तहां जो पृथ्वीका कार्य सो पृथ्वीस्वरूप, और जलका कार्य जलस्वरूप, या रीतिसे जा भूतनका जो कार्य सो ताकाही स्वरूप है. इसरीतिसे सारा स्थूल ब्रह्मांड पंचीकृतस्वरूप है. तैसे पंचीकृत भी अपंचीकृतभूत: के कार्य हैं याते अपंचीकृत स्वरूपही पंचीकृतभूत हैं भिन्न नहीं. और अंतःकरण आदिक सूक्ष्मसृष्टि भी अपंचीकृतभूतनका कार्य होनेते अपंचीकृत भूतस्वरूप हैं तामें अंतःकरण, सारे भूतनके सत्त्वगुणके कार्य हैं. याते सत्त्वगुण स्वरूप हैं, और भूतनके रजोगुण अंशके कार्य प्राण रजोगुण स्वरूप हैं,गुदाइंद्रिय पृथ्वीके रजोगुणअंशका कार्य सो पृथिवीका रजोगुणस्वरूप,. घ्राण इंद्रिय पृथ्वीके सत्त्वगुणका कार्य सो सत्त्वगुणस्वरूप; ऐसे रसना और उपस्थ जलके सत्त्वगुण रजोगुण स्वरूप नेत्र और पादके तेजके सत्त्वगुण रजोगुण स्वरूप, त्वक् और;पाणि वायुके सत्त्वगुण रजोगुण स्वरूप, श्रोत्र और वाक् आकाशके सत्त्व गुणरजोगुणस्वरूप;यारीतिसे सारी सूक्ष्मसृष्टि अपंचीकृतभूतस्वरूप है.

यह चिंतनकरि के अपंचीकृतभूतनका भी लय चिंतनकरै. पृथ्वी जलका कार्य है. याते जलस्वरूप है. तेजका कार्य जल, तेजस्वरूप है तेज वायुका कार्य होनेते वायुस्वरूप है. आकाशका कार्य वायु आकाशस्वरूप है.तमोगुण प्रधान प्रकृतिका कार्य आकाश प्रकृतिस्वरूप है.

और मायाकी अवस्थाविषेही प्रकृति है; याते प्रकृति माया स्वरूप है. एकवस्तुके प्रधान, प्रकृति, माया, अविद्या, अज्ञान, ये नाम हैं. सर्वकार्यकूं अपनेमें लीन करिके प्रलयमें स्थित उदासीन स्वरूपकूं प्रधान कहैं हैं. और सृष्टिके उपादान योग्य तमोगुण प्रधान स्वरूपकूं प्रकृति कहैं हैं. जैसे देशकालादिक सामग्रीबिना दुर्घटपदार्थकी इंद्रजालसे उत्पत्ति होवै है; तहां इंद्रजालकूं माया कहैं हैं. तैसे असंग अद्वितीय ब्रह्ममें इच्छादिक दुर्घट हैं, तिनकूं करै है. याते माया कहैं हैं स्वरूपकूं अच्छादन करै है, याते अज्ञान कहैं. ब्रह्मविद्याते नाश होवै है, याते अविद्या कहैं हैं. और स्वतंत्र कभी भी रहै नहीं; किंतु चेतनके आश्रितही है, याते शक्तिभी कहैं हैं इसरीतिसे प्रकृति आदिक प्रधानकेही भेद हैं, याते प्रधानरूप हैं, सो प्रधान ब्रह्मचेतनकी शक्ति है. जैसे पुरुषमें सामर्थ्यरूप शक्ति पुरुषसे भिन्न नहीं, तैसे चेतनमें प्रधानरूप शक्ति ब्रह्मचेतनसे भिन्न नहीं. या प्रकारते सर्व अनात्म पदार्थनका ब्रह्मविषे लय चिंतन करिके " सो अद्वयब्रह्म मैं हूं " यह चिंतन करै.

जाकूं महावाक्यविचार कियेते भी बुद्धिकी मंदतादिक किसी प्रतिबंधकते अपरोक्षज्ञान होवै नहीं; ताकूं यह लय चिंतनरूप ध्यान कह्या है, ध्यान और ज्ञानका इतना भेद हैः—ज्ञान तौ प्रमाण और प्रमेयके अधीन है, विधि और पुरुषकी इच्छाके अधीन नहीं; और ध्यान, विधिके तथा पुरुषकी इच्छा और विश्वास तथा हठके अधीन है. जैसे प्रत्यक्षज्ञानमें प्रमाण नेत्र और प्रमेय-घटादिक, तहां नेत्रका और घटका संबंध हुयेते पुरुषकी इच्छा

बिना भी घटका प्रत्यक्ष ज्ञान होवै है. भाद्रपदशुद्धचतुर्थीके दिन चंद्रदर्शनका निषेध है, विधि नहीं, और पुरुषकूं यह इच्छा होवे है:—"मेरेकूं आज चंद्रदर्शन नहीं होवे," तौभी किसीरीतिसे नेत्रप्रमाणका जो प्रमेयचंद्रसे संबंध होय जावे, तौ चंद्रका प्रत्यक्षज्ञान अवश्यही होवे है. इसरीतिसे प्रमाण प्रमेयके अधीन ज्ञान है, विधि और इच्छाके अधीन नहीं. और शालग्राम विष्णुरूप है, यह ध्यान करै, ताकूं उत्तमफल प्राप्त होवे है. तहां शास्त्रप्रमाणसे विष्णुकूं तौ चतुर्भुजमूर्ति, शंख, चक्र, गदा, पद्म, लक्ष्मीसहित जानै है. और नेत्रप्रमाणते शालग्रामकूं शिला जानै है. तथा विधिविश्वासइच्छाते "शालग्राम विष्णु है;" यह ध्यान होवै है, परंतु सो ध्यान नानाप्रकारका है. कहूं तो अन्यवस्तुका अन्यरूपसे ध्यान, जैसे शालग्रामका विष्णुरूपसे ध्यान याकूं प्रतीकध्यान कहैं हैं. और. वैकुंठलोकवासी विष्णु का शंखचक्रादिक सहित चतुर्भुजमूर्तिरूपसे ध्यान है, तहां अन्यका अन्यरूपसे ध्यान नहीं; किंतु ध्येयरूपके अनुसार यह ध्यान है. वैकुंठवासी विष्णुका स्वरूप प्रत्यक्ष तौ है नहीं; केवल शास्त्रते जानियें है. और शास्त्रने शंखचक्रादिकसहित विष्णुका स्वरूप कह्या है. याते ध्येयस्वरूपके अनुसारही यह ध्यान है, विधि विश्वास इच्छा विना ध्यान होवे नहीं. "यह उपासना करै" ऐसा पुरुषका प्रेरकवचन विधि कहिये है. ता वचनमें श्रद्धाकूं विश्वास कहैं हैं, और अंतःकरणकी कामनारूप रजोगुणकी वृत्ति इच्छा कहिये है. ध्यानके हेतु यह तीनिहैं;

ज्ञानके नहीं और ध्यान हठसे होवैह. ज्ञानमें हठकी अपेक्षा नहीं. काहेते, निरंतर ध्येयाकार चित्तकी वृत्तिकूं ध्यान कहैं हैं. तहां वृत्तिमें विक्षेप होवै तो हठसे वृत्तिकी स्थिति करै. और ज्ञानरूप अंतःकरणकी तत्काल आवरणभंग हुयेते वृत्तिकी स्थितिका उपयोग नहीं; याते हठकी अपेक्षा नहीं. वैकुण्ठवासी चतुर्भुज विष्णुके ध्यानकी न्याई " मैं ब्रह्म हूँ " यह ध्यान भी ध्येयके अनुसार है; प्रतीक नहीं. परंतु यह अहंग्रह ध्यान है ध्येयस्वरूपका अपनेसे अभेद करिके चिंतन, अहंग्रहध्यान कहिये है. जा पुरुषकूं अपरोक्षज्ञान नहीं होवै, और वेदकी आज्ञारूप विधिमें विश्वासकरिके हठते निरंतर " मैं ब्रह्म हूं " या वृत्तिकी स्थितिरूप अहंग्रहध्यान करै. ताकूं भी ज्ञानप्राप्त होयके मोक्षकी प्राप्ति होवै है ॥ १६७ ॥

और रीतिसे अहंग्रहउपासना कहैं हैं:—

सवैया-छंद।

ध्यान अहंग्रह प्रणवरूपको, कह्यो सुरेश्वर श्रुति अनुसार।
अक्षर प्रणव ब्रह्म मम रूपसु, यों अनुलव निजमतिगतिधार॥
ध्यानसमान आन नहिं याके, पंचीकरणप्रकार विचार।
जो यह करत उपासन सो मुनि, तुरित नशै संसार अपार १६८

टीका—हे शिष्य! प्रणवरूप कहिये ओंकारस्वरूपका अहंग्रहध्यान मांडूक्यप्रश्नआदिक श्रुतिके अनुसार सुरेश्वराचार्यने कह्या है; सो तूं कर. ताका संक्षेपते प्रकार यह है—प्रणवअक्षर ब्रह्मस्वरूप है. " सो प्रणवरूप ब्रह्म मैं हूं " या रीतिसे अनुलव कहिये क्षणमात्र

अंतरायरहित निजमतिकी गति कहिये वृत्ति धार, स्थित कर. याके समान आन ध्यान नहीं है. और या ध्यानका प्रकार कहिये विशेषरीति सुरेश्वरकृतपंचीकरण नाम ग्रंथसे विचार चतुर्थपाद स्पष्ट यद्यपि प्रणवउपासना बहुतउपनिषदनमें है; तथापि मांडूक्य उपनिदमें विशेष है. ताके व्याख्यानमें भाष्यकार और आनंदगिरिने ताकी रीति स्पष्ट लिखी है. सोई रीति वार्तिककारने पंचीकरणमें लिखी है तथापि तिन ग्रंथनके विचारनमें जिनकी बुद्धि समर्थ नहीं है तिनके अर्थ प्रणवउपासनाकी रीति हम लिखैं हैं—दोप्रकारसे प्रणवका चिंतन उपनिषदनमें कह्या है. एक तौ परब्रह्मरूपते प्रणव का चिंतन कह्या; और दूसरा अपरब्रह्मरूपते कह्या है निर्गुणब्रह्मकूं परब्रह्म कहैं हैं. सगुणब्रह्मको अपरब्रह्म कहैं हैं परब्रह्मरूपते प्रणवका चिंतन करै सो मोक्षकूं प्राप्त होवै है. और अपरब्रह्मरूपते प्रणवका चिंतन करै, सो ब्रह्मलोककूं प्राप्त होवै है. ऐसे निर्गुणसगुणभेदते प्रणव उपासना दो प्रकारकी है, तामें.

निर्गुण उपासनाकी रीति लिखैं हैं, सगुणकी नहीं. काहेते जाकूं ब्रह्मलोककी कामना होवै, ताकूं निर्गुणउपासना ते भी कामनारूपप्रतिबंधकते ज्ञानद्वारा तत्काल मोक्ष होवै नहीं. किंतु ब्रह्मलोककी प्राप्ति होवै है. तहां हिरण्यगर्भके समान भोगनकूं भोगिके ज्ञान होवै, तब मोक्ष होवै. और जाकूं ब्रह्मलोककी कामना नहीं होवै, ताकूं इसलोकमेंही ज्ञानहोयके मोक्ष होवै है. इसरीतिसे सगुणउपासनाका फल भी निर्गुणउपासनाके अंतर्भूत है. याते निर्गुणउपासनाका प्रकार

कहैं हैं—जो कछु कारणकार्यवस्तु है, सो आंकारस्वरूप है. याते सर्वरूप ओंकार है. सर्वपदार्थनमें नाम और रूप दो भाग हैं तहां रूपभाग अपने अपने नामभागसे न्यारा नहीं. किंतु नामस्वरूपही रूपभाग है. काहेते, पदार्थका रूप कहिये आकार. ताका नामसे निरूपणकरिके ग्रहण वा त्याग होवै है, नाम जाने विना केवल आकारते व्यवहार सिद्ध होवै नहीं; याते नामही सार है और आकारके नाश हुयेते भी नाम शेष रहै है. जैसे घटका .नाश हुयेते मृत्तिका शेष रहै है. तहां घट मृत्तिकासे पृथक् वस्तु नहीं; मृत्तिका स्वरूप है तैसे आकारका नाश हुयेते मृत्तिकाकी न्याईं शेष रहे जो नाम, तासे आकार पृथक् नहीं, नामस्वरूप ही आकार है. किंवा जैसे घटशरावादिकनमें मृत्तिका अनुगतहै,और घट शरावादिक परस्परव्यभिचारी हैं याते घटशरावादिक मिथ्या तिनमें अनुगत मृत्तिका सत्य है. तैसे घट आकार अनेक हैं, तिन सबका "घट"यह दो अक्षर नाम एक हैं सो आकार परस्परव्यभिचारी और सर्वघटके आकारमें नाम एक अनुगत है; याते मिथ्याआकार सत्यनामते पृथक् नहीं इसरीतिसे सर्वपदार्थनके आकार अपने अपने नामसे भिन्न नहीं, किंतु नामस्वरूही आकार हैं सो सारे नाम ओंकारसे भिन्न नहीं किंतु ओंकारस्वरूपही नाम हैं. काहेते वाचकशब्दकूं नाम कहैं हैं. और लोकवेदके सारे शब्द ओंकारसे उत्पन्न हुये हैं, यह श्रुतिमें प्रसिद्ध है संपूर्ण कार्य कारणरूप होवैं हैं; याते ओंकारके कार्य जो वाचक शब्द रूप नाम, सो ओंका-

रस्वरूप हैं. इसरीतिसे रूपभाग जो पदार्थनका आकार सो तौ नामस्वरूपहै.और सर्वनामओंकारस्वरूप हैं. याते सर्वस्वरूप ओंकारहै।

जैसे सर्वस्वरूप ओंकार है, तैसे सर्वस्वरूप ब्रह्म है; याते ओंकार ब्रह्मरूप है. किंवा ओंकार ब्रह्मका वाचक है, ब्रह्म वाच्य है. वाच्यका और वाचकका अभेद होवै है, याते भी ओंकार ब्रह्मरूप है. और विचारदृष्टिते जो अक्षर ब्रह्मविषे अध्यस्त है, ब्रह्म तिसका अधिष्ठान है. अध्यस्तका स्वरूप अधिष्ठानते न्यारा होवै नहीं. याते भी ओंकार ब्रह्मस्वरूप है. याते ओंकारकूं ब्रह्मरूपकरिके चिंतन करै.

ब्रह्मरूप ओंकारका आत्मासे भी अभेद चिंतन करै काहेते, आत्माका ब्रह्मसे मुख्य अभेद है. और ब्रह्मके चारिपाद हैं तैसे आत्माके भी चारिपाद हैं. पाद नाम भागका है, ताहीकूं अंश भी कहैं हैं. विराट्, हिरण्यगर्भ, ईश्वर और तत्पदका लक्ष्य ईश्वरसाक्षी ये चारि पाद ब्रह्मके हैं. विश्व, तैजस, प्राज्ञ, और त्वंपदका लक्ष्य जीवसाक्षी; ये चारिपाद आत्माके हैं जीवसाक्षीकूंही तुरीय कहैंहैं.

समष्टिस्थूलप्रपंचसहित चेतन विराट् कहिये है. व्यष्टि स्थूल अभिमानी विश्व कहिये है विराट्की और विश्वकी उपाधि स्थूल है; याते विराट्रूपही विश्व है; विराट्ते न्यारा नहीं. विराट्रूप विश्वके सात अंग हैं. स्वर्गलोक मूर्धा है; सूर्य नेत्र हैं; वायु प्राण, आकाश धड़ है; समुद्रादिरूप जल मूत्रस्थान, पृथिवी पाद है;

जा अग्निमें होम करिये सो अग्नि मुख है. ये सात अंग विश्वके कहे हैं मांडूक्यमें यद्यपि स्वर्गलोकादिक विश्वके अंग बनै नहीं; तथापि विराट्के अंग हैं. ता विराट्से विश्वका अभेद है. याते विश्वके अंग कहैं हैं.

तैसे विराट्विश्वके उन्नीस मुख हैंः—पंच प्राण पंच कर्मइंद्रिय पंच ज्ञानइंद्रिय, चारि अंतःकरण; ये उन्नीस मुखकी न्याईं भोगके साधन हैं; याते मुख कहियें हैं. इन उन्नीसते स्थूल शब्दादिकनको बाह्यवृत्ति करिके जाग्रत्अवस्थाविषे भोगै है, याते विराट्रूप विश्व, स्थूलका भोक्ता और बाह्यवृत्ति कहियेहै, और जाग्रत्अवस्थावाला कहिये है.

प्राणादिक उन्नीस जो भोगके साधन हैं, तिनविषे श्रोत्रादिक इंद्रिय, और अंतःकरण चारि, ये चतुर्दश अपने अपने विषय, और अपने अपने देवताकी सहाय चाहैं हैं. देवता विषयकी सहाय विना केवल इनते भोग होवैं नहीं. याते पंच प्राण और चतुर्दश त्रिपुटी विराट्रूप विश्वके मुख कहियें हैं. तिनके समुदायका नाम त्रिपुटी है.

सो त्रिपुटी इसरीतिसे कही हैः—श्रोत्रइंद्रिय अध्यात्म है और ताका विषय शब्द अधिभूत है, दिशाका अभिमानी देवता अधिदैव है. या प्रकरणमें क्रियाशक्तिवाले और ज्ञानशक्तिवाले और इंद्रिय और अंतःकरण अध्यात्म कहिये है, तिनके विषय अधिभूत कहिये है, और तिनके सहायक देवता अधिदैव कहिये है. त्वचा इंद्रिय अध्यात्म है, ताका विषय स्पर्श अधिभूत है, वायुतत्त्वका

अभिमानी देवता अधिदेव है. नेत्रइंद्रिय अध्यात्म है रूप, अधिभूत है, सूर्य अधिदेव है, रसना इंद्रिय अध्यात्म है, रस अधिभूत है वरुण अधिदेव है. घ्राणइंद्रिय अध्यात्म है, गंध अधिभूत है, अश्विनीकुमार अधिदेव हैं, और वार्तिककार सुरेश्वराचार्यने पृथिवीका अभिमानी देवता ज्ञानका अधिदेव कह्या है, सो भी बनै है; काहेते, पृथिवी से घ्राणकी उत्पत्ति है, याते पृथिवी अधिदेव कह्या है. और सूर्यकी बडवाकी नासिकाते अश्विनीकुमारकी उत्पत्ति कही है. याते नासिकाका अधिदेव कूं अश्विनीकुमारही कहैं हैं. वाक् इंद्रिय अध्यात्म है, वक्तव्य अधिभूत है, अग्निदेवता अधिदेव है. हस्तइंद्रिय अध्यात्म हैं. पदार्थका ग्रहण अधिभूत है इंद्रअधिदेव है. पादइंद्रिय अध्यात्म, गमन अधिभूत, विष्णु अधिदेव है. गुदाइंद्रिय अध्यात्म, मलका त्याग अधिभूत, यम अधिदेव है. उपस्थ इंद्रिय अध्यात्म, ग्राम्यधर्मके सुखकी उत्पत्ति अधिभूत है, प्रजापति अधिदेव है. मन अध्यात्म है, मननका विषय अधिभूत है, चंद्रमा अधिदेव है. बुद्धि अध्यात्म है, बोद्धव्य अधिभूत है. बृहस्पति अधिदेव है, ज्ञानका विषय बोद्धव्य कहिये है. अहंकार अध्यात्म है, अहंकारका विषय अधिभूत है. रुद्र अधिदेव है. चित्त अध्यात्म है, चिंतनका विषय अधिभूत है, क्षेत्रज्ञ जो साक्षी सो अधिदेव है. ये चतुर्दशत्रिपुटी और पंचप्राण ये उन्नीस विराट्रूप विश्वके मुख हैं जैसे विराटते विश्वका अभेद है तैसे ओंकारकी प्रथममात्रा जो आकार, ताका भी विराट्रूप विश्वते अभेद है. काहेते, ब्रह्मके

चारिपादनमें प्रथमपाद विराट् है; और आत्माके चारिपादनमें प्रथम विश्व है; तैसे ओंकारकी चारिमात्रारूप पादनमें प्रथमपाद अकार है. याते प्रथमता तीनोंमें समानधर्म होनेते विश्वविराट्आकारका अभेदचिंतन करै.जो सात अंग उन्नीस मुख विश्वके कहे,सोई; सात अंग और उन्नीसमुख तैजसके भी जाननेकूं योग्य हैं. परंतु इतना भेद हैः—विश्वके जो अंग और मुख हैं; सो तौ ईश्वररचित हैं, और तैजसके जो इंद्रिय देवता विषयरूप त्रिपुटी और मूर्धादिक अंग सो मनोमय हैं. तैजसका भोग सूक्ष्म है. यद्यपि भोग नाम सुख अथवा दुःखके ज्ञानका है, ताके विषे स्थूलता और सूक्ष्मता कहना बनै नहीं; तथापि बाह्य जो शब्दादिक विषय हैं, तिनके संबंधते जो सुख अथवा दुःखका साक्षात्कार, सो स्थूल कहिये है. और मानस जो शब्दादिक तिनके संबंधते जो भोग होवे, सो सूक्ष्म कहिये है. इसी कारणते विश्व तो स्थूलका भोक्ता श्रुतिविषे कह्या है. और तैजस सूक्ष्मका भोक्ता कह्या है. काहेते तैजसके भोग्य जो शब्दादिक हैं, सो तौ मानस हैं; याते सूक्ष्म हैं. और तिनकी अपेक्षा करिके विश्वके भोग्य बाह्यशब्दादिक हैं सो स्थूल हैं. और विश्व बहिरप्रज्ञ है, तैजस अंतरप्रज्ञ है. काहेते, जो विश्वकी अंतःकरणकी वृत्तिरूप प्रज्ञाहै, सो बाहरि जावै है, और तैजसकी नहीं जावै है. जैसे विश्वका और विराट्का अभेद है, तैसे तैजसकूं भी हिरण्यगर्भरूप जाने. काहेते, सूक्ष्मउपाधि तैजसकी है, और सूक्ष्महीं हिरण्यगर्भकी है. याते दोनोंकी एकता जाने तैजस हिरण्यगर्भकी एकता जानिके ओंकारकी द्वितीयमात्रा उकारसे

तिनका अभेदचिंतन करै. काहेते, आत्माके चारिपादनमें द्वितीयपाद तैजस है. ब्रह्मके पादनमें हिरण्यगर्भ दूसरापाद है. ओंकारकी मात्रामें द्वितीयमात्रा उकार है. द्वितीयता तीनोंमें समानधर्म है; याते तीनोंकी एकता चिंतन करै.

और प्राज्ञकूं ईश्वररूप जाने. काहेते, प्राज्ञकी कारणउपाधि है; और ईश्वरकीभी कारण उपाधि है. ईश्वर और प्राज्ञ,पादनमें तृतीय हैं. ओंकारकी तृतीयमात्रा मकार है तीसरापना तीनोंमें समानधर्म है. याते तीनोंकी एकता जाने और यह प्राज्ञ प्रज्ञानघन है. काहेते, जाग्रत् और स्वप्नके जितने ज्ञान हैं, सो सुषुप्तिविषे घन कहिये एक अविद्यारूप होय जावैं हैं, याते प्रज्ञानघन कहिये है और आनंदभुक् भी यह प्राज्ञ श्रुतिने कहा है. काहेते अविद्यासे आवृत जो आनंद है, ताकूं यह प्राज्ञ भोगै है. याते आनंदभुक् कहिये है.

जैसे तैजस और विश्वका भोग त्रिपुटीसे होवै है; तैसे प्राज्ञके भोगकी भी त्रिपुटी कहिये है:—चेतनके प्रतिबिंब सहित जो अविद्याकी वृत्ति है, सो अध्यात्म है, अज्ञानसे आवृत जो स्वरूप आनंद, सो अधिभूत है और ईश्वर अधिदैव है. इसरीतिसे विश्व तो बहिरप्रज्ञ है, और तैजस अंतरप्रज्ञ है; और प्राज्ञ प्रज्ञानघन है.

ऐसा जो तीनोंका भेद है. सो उपाधि करिके है. विश्वकी स्थूल सूक्ष्म अज्ञान तीनि उपाधि हैं.और तैजसकी सूक्ष्म अज्ञान दो उपाधि हैं. और प्राज्ञकी एक अज्ञान उपाधि है. इसरीतिसे उपाधिकी न्यूनता अधिकतासे तीनोंका भेद है.परमार्थकरिके स्वरूपसे भेद नहीं.

विश्व, तैजस, प्राज्ञ, इन तीनों विषे अनुगत जो चेतन है. सो परमार्थसे तीनों उपाधिके संबंधसे रहित है. तीनों उपाधिकां अधिष्ठान तुरीय है, सो बहिरप्रज्ञ नहीं; और अंतरप्रज्ञ नहीं, और प्रज्ञानघन भी नहीं, कर्म इंद्रियका और ज्ञान इंद्रियका विषय नहीं, और बुद्धिका विषय नहीं. किसी शब्दका विषय नहीं ऐसा जो तुरीय है; ताकूं परमात्माका चतुर्थपाद ईश्वर साक्षी शुद्ध ब्रह्मरूप जानें.

इसरीतिसे दो प्रकारका आत्माका स्वरूप कह्या एक तो परमार्थ रूप है, और एक अपरमार्थ रूप है, तीनि पाद तो अपरमार्थरूप हैं, और एक पाद तुरीय परमार्थ रूप है. जैसे आत्माके दो स्वरूप हैं, तैसे ओंकारकेभी दो स्वरूप हैं. अकार उकार मकार, ये तीनि मात्रारूप जो वर्ण है, सो तौ अपरमार्थ रूप है, और तीनोंमात्राविषे व्यापक जो अस्ति भाति प्रियरूप अधिष्टान चेतन है, सो परमार्थरूप है. जो ओंकारका परमार्थरूप है. ताको श्रुति विषे अमात्रशब्दकारिके कहा है काहेते ता परमार्थस्वरूप विषे मात्रा विभाग है नहीं, यातें अमात्र कहिये है. इसरीतिसे दो स्वरूपवाला जो ओंकार है, ताका दो स्वरूपवाले आत्मासे अभेद जानै.

व्यष्टि और समष्टि जो स्थूलप्रपंच तासहित विश्व और विराट् का अकारसे अभेद जाने. आत्माके जो पाद हैं तिनविषे विश्व आदि है, और ओंकारकी मात्रा विषे अकार आदि है, यातें दोनों एक जाने. सूक्ष्मप्रपंचसहित जो हिरण्यगर्भरूप तैजस

है ताकूं उकार रूप जाने तैजस भी दूसरा है, और उकार भी दूसरा है याते दोनों एक जाने. कारण उपाधिसहित जो ईश्वररूप प्राज्ञ है, ताकूं मकाररूप जाने जैसे ईश्वररूप प्राज्ञ तीसरा है, तैसे मकारभी तीसरा है, और उकार ईश्वररूप प्राज्ञ और मकारकूं एक जाने तीनों विषे अनुगत जो परमार्थरूप तुरीय है; ताकूं ओंकार वर्णकी तीनि मात्राविषे अनुगत जो ओंकारका परमार्थरूप अमात्र है, तासे अभिन्न जाने जैसे विश्वादिक विषे तुरीय अनुगत है, तैसे अकारादिक तीनि मात्राविषे अमात्र अनुगत है. याते ओंकारके अमात्ररूपकूं और तुरीयकूं एक जानै. इसरीतिसे आत्माके पाद और ओंकारकी जो मात्रा है, तिनकी एकता जानिके लयचिंतन करै

सो लयचिंतन कहिये है—विश्वरूप जो जो अकार है; सो तैजसरूप उकारसे न्यारा नहीं; किंतु उकाररूप है, ऐसा जो चिंतन करना, सो या स्थानमें लय कहिये है ऐसाही और मात्राविषे भी जानि लेना. और जा उकारविषे अकारका लय किया है, ता तैजसस्वरूप उकारका प्राज्ञरूप जो मकार है ताकेविषे लय करै. और प्राज्ञरूप जो मकार है ताकूं तुरीयरूप जो ओंकारका परमार्थरूप अमात्र है, ताकेविषे लीन करे काहेते, स्थूलकी उत्पत्ति और लय सूक्ष्मविषे होवै है. याते विश्वरूप जो अकार है, ताका तैजसस्वरूप उकारसे लय बनै है. और सूक्ष्मकी उत्पत्ति और लय सूक्ष्म विषे होवै है. याते विश्वरूप जो अकार है, ताका तैजसरूप उकारमें लय बनै है. और सूक्ष्मकी उत्पत्ति और लय कारणमें होवै है. याते तैजसस्वरूप जो उकार है. ताका कारण प्राज्ञरूप जो मकार है;

ताकेविषे लय बनै है. या स्थानविषे विश्वआदिकनके ग्रहणते समष्टि जो विराट्आदिक हैं, तिनका;और अपनी अपनी जो त्रिपुटी हैं, तिन सर्वका ग्रहण जानना. जा प्राज्ञरूप मकार विषे उकार लय किया है ता मकारको तुरीयरूप जो ओंकारका परमार्थरूप अमात्र है ताकेविषे लीन करे. काहेते, ओंकारके परमार्थरूपका तुरीयसे अभेद है. सो तुरीय ब्रह्मरूप है. और शुद्धविषे ईश्वर प्राज्ञ दोनों कल्पित हैं. जो जाके विषे कल्पित होवै है, सो ताका स्वरूप होवैहै, याते ईश्वरसहित प्राज्ञरूप मकारका लय बनै है. इसरीतिसे जो ओंकारके परमार्थस्वरूप अमात्रविषे सर्वका लय किया है; "सो मैं हूं" ऐसा एकाग्रचित्त होयकै चिंतन करै. स्थावर जंगमरूप; और असंग, अद्वय, असंसारी, नित्यमुक्त, निर्भय, ब्रह्मरूप जो ओंकारका परमार्थस्वरूप," सो मैं हूं " ऐसा चिंतन करनेसे ज्ञान उदय होवै है. याते ज्ञानद्वारा मुक्तिरूप फलका देनेवाला यह ओंकारका निर्गुणउपासन है. सो सर्वसे उत्तम है.

जो पूर्वरीतिसे ओंकारके स्वरूपकूं जानै है, सो मुनि है. जो नहीं जानै है, सो मुनि नहीं. काहेते मुनि नाम मनन करनेवालेका है. यह ओंकारका चिंतन मननरूप है. जाके ओंकारका चिंतनरूप मनन नहीं, सो मुनि नहीं यह मांडूक्यउपनिषदकी रीतिसे संक्षेपते ओंकारका चिंतन कह्या है. और भी नृसिंहतापिनी आदिक उपनिषदनमें याका प्रकार है. यह ओंकारका चिंतन परमहंसोंका गोप्यधन है, बहिर्मुख पुरुषका याविषे अधिकार नहीं; अत्यंत-

अंतरमुखका अधिकार है. गृहस्थका यामें अधिकार नहीं. धन, पुत्र, स्त्रीसंगादिक रहित परमहंसका अधिकार है.

पूर्वप्रकारते ओंकारका ब्रह्मरूपते ध्यान कियेते ज्ञानद्वारा मोक्ष होवै है. परंतु जा पुरुषकी इसलोकके भोगनमें अथवा ब्रह्मलोकके भोगनमें कामना होवै तीव्र वैराग्य नहीं होवे, और हठसे कामनाको रोकिके, धन पुत्रादिकनकूं त्यागिके, परमहंसगुरुके उपदेशते ओंकाररूप ब्रह्मका ध्यान करै; ताकूं भोगकी कामना ज्ञानमें प्रतिबंध है, याते ज्ञान नहीं होवै है, किंतु ध्यान करतेही शरीरत्यागते अनंतर अन्यशरीरकी प्राप्ति होवे, जो इसलोकके भोगनकी कामना रोकके ध्यानमें लगा होवे, तौ इसलोकमें अत्यंतविभूतिवाले पवित्रसत्संगीकुलमें जन्म होवै है. वहां पूर्वकामनाकेविषे सारे भोग प्राप्त होवैं हैं. और पूर्व जन्मके ध्यानके संस्कारनते फेरि विचारमें अथवा ध्यानमें प्रवृत्ति होवे है. तातैं ज्ञान होयके मोक्ष होवै है.

और ब्रह्मलोकके भोगनकी कामना रोकिके ओंकाररूप ब्रह्मके ध्यानमें लगा होवे, तौ शरीर त्यागिकै ब्रह्मलोककूं जावे तहां मनुष्यकूं पितरनकूं; देवनकूं, दुर्लभ जो स्वतंत्रता है, ताके आनंदको भोगै है. जितनी हिरण्यगर्भकी विभूति है, सो सारी सत्यसंकल्पादिक विभूति इसको प्राप्त होवै है.

जा मार्गते ब्रह्मलोककूं जावै है, सो मार्गका क्रम यह है:—जो पुरुष ब्रह्मकी उपासनामैं तत्पर है, ताके मरणसमय इंद्रिय अंतःकरण यद्यपि सारे मूर्छित हैं, कहीं जानेमें समर्थ नहीं, और यमके दूत

ताके समीप आवें नहीं, जो ताके लिंगशरीरकूं ले जावें. परंतु अग्निका अभिमानी देवता ताकं मरणसमय शरीरसे निकासिके अपने लोकको ले जावे है. ता अग्निलोकते दिनका अभिमानी देवता ले जावे है. तिसते शुक्लपक्षका अभिमानी देवता अपनेलो-ककूं ले जावे है. तिसते आगे उत्तरायण जो षट्मास हैं, तिनका अभिमानी देवता लेजावे है. तिसते. आगे संवत्सरका अभिमानी देवता ले जावे है. तिसते आगे देवलोकका अभिमानी देवता ले जावे है. तिसते आगे वायुका अभिमानी देवता ले जावे है. तिसते आगे सूर्यदेवता ले जावे है. तिसते आगे चंद्र देवता ले जावे है. तिसते आगे विजलीका अभिमानी देवता अपने लोकमें ले जावेहै. तहां विजलीके लोकमें तिस उपासकके सामने हिरण्यगर्भकी आज्ञाते दिव्यपुरुप हिरण्यगर्भलोकवासी हिरण्यगर्भसमानरूप ताके लेनेकूं आवें हैं; सो पुरुष विजलीके लोकते वरुणलोकको ले जावे है. विजलीका अभिमानी देवता साथि आवै है. वरुणलोकते इंद्रलो ककूं ले जावे है. और वरुणदेवताभी इंद्रलोकतक हिरण्यगर्भलो कवासीपुरुप और उपासकके साथि रहै है, तिसते आगे इंद्रदेवता प्रजापतिके लोकतक दोनोंके साथि रहै है. तिसते आगे प्रजापति तिन दोनोंके साथ ब्रह्मलोक लेजानेविषे समर्थ नहीं याते ब्रह्मलोकमें ता दिव्यपुरुपके साथि सो उपासक प्राप्त होवे है. ब्रह्मलोकका अधिपति हिरण्यगर्भ है. सूक्ष्मसमष्टिका अभिमानी चेतन, हिरण्य-

गर्भ कहिये है; ताहीकूं कार्यब्रह्म कहैं हैं, कार्यब्रह्मके निवासस्थानकूं ब्रह्मलोक कहैं हैं.

यद्यपि पूर्वरीतिसे ओंकारकी उपासना शुद्धब्रह्मरूपकरिके कही है. शुद्धब्रह्मके उपासककूं शुद्धब्रह्मकी प्राप्ति चाहिये तथापि शुद्धब्रह्मके प्राप्ति ज्ञानतेही होवै है. और कामनारूप प्रतिबंधते जाकूं ज्ञान हुवा नहीं; ताकूं कार्यब्रह्मकी सायुज्यरूप मोक्ष होवै है, ब्रह्मलोकमें प्राप्त जो उपासकहै,ताकूं हिरण्यगर्भके समान विभूतिप्राप्त होवै है, सत्यसंकल्प होवै है. जैसे शरीरकी इच्छा करे तैसाही उस का शरीर होवै है. जिन भोगनकी वांछाकरै, सो सारेभोग संकल्पते ही प्राप्त होवैं हैं. जो एकसमय हजारशरीरनसे जुदे जुदे भोगनकी इच्छाकरे, तो ताहीसमय हजार शरीर और उनसे भोगनकी जुदी जुदी सामग्री उपजै है. और बहुत क्या कहैं; जो कछु संकल्प करै, सोई सिद्ध होवै है. परंतु जगत्की उत्पत्ति पालन संहार छोडिके और सारी विभूति ईश्वरके समान होवै है. याहीकूं सायुज्यमोक्ष कहैं हैं. ऐसे हिरण्यगर्भके समान हुवा बहुतकाल संकल्पसिद्ध दिव्यपदार्थनको भोगिके प्रलयकालमें जब हिरण्यगर्भके लोकका नाश होवे तब ज्ञान होयके उपासक कं विदेहमोक्षकी प्राप्ति होवै है.

जैसे ओंकाररूप ब्रह्मकी उपासना करनेवाला ब्रह्मलोककी प्राप्तिद्वारा मोक्षको प्राप्त होवै है, तैसे और भी उपनिषदनमें ब्रह्मकी उपासना कही है, तिनते यही फल होवे है. परंतु अहंग्रह उपासना बिना और उपासनाते ब्रह्मलोककी प्राप्ति होवे नहीं यह. वार्त्ता सूत्रकारने और भाष्यकारने चतुर्थ अध्यायमें प्रतिपादन करी है.

जैसे नर्मदेश्वरका शिवरूपते और शालग्रामका विष्णुरूपते ध्यान कह्या है, सो प्रतीकध्यान है, अहंग्रह नहीं. और मनका ब्रह्मरूपते आदित्यका ब्रह्मरूपते ध्यान कह्या है, सो भी प्रतीकध्यान है, अहंग्रह नहीं. तिनते ब्रह्मलोककी प्राप्ति होवे नहीं. सगुण अथवा निर्गुणब्रह्मकूं अपनेते अभेदकरिके चिंतन करै; ताकूं अहंध्यान कहैं हैं. ताहीते ब्रह्मलोककी प्राप्ति होवै है.

पूर्वकह्या जो मार्ग है ताकूं उत्तरायणमार्ग, कहैं हैं; और देव-मार्ग भी कहैं हैं. ता देवमार्गते ब्रह्मलोककूं जो उपासक जावैं हैं. तिनकूं फेरि संसार नहीं होता, किंतु ज्ञान होयके विदेहमुक्तिकूं प्राप्त होवैं हैं. तहां ज्ञानके साधन जो गुरुउपदेशादिक हैं, तिनकी भी अपेक्षा नहीं किंतु ब्रह्मलोकमें गुरुउपदेशादिक साधन विनाही ज्ञान होवै है. काहेते ब्रह्म लोकमें तमोगुण रजोगुणका तौ लेशभी नहीं केवल सत्त्वगुणप्रधान वह लोक है. तमोगुण नहीं; याते जडता आलस्यादिक नहीं. रजोगुण नहीं, याते कामक्रोधादिरूप रजोगुणका कार्य विक्षेप नहीं. केवल सत्त्वगुण है, याते सत्त्वगुणका कार्य ज्ञानरूप प्रकाश ता लोकमें प्रधान है.

ओंकारकी ब्रह्मरूपते जो पूर्व उपासना करी है, तब ओंका-रकी मात्राका अर्थ इसरीतिसे चिंतन किया हैः—स्थूलउपाधिसहित विराट्विश्वचेतन आकारका वाच्यहै. सूक्ष्म उपाधिसहित चेतन हिरण्यगर्भतैजस उकारका वाच्य कारण उपाधिसहित चेतन ईश्व-रप्राज्ञ मकारका वाच्य है. ऐसा अर्थ जो पूर्व चिंतन किया है,

ताकी ब्रह्मलोकमें स्मृति होवै है. और सत्त्वगुणप्रभावते ऐसा विवेचन होवै है:—स्थूलउपाधिकरिके चेतनमें विराट्पना और विश्वपना प्रतीत होवै है. स्थूलसमष्टिकी दृष्टिते विराट्पना और स्थूलव्यष्टिकी दृष्टितेविश्वपना है. और समष्टिव्यष्टिस्थूलकी दृष्टिविनाविराट्भाव और विश्वभाव प्रतीत होवे नहीं, किंतु चेतनमात्रही प्रतीत होवेहै. तैसे सूक्ष्मउपाधि सहित हिरण्यगर्भ तेजसचेतन उकारका वाच्यहै.तहां समष्टिसूक्ष्म उपाधिकी दृष्टिते चेतनमें हिरण्यगर्भता, और व्यष्टिसूक्ष्म उपाधिकी दृष्टिते तैजसता प्रतीत होवै है, सूक्ष्मउपाधिकी दृष्टिविना हिरण्यगर्भता और तैजसता प्रतीत होवै नहीं तैसे मकारका वाच्य ईश्वरप्राज्ञ है, तहां समष्टि अज्ञान उपाधिकी दृष्टिते चेतनमें ईश्वरता, और व्यष्टिअज्ञान उपाधिकी दृष्टिते चेतनमें प्राज्ञताप्रतीत होवै है अज्ञानउपाधिकी दृष्टिविना ईश्वरता और प्राज्ञता प्रतीत होवै नहीं जो वस्तु जाकेविषे अन्यकी दृष्टिते प्रतीत होवे,सो ताके विषे परमार्थसे होवै नहीं. जो जाका रूप अन्यकी दृष्टिविना प्रतीत होवै सो ताका परमार्थरूप होवै है. जैसे एक पुरुषमें पिताकी दृष्टिते पुत्रता, और दादाकीदृष्टिते पौत्रतादिकरूपभान होवै है, सो परमार्थसे नहीं पुरुषका पिंडही परमार्थ है. तैसे स्थूलसूक्ष्मकारणउपाधिकी दृष्टिते जो विराट्विश्वादिकरूप भान होवै है सो मिथ्याहै; चेतनमात्रही सत्य है. सो चेतन सर्वभेदरहित है. काहेते, विराट् और विश्वका जो भेद है, सो उपाधि तौ दोनोंकी यद्यपि स्थूल है, तथापि समष्टि-उपाधि विराट्की और व्यष्टिउपाधि विश्वकी सो समष्टिव्यष्टिउपाधिते

तिनका भेद है; यातें स्वरूपते भेद नहीं. तैसे तैजसका हिरण्यगर्भते भेद भी समष्टिव्यष्टि उपाधितें है; स्वरूपते नहीं. तैसे ईश्वरते प्राज्ञका भेद भी समष्टिव्यष्टिउपाधिके भेदते है; स्वरूपते नहीं. ऐसे प्राज्ञका ईश्वरते अभेद, और तैजसका हिरण्यगर्भते अभेद तथा विश्वका विराट्ते अभेद है या प्रकारते स्थूलउपाधिवालेका सूक्ष्मउपाधिवालेते, वा कारणउपाधिवालेतें भेद नहीं. काहेते स्थूल-सूक्ष्मकारणउपाधिकी दृष्टि त्यागे ते चैतन्यस्वरूपमें किसी प्रकारका भेद प्रतीत होवे नहीं. और अनात्मसे भी चेतनका भेद नहीं. काहेते अनात्मदेहादिक अविद्याकालमें प्रतीत होवैं हैं. परमार्थसे नहीं. तिनका भी चेतनसे भेद बनै नहीं. ऐसे सर्वभेदरहित. असंग निर्विकार, नित्यमुक्त, ब्रह्मरूप आत्मा ओंकारको लक्ष्य स्वयं-प्रकाशरूप तिस उपासककूं भान होवै है. ताते हिरण्यगर्भलोकवा-सीकूं संसार होवै नहीं.

यद्यपि महावाक्यके विवेक विना ज्ञान होवे नहीं, तथापि ओंका-रका विवेकही महावाक्यका विवेक है. स्थूलउपाधिसहित चेतन अकारका वाच्य, स्थूलउपाधिको त्यागिके चेतनमात्र अकारका लक्ष्य, तैसे सूक्ष्मउपाधिसहित चेतन उकारका वाच्य; सूक्ष्मउपा-धिको त्यागके चेतनमात्र लक्ष्य कारणउपाधिसहित चेतन मकारका वाच्य, कारण उपाधिकूं त्यागिके चेतनमात्र लक्ष्य. इसरीतिसे उपाधिसहित विश्वादिक अकारादिमात्राके वाच्य, और उपाधि-रहित चेतन सर्वमात्राके लक्ष्य हैं. तैसे नामरूप सकलउपाधिसहित

चेतन ओंकारवर्णका वाच्य है. और नामरूप सकलउपाधि सहित चेतन ओंकार वर्णका लक्ष्य है. ऐसे ओंकारका और महावाक्यका अर्थ एकही है. याते ओंकारके विवेकते अद्वैतज्ञान होवै है. ऐसे आचार्यके मुखते श्रवणकरिके अदृष्ट नाम जो मध्यमशिष्य, सो उपासनामें प्रवृत्त होयके ज्ञानद्वारा परमपुरुषार्थ मोक्षकूं प्राप्त हुवा ॥ १६८ ॥

निर्गुणउपासनामें जाका अधिकार नहीं, ताको कर्तव्यकहैं हैं।

सवैया-छंद।

जो यह निर्गुणध्यान न ह्वै तौ, सगुणईश करिमनको धाम।
सगुणउपासन हू नाहिं ह्वै तौ, करि निष्कामकर्म भजि राम ॥
जो निष्कामकर्म हू नाहिं ह्वै, तौ करिये शुभकर्म सकाम।
जो सकामकर्महू न होवै, तौ शठ बारबार मरि जाम ॥ १६९॥

दोहा।

ओंकारको अर्थ लखि, भयो कृतार्थ अदृष्टि ॥
पढै जु याहि तरंग तिहिं, दादू करहु सुदृष्टि ॥ १७० ॥

इति श्रीगुरुवेदादिव्यावहारिकप्रतिपादनमध्यमाधिकारीसाधनवर्णनं नाम पंचमस्तरंगः समाप्तः ॥ ५ ॥

षष्ठस्तरंगः ६.

अथ गुरुवेदादिसाधनमिथ्यावर्णनम् ।

दोहा ।

चेतन भिन्न अनात्म सब, मिथ्या स्वप्नसमान ॥
यों सुनि बोल्यो तीसरो, तर्कदृष्टि मतिमान ॥ १ ॥

टीका—चतुर्थतरंग में उत्तम अधिकारीकूं उपदेशका प्रकार कह्या. पंचमतरंगमें मध्यमकूं कह्या. या तरंगमें कनिष्ठ अधिकारीकूं उपदेशका प्रकार कहैं हैं:—जाकूं शंका बहुत उपजे, ताकी यद्यपि बुद्धि तीव्र होवै है, तथापि वह कनिष्ठ अधिकारी है. यह तरंग युक्तिप्रधान है; याते सुने अर्थमें जाकूं कुतर्क उपजे, ताकूं इस तरंगका उपयोग है. कुतर्क दूपितबुद्धि कनिष्ठअधिकारी होवै है. ताकूं उपदेशका प्रकार या तरंगमें है. पहलेतरंगमें प्रणव उपासना और जगत्की उत्पत्तिनिरूपणसे पूर्व यह कह्याः—जो चेतनसे भिन्न अज्ञान और ताका कार्य अनात्म कहिये है. सो अनात्मपदार्थ सारे स्वप्नकी न्याईं मिथ्या हैं. इस बातकूं सुनिके दोनों भाइयोंकूं प्रश्नते उपराम देखिके तर्कदृष्टि प्रश्न करै हैः—

दोहा ।

पहिली जानै वस्तुकी, स्मृती स्वप्नमैं होय ॥
जाग्रतमैं अज्ञात अति, ताहि लखै नहिं कोय ॥ २ ॥

टीका-पूर्व जो अत्यंतअज्ञातपदार्थ है, ताका स्वप्नमें ज्ञान होवे नहीं. किंतु जाग्रत्में जाका अनुभवज्ञान होवे ताकी स्वप्नमें स्मृति होवै है याते स्मृति ज्ञानके विषय जाग्रत्के पदार्थ सत्य होनेते तिनका स्वप्नमें स्मृतिरूप ज्ञान भी सत्य है; याते स्वप्नके दृष्टांतसे जाग्रत्के पदार्थनकूं मिथ्या कहना संभवे नहीं.

अन्यप्रकारते स्वप्नज्ञानके विषय पदार्थनकूं सत्यता प्रतिपादन करै है;

दोहा ।

अथवा स्थूलहिं लिंग तजि, बाहरिदेखत जाय ॥
गिरि समुद्रबनवाजिगज, सो मिथ्या किहिं भाय ॥ ३ ॥

टीका-अथवा कहिये और प्रकारते स्वप्नका ज्ञान और ताके विषय पदार्थ सत्य हैं; मिथ्या नहीं. काहेते, स्वप्न अवस्थामें स्थूल-शरीरकूं त्यागिके लिंगशरीर बाहरि निकसिके साचे गिरिसमुद्रादि-कनकूं देखै है; याते स्वप्न मिथ्या नहीं. उत्तर-

दोहा ।

यह हस्ती आगे खरो, ऐसो होवे ज्ञान ॥
स्वप्नमाहिं स्मृतिरूप सो, कैसे होय सुजान ॥ ४ ॥

टीका-पूर्वकालसंबंधीपदार्थका ज्ञान स्मृति होवै है जैसे पूर्व देखे हस्तीकी " सो हस्ती " ऐसी स्मृति होवे है " यह हस्ती सन्मुख स्थित है " ऐसा ज्ञान स्मृति नहीं किंतु प्रत्यक्ष कहिये है. और स्वप्नमें " तौ यह हस्ती आगे स्थित है, यह पर्वत है, यह नदी है, "ऐसा ज्ञान होवै है, याते जाग्रत्में देखे पदार्थनकी स्वप्नमें स्मृति नहीं; किंतु हस्तीआदिकनका प्रत्यक्षज्ञान होवे है.

और जो ऐसे कहैं:—"जाग्रत्में जाने पदार्थनकाही स्वप्नमें ज्ञान होवै है,अज्ञातपदार्थका ज्ञान नहीं होवे,याते जाग्रत् पदार्थनके ज्ञानके संस्कारनते स्वप्नके ज्ञानकी उत्पत्ति होवै है संस्कारजन्य ज्ञान स्मृति कहिये है. याते स्वप्नका ज्ञान स्मृतिरूप है." सो शंका बने नहीं. काहेते, प्रत्यक्षज्ञान दोप्रकारका होवै है. एक अभिज्ञारूप प्रत्यक्ष होवै है. दूसरा प्रत्यभिज्ञारूप प्रत्यक्ष होवै है. केवल इंद्रियसंबंधते जो ज्ञान होवे. सो अभिज्ञाप्रत्यक्ष कहिये है. जैसे नेत्रके संबंधते हस्तीका "यह हस्ती है" ऐसा ज्ञान अभिज्ञाप्रत्यक्ष है. और पूर्वज्ञानके संस्कारनते और इंद्रियसंबंधते जो ज्ञान होवे सो प्रत्यभिज्ञाप्रत्यक्ष कहिये है. जैसे पूर्वदेखे हस्तीका "सो हस्ती यह है" ऐसा ज्ञान होवे,सो प्रत्यभिज्ञाप्रत्यक्ष कहिये है, तहां पूर्व हस्तीके ज्ञानके संस्कार और हस्तीसे नेत्रका संबंध, प्रत्यभिज्ञाप्रत्यक्ष का हेतु है. याते "संस्कारजन्य ज्ञान स्मृतिरूपही होवै है," यह नियम नहीं. किंतु प्रत्यभिज्ञाप्रत्यक्ष भी संस्कार-जन्य होवै है. परंतु इंद्रियसंबंध विना केवलसंस्कारजन्य ज्ञान होवे, सो स्मृतिज्ञान कहिये है. स्वप्नमें हस्ती आदिकनका ज्ञान केवलसं-स्कारजन्य नहीं, किंतु निद्रारूप दोषजन्य है. और हस्तीआदिक-नकी न्याई स्वप्नमें कल्पितइंद्रिय भी हैं. याते इंद्रिय जन्य हैं यद्यपि स्वप्नके पदार्थ साक्षीभास्य हैं, इंद्रियजन्य ज्ञानके विषय नहीं; तथापि अविवेकीकी दृष्टिते स्वप्नका ज्ञान इंद्रियजन्य कहिये है. इसरीतिसे स्वप्नका ज्ञान जाग्रत्के पदार्थनकी स्मृति नहीं. और

निद्रासे जागिके पुरुष ऐसे कहैः— " मैं स्वप्नमें हस्तिआदिकनकूं देखता भया " जो हस्ति आदिकनकी स्वप्नमें स्मृति होवे, तौ जागिके ऐसा कह्या चाहिये " मैं स्वप्नमें हस्तीआदिकनकूं स्मरण करता भया " ऐसे कोई नहीं. कहता, याते जाग्रतके पदार्थनकी स्वप्नमें स्मृति नहीं. और " जाग्रत्में जो देखे सुने पदार्थ हैं, तिनकाही स्वप्नमें ज्ञान होवे " यह नियम नहीं. किंतु जाग्रत्में अज्ञातपदार्थनका भी स्वप्नमें ज्ञान होवे है, कदाचित् स्वप्नमें ऐसे विलक्षण पदार्थ प्रतीत होवैं हैं, जो सारे जन्मविषे कभी देखे सुने होवैं नहीं, याते तिनका ज्ञान स्मृति नहीं.

यद्यपि " इस जन्मके पदार्थनके ज्ञानके संस्कारही स्मृतिके हेतु हैं; यह नियम नहीं. किंतु अन्यजन्मके ज्ञानके संस्कारनते भी स्मृति होवै. काहेते, अनुकूलज्ञानते प्रवृत्ति होवे है, अनुकूल ज्ञानविना प्रवृत्ति होवे नहीं.याते बालकको स्तनपानमें जो प्रथमप्रवृत्ति होवै है," ताका हेतु बालककूं भी "स्तनपान मेरे अनुकूल है"ऐसा ज्ञान होवै है.तहां अन्यजन्मविषे स्तनपानमें जो अनुकूलता अनुभव करी है, ताके संस्कारनते बालककूं अनुकूलताकी स्मृति होवे है. याते जन्मांतरके ज्ञान संस्कारनते भी स्मृति होवै. है. तैसे इस जन्म विषे अज्ञातपदार्थनकी भी अन्य जन्मके ज्ञानके संस्कारनते स्वप्नविषे स्मृति संभवै है. तथापि कोई पदार्थ स्वप्नमें ऐसे प्रतीत होवैं हैं; जिनका जाग्रत्में किसी जन्मविषे ज्ञानसंभवै नहीं.जैसे अपने मस्तक छेदनकूं आप नेत्रनसे स्वप्नमें देखै है, तहां अपना मस्तकछेदन नेत्रनसे जाग्रत्में देखे नहीं. याते ज्ञानके जाग्रत्पदार्थनके

संस्कारनते स्वप्नमें स्मृति नहीं. ऐसे स्वप्नकूं स्मृतिरूपखंडनमें अनेकयुक्ति ग्रंथकारोंने कही हैं. परंतु स्वप्नकूं स्मृति माननेमें पूर्वोक्त दूषण अतिप्रबल है. जो स्मृति ज्ञानका विषय सम्मुख प्रतीत होवै नहीं, और स्वप्नके हस्ती आदिक सम्मुख प्रतीत स्वप्न-कालमें होवैं हैं; यातैं हस्ती आदिकनकी स्वप्नमें स्मृति नहीं.

" लिंगशरीर बाहरि निकसिके साचे गिरिसमुद्रादिकनकूं देखै है." याका उत्तर—

दोहा।

बाहरि लिंग जु नीकसे, देह अमंगल होय ॥
प्राणसहित सुंदरलसै, याते लिंगहि जोय ॥

टीका—जो स्थूलशरीरते निकसिके लिंगशरीर बाहरि साचे गिरिसमुद्रादिकनको देखै; तौ लिंगशरीरके निकसनेते जैसे मरण अवस्थामें शरीर भयंकररूप प्रतीत होवै है, तैसे, स्वप्नअवस्थाविषे भी लिंगके अभावते स्थूलशरीर अमंगल कहिये भयंकर हुवा चाहिये; तैसे प्राणरहित मृतकसमान हुआ चाहिये और स्वप्नअ-वस्थामें ऐसा होवै नहीं; किंतु स्वप्नअवस्थामें स्थूलशरीर प्राण-सहित होवै है. और जाग्रत्की न्याईं सुंदर कहिये मंगलरूप होवै है. याते स्थूलशरीरके बाहर लिंगशरीर स्वप्नावस्थामें निकसै नहीं और जो ऐसे कहैं—स्वप्नअवस्थामें प्राण तो जावैं नहीं, किंतु अंतः-करण और इंद्रिय बाहरि पर्वतादिकनमें जायके तिनकूं देखैं हैं. बाहरि नहीं जावै, यातें स्थूलशरीर मरणअवस्थाके समान भयंकर

होवै नहीं. और प्राणका बाहरि जानेका कछु प्रयोजन भी नहीं काहेतें. प्राणमें ज्ञानशक्ति नहीं; किंतु क्रियाशक्ति है; यातें बाहरिके पदार्थनके ज्ञानकी जिनमें सामर्थ्य है, सोई जावै है ज्ञानशक्ति अंतःकरण और ज्ञानइंद्रियनमें है. प्राणकी न्याई कर्मइंद्रियनमें भी ज्ञानशक्ति नहीं. क्रियाशक्ति है. यातें प्राण और कर्मइंद्रिय शरीरमें रहैं हैं. यातें मरणनिमित्तते दाहादिकनकी रक्षा होवै है. और बाहरि अंतःकरण ज्ञानइंद्रिय जावै है. साँचे पर्वतादिकनकूं देखिके प्राण और कर्मइंद्रियनके समीप आवै हैं; सो भी बनै नहीं काहेतें स्थूलसूक्ष्मसमाजमें सर्वका स्वामी प्राण है. प्राणविना शरीरकूं देखिके क्षणमात्र भी रहने नहीं देते. बाहरि लेजावैं हैं, दाह करैं हैं; स्पर्शते स्नान करैं हैं. यातें स्थूलशरीरका सार प्राण है. तैसे सूक्ष्मशरीरमें भी प्रधान प्राण है.

प्राणइंद्रियादिक परस्पर श्रेष्ठताविवाद करिके प्रजापतिके समीप जायके कह्या; हे भगवन्! हमारेविषे कौन श्रेष्ठ है? तब प्रजापतिने कह्या; तुम सारे स्थूल शरीरमें प्रवेश करिके एक एक निकसते जावो, जिसके निकसेते शरीर अमंगलरूप होइके गिरि पडै सो तुम्हारेमें श्रेष्ठ है, प्रजापतिके वचनतें नेत्रादिकइंद्रियनते एकएकके अभावते अंधादिरूप शरीरकी स्थिति देखी, और प्राणके निकसनेका उद्योग करतेही शरीर गिरने लगा, तब सर्वने यह निश्चय किया, हमारा सर्वका स्वामी प्राण है. इस करणतें जितने शरीरमें प्राण रहै, उतने, रहैं हैं शरीरतें प्राणके निकसतेही सारे

निकस जावैं हैं. यातैं सूक्ष्मसमाजका राजाकी न्याईं प्राणही प्रधान है. ताके निकसे विना अंतःकरण ज्ञानइंद्रिय कोई बाहरि निकसे नहीं. किंवा,

अंतःकरण और ज्ञानइंद्रिय भूतनके सत्त्वगुणनके कार्य हैं तिनमें ज्ञानशक्ति है क्रियाशक्ति नहीं, प्राणमें क्रियाशक्ति है. ताके बलतैं मरणसमय लिंगशरीर इस स्थूलकूं त्यागिके लोकांतरकूं जावै है, और प्राणकेही बलतैं इंद्रियद्वारा अंतःकरण की वृत्ति बाहरि घटादिकनके समीप जावै है. और प्राणके सहारे विना अंतःकरणादिकनका बाहरि गमन संभवै नहीं. इसी कारणतैं योगशास्त्रमें कहा है:—"प्राण निरोधविना मनका निरोध होवै नहीं. प्राणके संचारतैं मनका संचार होवै है. प्राणनिरोधतैं मनका निरोध होवै है," यातैं मनका निरोधरूप जो राजयोग, ताकी जिसकूं इच्छा होवै सो प्राणनिरोधरूप हठयोगका अनुष्ठान करै; यातैं भी प्राणके अधीन अंतःकरणका गमन है. ताके निकसे विना अंतःकरण ज्ञानइंद्रिय बाहरि निकसे नहीं. और स्वप्नअवस्थामें स्थूलशरीर प्राणसमेत प्रतीत होवै है. यातैं "बाहरि जायके साँचे पदार्थनकूं स्वप्नमें देखे है, यह संभवै नहीं किंवा—

कोई पुरुष अपने संबंधीसे स्वप्नमें मिलिके जो व्यवहार करै, तौ जागिके वह संबंधी मिले, तब ऐसे नहीं कहता, कि रात्रिको हम मिलेथे, और अमुकव्यवहार कियाथा. और पूर्वपक्षकी रीतिसे तो बाहरि निकसिके ता संबंधीसे मिलिके व्यवहार साचा किया है.

ता मिलनेका और व्यवहारका ज्ञान संबंधीकूं चाहिये, और मिले जब संबंधीने कह्या चाहिये; और सिद्धांतमें तौ संबंधी और ताका मिलाप सब अंतरही कल्पित है. किंवा,

जो बाहरि जायके साँचेपदार्थनकूं देखे, तो रात्रिमें सोया पुरुष हरिद्वारमें मध्याह्नके सूर्यते तपेमहल गंगाते पूर्व, और नीलपर्वत गंगाते पश्चिम देखै है. तहां रात्रिमें मध्याह्नका सूर्य नहीं गंगाते पूर्वदिशामें हरिद्वारपुरी नहीं; गंगाते पश्चिम नीलपर्वत नहीं. याते भी सांचे पदार्थनका देखना स्वप्नमें असंभव है. और जाग्रत्की स्मृति अथवा ईश्वरकृत पर्वतादिकनका बाहरि निकसिके स्वप्नमें ज्ञान होवै है; इन दोनों पक्षनका निराकरण किया है.

सिद्धांत-कहैं।

दोहा।

यातैं अंतर ऊपजै, त्रिपुटी सकल समाज ॥
वेद कहत या अर्थकूं, सब प्रमाण शिरताज ॥ ६ ॥

टीका-जाग्रत्के पदार्थनकी स्मृति, औ बाहरि लिंगका निकसना तौ संभवे नहीं. तथापि जाग्रत्की न्याईं ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय त्रिपुटी स्वप्नमें प्रतीत होवै है. याते कंठकी नाडीके अंतरही सब कुछ उत्पन्न होवै है. सब प्रमाणका शिरताज कहिये प्रधान जो वेद है, ताने यह कह्या है:-उपनिषद् में यह प्रसंगः-" जाग्रत्के पदार्थ स्वप्नमें नहीं प्रतीत होवैं हैं; किंतु रथ और घोड़े तथा मार्ग, तैसे रथमें बैठनेवाले स्वप्नमें नवीन उत्पन्न होवैं हैं. याते पर्वत

समुद्र नदी वन ग्राम पुरी सूर्य चंद्र जो कुछ स्वप्नमें दीखै है, सो नवीन उपजे है. जो स्वप्नमें पर्वतादिक नहीं होवै, तौ तिनका प्रत्यक्षज्ञान स्वप्नमें होवै है सो नहीं हुवा चाहिये. काहेते, विषयते इंद्रियका संबंध, वा अंतःकरणकी वृत्तिका संबंध, प्रत्यक्षज्ञानका हेतु है. याते पर्वतादिक विषय, और तिनके ज्ञानके साधन इंद्रिय तथाअंतः करण सारे अंतर उत्पन्न होवैं हैं.

यद्यपि स्वप्नके पदार्थ शुक्तिरजतादिकनकी न्याईं साक्षी भास्य हैं अंतःकरण इंद्रियनका स्वप्नके ज्ञानमें उपयोग नहीं याते ज्ञेय जो पर्वतादिक हैं, तिनकीही उत्पत्ति स्वप्नमें माननी योग्य है, ज्ञाता ज्ञान और इंद्रियनकी उत्पत्ति माननी योग्य नहीं. तथापि जैसे स्वप्नमें पर्वतादिक प्रतीत होवैं हैं तैसे इंद्रिय अंतःकरण प्राण-सहित स्थूल शरीर भी स्वप्नमें प्रतीत होवै है; याते तिनकी भी उत्पत्ति मानी चाहिये. किंवा.

स्वप्नके पदार्थनविषे नेत्रादिकनकी विषयता भान होवै है. सो व्यावहारिक नेत्रादिकनकी विषयता तौ स्वप्नके प्रातिभासिकपदार्थ-नविषे बनै नहीं. काहेते, समसत्तावाले पदार्थही आपसमें साधक-बाधक होवैं हैं. यह पंचमतरंगमें प्रतिपादन करी है. याते व्यावहा-रिकनेत्रादिक शरीरमें हैं भी, तिनसें स्वप्नके पदार्थनकी विषमसत्ता होनेते तिनके ज्ञानकी विषयता स्वप्नके पर्वतादिकनकूं बनै नहीं. किंवा व्यावहारिक जो इंद्रिय हैं, सो अपने अपने गोलकोंकूं त्यागिके कार्य करनेमें समर्थ होवें नहीं. और स्वप्नअवस्थामें हस्त

पाद वाक्यके गोलक तौ निश्चल दूसरेकूं दीखै हैं; और हस्तमें द्रव्य ग्रहणकरिके पुकारता धावन करै है. याते स्वप्नमें इंद्रियनकी उत्पत्ति अवश्य मानी चाहिये. तैसे सुखदुःख और तिनका ज्ञान, तथा सुखदुःखज्ञानका आश्रय प्रमाता; स्वप्नमें प्रतीत होवै है. और बिनाहुये पदार्थकी प्रतीति होवे नहीं, याते सारात्रिपुटीसमाज स्वप्नमें उत्पन्न होवै है.

अनिर्वचनीयख्यातिकी यह रीति हैः—जितने भ्रमज्ञान हैं तिनके विषय सारे अनिर्वचनीय उत्पन्न होवैं हैं. विषयविना कोई ज्ञान होवे नहीं, यह सिद्धांत है. और शास्त्रनके मतमें तो अन्यपदार्थका अन्यरूपते भान होवे, सो भ्रम कहिये है. सिद्धांतमें तौ जैसा पदार्थ होवै तैसाही ज्ञान होवै है. याते भ्रमस्थलमें भी विषयकी उत्पत्ति अवश्य होवै है. विषयविना ज्ञान होवै नहीं. इसरीतिसे स्वप्नमें त्रिपुटीकी प्रतीति होनेते सारा समाज उत्पन्न होवै है.

याकेविषे ऐसी शंका होवै हैः—स्वप्नके जो पदार्थ प्रतीत होवैं हैं, तिनकी उत्पत्ति अंगीकार होवे, तो जैसे स्वप्नदृष्टांतसे जाग्रत्के पदार्थ मिथ्या सिद्धांतमें कहे हैं, तैसे जाग्रत्के पदार्थनकी न्याईं उत्पत्तिवाले होनेते स्वप्नके पदार्थही सत्य हुये चाहियें. और स्वप्नके प्रति पदार्थनकी उत्पत्ति नहीं माने तब यह दोष नहीं. काहेते, जाग्रत्के पदार्थ तौ उत्पन्न हुये प्रतीत होवैं हैं, और स्वप्नमें पदार्थ बिनाहुये प्रतीत होवैं हैं याते स्वप्नमें बिना हुये पदार्थनका ज्ञान भ्रमरूप होवैहै. तिनकी उत्पत्ति माननी योग्य नहीं; ताशंकाकासमाधान-

दोहा।

साधनसामग्री विना, उपजै झूठ सु होय ॥
विन सामग्री ऊपजै, यों तिहि मिथ्या जोय ॥

टीका—जिस वस्तुकी उत्पत्तिमें जितना देशकालादिसामग्री, साधन कहिये कारण है, उतनी सामग्रीबिना उपजै सो मिथ्या कहिये है. और स्वप्नके हस्ती आदिकनकी उत्पात्तिके योग्य देश काल है नहीं. बहुत कालमें और बहुतदेशमें उपजने योग्य हस्ती आदिक क्षणमात्रकालमें सूक्ष्मकंठदेशमें उपजें हैं; याते मिथ्याहैं. यद्यपि स्वप्नअवस्थामें कालदेश भी अधिक प्रतीत होवै है; तथापि अन्यपदार्थनकी न्याईं स्वप्नमें अधिककाल और अधिकदेश भी अनिर्वचनीय प्रातिभासिक उत्पन्न होवै है. काहेते, विषयविना प्रत्यक्षज्ञान होवे नहीं और स्वप्नमें अधिकदेशकाल का ज्ञान होवै है. व्यावहारिकदेशकाल न्यून है, याते प्रातिभासिक उत्पन्न होवै है. परंतु स्वप्नअवस्थामें उपजै जो प्रातिभासिकदेशकाल, सो स्वप्न अवस्थाके हस्ती आदिकनके कारण नहीं काहेतें, कारण होवे सो पहली उपजै है, और कार्य पाछे उपजै है. स्वप्नके देशकाल और हस्ती आदिक एकही समयमें होवें हैं, याते तिनका कार्य कारण-भाव बनै नहीं. और व्यावहारिकदेशकाल न्यून हैं, हस्ती आदि-कनके योग्य नहीं, याते देशकालरूप सामग्रीबिना उपजैं हैं. याते स्वप्नके पदार्थ मिथ्या हैं. और भी मातासे आदिलेके हस्ती आदि-

कनकी सामग्री स्वप्नमें नहीं है. यद्यपि स्वप्नमें प्राणी पदार्थनके माता पिता, भी प्रतीत होवैं हैं, तथापि स्वप्नके माता, पिता, पुत्रकी उत्पत्तिके कारण नहीं काहेते, माता पिता और पुत्र, एकक्षणमें साथ उपजैं हैं, याते तिनका कार्यकारणभाव नहीं. जा निद्रासहित अविद्यासे स्वप्नके पदार्थ उपजैं हैं, सोई अविद्या तिन पदार्थनविषे मातापना पितापना और पुत्रपना उपजावै है. इसरीतिसे स्वप्नके पदार्थनकी उत्पत्तिमें और कोई सामग्री नहीं किंतु अविद्याही निद्रारूप दोषसहित कारण है जो दोषसहित अविद्यासे जन्य होवे, सो शुक्तिरजतकी न्याईं मिथ्या होवै है. याते स्वप्नके पदार्थ सत्य नहीं, मिथ्या हैं तिनका उपादानकारण अंतः-करण है; अथवा साक्षात् अविद्याही तिनका उपादानकारण है. पहले पक्षमें साक्षीचेतन स्वप्नका अधिष्ठान है, और दूसरे पक्षमें ब्रह्मचेतन स्वप्नका अधिष्ठान है. इसरीतिसे अंतःकरणका अथवा अविद्याका परिणाम, और चेतनका विवर्त स्वप्न है.

याके विषे ऐसी शंका होवै हैः—दूसरे पक्षमें ब्रह्म चेतन स्वप्नका अधिष्ठान कह्या, और अविद्या उपादान कारण कही. तहां अधिष्ठानज्ञानसे कल्पितकी निवृत्ति होवै है. और स्वप्नका अधिष्ठान ब्रह्म है, याते ब्रह्मज्ञान बिना अज्ञानीकूं जागरणमें स्वप्नकी निवृत्ति नहीं हुई चाहिये.

अन्य शंका—जैसे स्वप्नका अधिष्ठान ब्रह्म, और उपादान कारण अविद्याहै; तैसे वेदांतसिद्धांतमें जाग्रतके व्यावहारिकपदार्थनका

भी अधिष्ठान ब्रह्म है, औ उपादानकारण अविद्या है; याते जाग्रत्के पदार्थनकूं व्यावहारिक कहैं हैं; और स्वप्नकूं प्रातिभासिक कहैं हैं, ऐसा भेद नहीं हुवा चाहिये. काहेते, दोनोंका अधिष्ठान ब्रह्म है; और उपादानकारण अविद्या है याते जाग्रत् स्वप्न दोनों व्यावहारिक हुये चाहियें अथवा दोनूं प्रातिभासिक हुये चाहियें.

सो दोनों शंका बने नहीं काहेतें, प्रथमशंकाका यह समाधान है—निवृत्ति दोप्रकारकी होवै है, यह पूर्व ख्याति निरूपणमें कही है. कारणसहित कार्यका विनाशरूप अत्यंत निवृत्ति तो स्वप्नकी जाग्रत्में ब्रह्मज्ञानबिना बने नहीं, परंतु दंडके प्रहारते जैसे घटका मृत्तिका में लय होवै है; तैसे स्वप्नके हेतु जो निद्रादोष ताके नाशते, वा स्वप्नकी विरोधी जाग्रत्की उत्पत्तिते अविद्यामें लयरूप निवृत्ति स्वप्नकी ब्रह्मज्ञान बिना संभवै है.

और जो शंका करी-" जाग्रत् स्वप्न दोनों समान हुये चाहियें "सो बने नहीं. काहेते, जाग्रत्के देहादिक पदार्थकी उत्पत्तिमें तो अन्यदोषरहित केवल अनादि अविद्याही उपादानकारण है, और स्वप्नके पदार्थनमें तो सादिनिद्रादोष भी अविद्याका सहायक है. याते अन्यदोषरहित केवल अविद्याजन्य व्यावहारिक कहियें हैं. और सादिदोषसहित अविद्याजन्य प्रातिभासिक कहियें हैं. स्वप्नके पदार्थ निद्रादोषसहित अविद्याजन्य होनेते प्रातिभासिक हैं और जाग्रत्के पदार्थ अन्यदोषरहित अविद्याजन्य होनेते व्यावहारिक कहियें हैं. इसरीतिसे स्वप्नके पदार्थनमें जाग्रत्पदार्थनते विलक्षणता है, परंतु

यह संपूर्ण तीनप्रकाकी सत्ता मानिके स्थूलदृष्टिसे कही है विचार-दृष्टिसे तौ तीनिप्रकारकी सत्ता बने नहीं. और जाग्रत स्वप्नकी परस्पर विलक्षणता भी बने नहीं.

यद्यपि वेदांतपरिभाषादिक ग्रंथनमें पूर्व प्रकारते व्यावहारिक और प्रातिभासिकपदार्थनका भेद कह्या है. याते तीनि सत्ता मानी हैं. तैसे विद्यारण्यस्वामीने भी तीनि सत्ता मानी हैं. काहेते, यह प्रसंग तिन्होंने लिखा है—दोप्रकारके देहादिक पदार्थ हैं, एक तौ ईश्वररचित हैं, सो बाह्य हैं, और दूसरे जीवके संकल्परचित हैं, सो मनोमय कहियें हैं, और अंतर हैं, तिन दोनोंमें जीवसंकल्पते रचित अंतर मनोमय साक्षीभास्य हैं. और ईश्वररचित बाह्य हैं, सो प्रमाताप्रमाणके विषय हैं. और अंतर मनोमयदेहादिकही जीवकूं सुख दुःखके हेतु हैं, और बाह्य जो ईश्वररचित हैं, सो सुखदुःखके हेतु नहीं; याते मनोमयपदार्थनकी निवृत्ति मुमुक्षुकूं अपेक्षित है और बाह्यप्रपंच सुखदुःखका हेतु नहीं; याते ताकी निवृत्ति अपेक्षित नहीं. जैसे दोपुरुषनके दोपुत्र विदेशमें गये होवें, तिनमें एकका पुत्र मरिजावे, एकका जीवता होवे, सो जीवता पुत्र बडी विभूतिकूं प्राप्त होयके किसीपुरुषद्वारा अपने पिताकूं अपनी विभूतिप्राप्तिका, और द्वितीयके मरणका समाचार भेजै; तहां समाचार सुनावनेवाला दुष्ट होवै, याते जीवतेपुत्रके पिताकूं कहै. तेरा पुत्र मरिगया; और मरेपुत्रके पिताकूं कहै. तेरा पुत्र शरीरते नीरोग

है; बड़ी विभूतिकं प्राप्त हुवा है; थोडेकालमें हस्तिआरूढ बडे समाज ते आवैगा. ता वंचकवचनकूं सुनिके जीवते पुत्रका पिता रोवै है. बडेदुःखको अनुभव करै है, और मरेपुत्रका पिता बडेहर्षकूं प्राप्त होवै है. इसरीतिसे देशांतरविषे ईश्वररचितपुत्र जीवै है. तो भी मनोमयपुत्र मरिगया याते दुःखहोवै है ईश्वररचित जीवतेका सुख होवै नहीं तैसे दूसरेका इश्वररचित पुत्र मरिगया है, ताका दुःख होवैनहीं मनोमय जीवै है ताका सुख होवै है, याते जीवसृष्टिही सुखदुःखकी हेतु है ईश्वरसृष्टि सुखदुःखकी हेतु नहीं इसरीतिसे विद्यारण्यस्वामीने जीव सृष्टि दो प्रकारकी कही है तहां जीवसृष्टि प्रातिभासिकहै,और ईश्वरसृष्टि व्यावहारिक है, ऐसे और ग्रंथकारों ने भी सत्ता तीनिप्रकारकी कही है चेतनकी परमार्थसत्ता है, और चेतनसे भिन्न जडपदार्थनकी दोप्रकारकी सत्ता है. एक व्यावहारिकसत्ता और दूसरी प्रातिभासिकसत्ता है. सृष्टिके आदिकालमें ईश्वरसंकल्पते उपजे जो केवल अविद्याके कार्य, पंचभूत और तिनके कार्यकी व्यावहारिक सत्ता है. दोषसहित अविद्याके कार्य स्वप्न शुक्तिरजतादिकनकी प्रातिभासिकसत्ता है. इसरीतिसे जाग्रत्पदार्थनकी व्यावहारिकसत्ता और स्वप्नकी प्रातिभासिक सत्ता कही है,

तथापि अनात्मपदार्थनकी सर्वकी प्रातिभासिकही सत्ता है, याते दोप्रकारकीही सत्ता है. चेतनकी परमार्थ सत्ता और चेतनसे भिन्न सकल अनात्मकी प्रातिभासिकही सत्ता है, जाग्रतस्वप्नके पदार्थकी किंचित्मात्र भी विलक्षणता सिद्ध होवै नहीं. या उत्तमसिद्धांतकूं प्रतिपादन करै हैं:—

चौपाई।

बिन सामग्री उपजत यातैं। स्वप्नसृष्टि सब मिथ्या तातैं॥
देशकालको लेश न जामैं। सर्वजगतउपजतहै तामैं॥ ८॥
स्वप्नसमान झूंठ जग जानहु। लेश सत्य ताकूं मति मानहु॥
जाग्रतमाहिं स्वप्न नाहिं जैसे। स्वप्नमाहिं जाग्रत नहिं तैसे॥

टीका—देशकालसामग्री विना स्वप्नके हस्तीपर्वतादिक उपजैंहैं याते मिथ्या कहियैं हैं.तैसे आकाशादिक प्रपंचकी सृष्टि ब्रह्मते होवैहै ता ब्रह्मविषे देशकालका लेश भी नहींहै.स्वप्नविषे हस्तीपर्वतादिकनके योग्य तौ देशकाल नहीं है, तथापि अल्पदेशकाल है; तैसेआकाशादिकनकी सृष्टिमें अल्पदेशकाल भी नहीं है; काहेते, देशकालरहित परमात्मासे आकाशादिकनकी सृष्टि कही है. इसकारणते तैत्तिरीय श्रुतिमें आकाशादिकनकी क्रमते सृष्टि कही है, देशकालकी सृष्टि नहीं कही. और सूत्रकार भाष्यकारने भी देशकालकी सृष्टि नहीं कही. सृष्टि नाम उत्पत्तिकाहै. तहां तैत्तिरीय श्रुतिका औरसूत्रकार भाष्यकारका यही अभिप्राय है:—आकाशादिक प्रपंचकी उत्पत्ति देशकालसामग्रीविना होवै है; याते आकाशादिक स्वप्नकी न्याई मिथ्या है.

यद्यपि मधुसूदनस्वामीने देश काल साक्षात् अविद्याके कार्य कहे हैं. यातै मायाविशिष्टपरमात्मासे पहली मायाके परिणाम देश काल होवें हैं. तिसते अनंतर आकाशादिकनकी उत्पत्ति होवै है. याते योग्यदेशकालते आकाशादिक प्रपंचकी उत्पत्ति संभवै है

तथापि मधुसूदनस्वामीका यह अभिप्राय नहीं:—जो देशकाल प्रथम होवै है; और आकाशादिक उत्तर होवैं हैं. काहेते, अतीतकालमें होवे सो प्रथम और पूर्व कहिये है. और भविष्यकालमें होवे सो उत्तर कहिये है; जाकूं पाछे कहैं हैं. आकाशादिकनकी उत्पत्तिते प्रथम देश काल उपजैं हैं: या कहनेते आकाशादिकनकी उत्पत्तिकालते पूर्वकाल उपहितपरमात्मा देश कालका अधिष्ठान है; यह सिद्ध होवेगा. याते देशकालकी उत्पत्तिमें पूर्वकालकी अपेक्षा होवेगी और कालकी उत्पत्तिविना पूर्वकाल असिद्ध है. याते आकाशादिकनते पूर्वकालमें देशकालादिक होवैं हैं; यह कहना बनै नहीं. किंतु, मधुसूदनस्वामीका यह अभिप्राय है:—जैसे भूत भौतिक प्रपंच प्रतीत होवै है. तैसे देशकाल भी प्रतीत होवै है और आत्मासे भिन्न कोई नित्य है नहीं. याते देशकाल नित्य नहीं. और विनाहुयेकी प्रतीति होवे नहीं. याते आकाशादिकनकी न्याईं देश कालकी भी उत्पत्ति होवै है. सो देशकाल मायाके परिणाम हैं; और चेतनके विवर्त हैं. जो विवर्त होवे सो किसीका कारण होवे नहीं. याते आकाशादिक प्रपंचकी उत्पत्तिमें देशकालकूं कारणता बनै नहीं. किंवा; कारण प्रथम होवै है, कार्य उत्तर होवै है, आकाशादिक प्रपंचते देशकाल प्रथम होवै है, यह कहना बनै नहीं, यह वार्ता नजदीक कहि आये हैं. याते भी देशकालकूं आकाशादिक प्रपंचकी कारणता बनै नहीं; किंतु स्वप्नके पिता पुत्रकी न्याईं देशकालसहित आकाशादिक प्रपंच मायाविशिष्टपरमात्माते उत्पन्न होवै है. और कोई पदार्थ

किसी देशमें किसी कालमें उपजै है, अन्यदेशमें अन्यकालमें नहीं उपजैं है. इसरीतिसे सारे पदाथ प्रलयकालमें नहीं उपजैं हैं; सृष्टिकालमें उपजैं हैं. याते देशकालकूं कारणता प्रतीत भी होवै है, तौ भी जा मायाते देशकालसहित प्रपंचकी उत्पत्ति होवै है; ता मायातेही देशकालमें कारणता, अन्य प्रपंचमें कार्यता, प्रतीत होवै है; और आकाशादि प्रपंचके देशकाल कारण नहीं. याके विषे, ऐसी शंका होवै हैः—विनाहुये पदार्थनकी तौ प्रतीति होवे नहीं. और सिद्धांतमें अंगीकार नहीं. जो विनाहुयेकी प्रतीति मानै; तौ असत्ख्यातिका अंगीकार होवेगा और विनाहुये वंध्यापुत्र शशशृंगादिकनकी प्रतीति हुई चाहिये. याते विनाहुयेकी प्रतीति होवे नहीं. याते देश कालमें कारणता नहीं होवै, तौ देशकालमें सर्वपदार्थनकी कारणतामायाके बलतेभी प्रतीति नहीं हुईचाहिये. और कारणता देश कालमें प्रतीत होये, याते देश काल सर्व प्रपंचके कारण हैं. और जो सिद्धांती ऐसे कहैः—सर्वप्रपंचका कारण ब्रह्म है. ब्रह्मकी कारणता देश कालमें प्रतीति होवै है. और देश कालमें कारणता नहीं, सो भी बनै नहीं, काहेते जैसे देश कालका अधिष्ठान ब्रह्म है, तैसे सर्वप्रपंचका अधिष्ठान ब्रह्म है, देश कालमेंही ब्रह्मकी कारणता प्रतीत होवै, अन्यमें नहीं; या कहनेमें कोई हेतु नहीं. याते अधिष्ठानब्रह्मकी कारणता देश कालमें प्रतीत होवे तो ब्रह्म सर्वप्रपंचका अधिष्ठान है, याते सर्वप्रपंचमें कारणता प्रतीत हुई चाहिये; किसीमें कारणता किसीमें कार्यता, ऐसा भेद नहीं चाहिये, किंवा देशकालमें कारणता नहीं और ब्रह्ममें कारणता है, सो ब्रह्मकी कारणता देश कालमें

प्रतीत होवै है. या कहनेते अन्यथाख्यातिका अंगीकार होवेगा काहेते, अन्यवस्तुकी अन्यरूपते प्रतीतिकूं अन्यथाख्याति कहैं हैं. देश काल कारण नहीं, याते कारणते अन्य कारण है, तिनकी अन्यरूपते कहिये कारणरूपते प्रतीति माननेमें अन्यथाख्यातिका अंगीकार होवेगा; और सिद्धांतमें अन्यथाख्यातिका अंगीकार नहीं. जो या स्थानमें अन्यथाख्याति मानैं तो शुक्तिमें अनिर्वचनीयरूपकी उत्पत्ति सिद्धांतमें मानी है, सो निष्फल होवेगी. काहेते अन्यथाख्यातिमें दो मत हैंः—एक तो अन्यदेशमें स्थितपदार्थकी अन्येदशमें प्रतीति अन्यथाख्याति जैसे कांताकरमें स्थित रजतका सन्मुख शुक्तिदेशमें प्रतीति अन्यथाख्याति अथवा अन्यपदार्थकी अन्यरूपते प्रतीति अन्यथाख्याति. जैसे शुक्तीकी रजतरूपते प्रतीति अन्यथाख्याति.ऐसे सारे भ्रमस्थलमें अन्यथाख्यातिसे निर्वाह संभवै है. अनिर्वचनीयरजतादिकनकी उत्पत्तिकथन असंगत होवेगी. और सिद्धांती ऐसे कहैः—विषयसमानाकार ज्ञान होवै है. अन्यवस्तुका अन्यरूपते, ज्ञान संभवे नहीं. याते रजताकारज्ञान का विषय भी अनिर्वचनीयरजत उत्पन्न होवै है. या अद्वैत सिद्धांतमें कारणते अन्य जो देश, काल, तिनविषे ब्रह्मकी कारणताका ज्ञान संभवे नहीं. याते देश कालमें कारणता जो प्रतीत होवै है, ताका विनाहुयेका अथवा ब्रह्ममें स्थितका भान संभवे नहीं,किंतु देश कालमेंही कारणता है; ताका भान होवै है. इसरीतिसे. " आकाशादिक प्रपंचके कारण देश काल नहीं " यह कथन असंगत है.

सो शंका बनै नहीं. काहेते ब्रह्मकी कारणता देश कालमें प्रतीत होवै है, जैसे जपापुष्पसंबंधी स्फटिकमें पुष्पकी रक्तता प्रतीत होवै है. अधिष्ठानकी सत्यता स्वप्नकालमें मिथ्या हस्तीपर्वतादिकनमें प्रतीत होवै है. तहां स्फटिकमें अनिर्वचनीयरक्तताकी उत्पत्तिका अंगीकार नहीं; किंतु पुष्पकी रक्तता स्फटिकमें प्रतीत होवै है. याते श्वेतस्फटिककी रक्तरूपते प्रतीति होनेते रक्तताके ज्ञानमें अन्यथाख्यातिही मानी है. तैसे स्वप्नमें मिथ्यापदार्थनविषे सत्यता प्रतीत होवै. तहां अनिर्वचनीयसत्यता तिन पदार्थनविषे उत्पन्न होवै है.यह कथन तो" सत्य; मिथ्या है;" इस (व्याघातदोषवाले) वचनकी न्याईं संभवै नहीं. और विनाहुयेकी प्रतीति होवे नहीं. किंतु स्वप्नके अधिष्ठानचेतनकी सत्यता मिथ्या पदार्थनमें प्रतीत होवै है. याते मिथ्यापदार्थनकी सत्यरूपते प्रतीति होनेते सत्यताके ज्ञानमें अन्यथाख्यातिही मानी है. तैसे अधिष्ठानब्रह्मकी कारणता देश कालमें अन्यथाख्यातिसे प्रतीत होवै है. और—

जो ऐसे कहैं:—इतने स्थानमें अन्यथाख्याति मानें, तौ सारे भ्रममें अन्यथाख्यातिही मानी चाहिये. सो शंका बनै नहीं. काहेते, शुक्तिरजतादिकनमे अन्यथाख्याति माननेमें यह दोष कह्या है:— विषयतें विलक्षण ज्ञान बनै नहीं और जहां स्फटिकमें रक्तताका ज्ञान होवे. तहां रक्तपुष्पका स्फटिकते संबंध है. याते स्फटिकसंबंधीपुष्पकी रक्तता स्फटिकमें प्रतीत होवै है. काहेते अंतःकरणकी वृत्ति जब रक्तपुष्पाकार होवै; ताही वृत्तिका विषय रक्तपुष्पसं-

बंधी स्फटिक है; याते पुष्पकी रक्तता स्फटिकमें प्रतीत होवै है. और शुक्तिका तो रजतरूपते ज्ञान संभवे नहीं. काहेते शुक्तिदेशमें अनिर्वचनीय तथा व्यावहारिकरजत तो अन्यमतमें है नहीं, किंतु शुक्ति है ता शुक्तिके संबंधसे शुक्तिके समानाकारही अंतःकरणकी वृत्ति होवेगी रजताकार अंतःकरणकी वृत्ति होवे नहीं. याते अविद्याका परिणाम चेतनका विवर्त अनिर्वचनीयरजत और ताका ज्ञान, दोनों उत्पन्न होवैं, हैं. और स्फटिकमें रक्तता प्रतीत होवै, तहां वृत्तिका संबंध स्फटिक और रक्तपुष्प दोनोंसे होवै है. रक्तपुष्पके संबंधते रक्ताकारवृत्ति होवै है. ता वृत्तिका स्फटिकते भी संबंध है और स्फटिकमें रक्तताकी छाया है. याते पुष्पका धर्म रक्तता, स्फटिकमें ताही वृत्तिका विषय है. इसरीतिसे जहां दोपदार्थनका संबंध है, तहां एकके धर्मकी दूसरेमें प्रतीति संभवै है. तहां अन्यथा ख्यातिही संभवै है. जहां दोनोंपदार्थनका संबंध नहीं, तहांअन्यथाख्याति नहीं, किंतु अनिर्वचनीयख्याति है. जैसे पुष्पसंबंधी स्फटिकमें पुष्पकी रक्तता प्रतीत होवै है तैसे स्वप्नके हस्तीपर्वतादिकनका भी अधिष्ठानते संबंध है. याते चेतनका धर्म सत्यता भी चेतनसंबंधी हस्तीपर्वतादिकमें प्रतीत होवै है; सो अन्यथाख्याति है तैसे अधिष्ठानचेतनका धर्म कारणता अधिष्ठानचेतन संबंध देशकालमें प्रतीत होवै है.

और जो पूर्व शंका करी-"अधिष्ठान चेतनका संबंध सर्वप्रपंचतेहै. जो संबंधीका धर्म अन्यथाख्यातिसे अन्यमें प्रतीत होवै, तौ चेतनकी कारणता सर्वप्रपंचमें प्रतीत हुई चाहिये." सो शंका बनै नहीं

काहेते, जैसे स्वप्नमें दो शरीर उत्पन्न होवैं हैं. एक शरीर पितारूप प्रतीत होवै है. और दूसरा शरीर पुत्ररूप प्रतीत होवै है. तहां दोनों शरीरनका स्वप्नके अधिष्ठानचेतनते संबंध भी है; तथापि पिताशरीरमें अधिष्ठान चेतनकी कारणता प्रतीत होवै है, और पुत्रशरीरमें कारणता प्रतीत होवै नहीं; किंतु पिताजन्य पुत्र है, इसरीतिसे पुत्रशरीरमें कार्यता प्रतीत होवै है, इसरीतिसे अधिष्ठान-चेतनसे संबंध तो सर्वका है, तथापि देशकालमें चेतनधर्म कारण-ताकी प्रतीति होवै है; औरनमें कार्यताकी प्रतीति होवै है. अथवा,

अधिष्ठानचेतन असंग है. सो किसीका परमार्थते कारण नहीं. मायामें आभास यद्यपि कारण है, तथापि आभासका स्वरूप मिथ्या होवै है जो आपही मिथ्या होवै सो दूसरेका कारण बनै नहीं. याते परमात्माविषे प्रपंचकी कारणता होवै, तो ताकी देशकालमें क्रमते प्रतीति संभवे, सो परमात्माविषे कारणता है नहीं. परमात्मा कारणतादिकधर्मरहित असंग है. ताकी कारणता देश कालमें प्रतीत होवै है; यह कहना संभवे नहीं. किंतु मायाकृत अनिर्व-चनीय देश काल अनिर्वचनीय कारणतावाले होवैं हैं. और परमा-र्थसे देशका कारण नहीं जैसे पुत्रहीन पुरुष स्वप्नमें पुत्र पौत्र दोनूवाकूं देखे तहां पुत्र पौत्रशरीर अनिर्वचनीय होवै है, और पुत्रशरीरमें पौत्रशरीरकी अनिर्वचनीयकारणता होवै है. तहां परमार्थसे पुत्रशरीर और पौत्रशरीरका परस्पर कार्यकारणभाव नहीं होवै है. तैसे अनिर्वचनीयकारण देश काल प्रतीत होवै है, परमार्थसे देश काल और आकाशादिकप्रपंचका कार्यकारणभाव है नहीं. इसरी-

तिसे देश काल सामग्रीविना जाग्रत्प्रपंचकी उत्पत्ति होवै है. याते स्वप्नकी न्याई जाग्रत् भी मिथ्या है.और जैसे स्वप्नके स्त्री पुत्रादिक स्वप्नमें सुखदुःखके हेतु हैं जाग्रत्में तिनका अभाव है तैसे जाग्रत्के पदार्थनका स्वप्नमें अभाव होवै है दोनों सम हैं और

जो ऐसे कहैं—जाग्रतसे स्वप्न होयके फिरि जाग्रत् होवै तहां पहली जाग्रत्के जो पदार्थ हैं;सोई स्वप्नव्यवहित दूसरे जाग्रत्में रहैं हैं. और प्रथमस्वप्नके पदार्थ दूसरे स्वप्नमें नहीं रहैं हैं. याते स्वप्नके पदार्थनते जाग्रत्के पदार्थनते जाग्रत्के पदार्थ विलक्षण हैं.

सो शंका भी सिद्धांतके अज्ञानी मूढनकी दृष्टिते होवै है. काहेते ऐसी मूर्खनकी दृष्टि है. संसारप्रवाह अनादि है,तामें जीवनकूं जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति होवै है. जाग्रत्कालमें स्वप्न सुषुप्ति नष्ट होवै है, और स्वप्नकालमें जाग्रत् सुषुप्ति नष्ट होवै है, तैसे सुषुप्तिकालमें जाग्रत् स्वप्न नष्ट होवै है. परंतु स्वप्न सुषुप्ति होवै, तब जाग्रतकालके स्त्री पुत्र पशु धनादिक दूरि होवैं नहीं; किंतु बने रहैं, तिनका ज्ञानही दूरि होवै है. फिरि जाग्रत् होवे तब प्रथम जाग्रतके विद्यमानपदार्थनका ज्ञान होवै है. यह अज्ञानी मूर्खनकी दृष्टि है. और—

सिद्धांत यह हैः—सारे पदार्थ चेतनका विवर्त है. अविद्याका परिणाम है. याते शुक्तिरजतकी न्याई जिसकालमें जो पदार्थ प्रतीत होवे तिसकालमें अधिष्ठानचेतन आश्रित अविद्याका द्विविधपरिणाम होवै है. अविद्याके तमोगुण अंशका घटादि विषयरूप परिणाम होवै है और अविद्याके सत्त्वगुणका ज्ञानरूप परिणाम होवै है. यद्यपि चेतनकूं ज्ञान कहैं हैं, याते सत्त्वगुणका परिणाम ज्ञान है. यह कहना बनै नहीं; तथापि सारेव्यापक चेतन ज्ञान

नहीं किंतु साभासवृत्तिमें आरूढ चेतनकूं ज्ञान कहैं हैं. याते चेतनमें ज्ञानव्यवहारकी संपादक वृत्ति है. इसरीतिसे चेतनमें ज्ञानपनेकी संपादक वृत्ति है इसरीतिसे चेतनमें ज्ञानपनेकी उपाधि वृत्ति है. ताके विषेभी ज्ञानशब्दका प्रयोग होवै है. जैसे लोकमें कहैं हैं; "घटका ज्ञान उत्पन्न हुवा, पटका ज्ञान नष्ट हुवा." तहां वृत्तिमें आरूढ चेतनका तो उत्पत्ति नाश संभवे नहीं, वृत्तिके उत्पत्ति नाश होवैं हैं; और ज्ञानके उत्पत्ति नाश कहैं हैं. याते वृत्तिमें भी ज्ञानशब्दका प्रयोग होवे है. सो वृत्तिरूप ज्ञान सत्त्वगुणका परिणाम है;यह कहना संभवै है. ता वृत्तिरूप परिणाममें चेतनका आभास होवै है, घटादिक विषयरूप परिणाममें चेतनका आभास होवै नहीं.काहेते विषय और वृत्ति यद्यपि दोनों अविद्याके परिणाम हैं;तथापि घटादिक विषय तो अविद्याके तमोगुणका परिणाम हैं; याते मलिन हैं,तिनमें आभास होवे नहीं. और वृत्ति, सत्त्वगुणका परिणाम स्वच्छ है; तामें आभास होवै है इस रीतिसे वृत्तिको चेतनके आभासग्रहणकी योग्यता होनेतें, वृत्ति अवच्छिन्न चेतनको ज्ञान कहैं हैं; और साक्षी कहैं हैं, घटादिक विषयकूं आभास ग्रहणकी योग्यता नहीं. इस कारणते विषयअवच्छिन्न चेतन ज्ञान नहीं, और साक्षी भी नहीं. इस रीतिसे जाग्रत्के पदार्थ और तिनकाज्ञान दोनों साथही उत्पन्न होवैं हैं और साथही नष्ट होवैं हैं. यह वेदका गूढ सिद्धांत है. याते जाग्रत्के पदार्थ दूसरी जाग्रत्में रहैं हैं; यह कहना संभवै नहीं.

यद्यपि स्वप्नते जागे पुरुषकूं ऐसी प्रत्यभिज्ञा होवै है "जो पूर्वपदार्थ थे सोई यह पदार्थ हैं." याते जाग्रत्के पदार्थनका ज्ञानके

समकाल उत्पत्ति नाश नहीं होवैं हैं, किंतु ज्ञानसे प्रथम विद्यमान होवैं हैं, और ज्ञान नाशते अनंतर भी रहै है.

तथापि जैसे स्वप्नके पदार्थ तिस क्षणमें उत्पन्न होवैं हैं; और ऐसे प्रतीत होवैं हैंः—"मेरे जन्मसे भी प्रथम उपजे ये पर्वतसमुद्रादिक हैं," तहां तत्काल उपजेपदार्थनमें बहुकाल स्थिरताकी भ्रांति होवैहै. याते जा अविद्याने मिथ्यापर्वत समुद्रादिक उपजाये हैं, तिसी अविद्यासे बहुकाल स्थिरता और स्थिरताकी प्रतीति अनिर्वचनीय उपजे है. तैसे जाग्रत्के पदार्थनविषे भी अनेक दिन स्थिरता है नहीं, किंतु अविद्याबलसे मिथ्या स्थिरता भी तिन पदार्थनके उपजिके प्रतीत होवै है. और—

जो ऐसे कहैंः—स्वप्नके पदार्थ साक्षात् अविद्याके परिणाम हैं, और जाग्रत्के पदार्थ साक्षात् अविद्याके परिणाम नहीं. किंतु घटकी उत्पत्ति दंड चक्र कुलालसे होवैं हैं. तैसे सर्वपदार्थनकी उत्पत्ति अपने अपने कारणते होवै है; साक्षात् अविद्यासे नहीं. जो साक्षात् अविद्याके परिणाम होवैं, तो आकाशादिक क्रमते पंचभूतनकी उत्पत्ति, और पंचीकरण तिनसे ब्रह्मांडकी उत्पत्ति श्रुतिमें कही है, सो असंगत होवैगी याते ईश्वरसृष्टि जाग्रत्के पदार्थ अपने अपने उपादानके परिणाम हैं, अविद्याके साक्षात् परिणाम नहीं. स्वप्नके तो सारे पदार्थ अविद्याके परिणाम हैं. तिनका एक अविद्या उपादान होनेते तिन पदार्थनकी और तिनके ज्ञानकी एक अविद्यासे, एक कालमें उत्पत्ति संभवै है. जाग्रत्के पदार्थ भिन्न भिन्न कारणसे उत्पन्न होवैं हैं. कार्यते पहले कारण

होवै है. और कारणमें कार्यका लय होवै है. याते घटकी उत्पत्तिसे प्रथम, और घटनाशते आगेमृत्पिंड रहै है, इसरीतिसे कोई पदार्थ अल्पकालस्थिर, और कोई अधिककालस्थिर कार्य कारण है; तैसे स्वप्नके नहीं.

सो शंका बने नहीं. काहेते, जाग्रत्‌के पदार्थनकी न्याईं स्वप्नके पदार्थनविषे भी कार्यकारणभाव प्रतीत होवै है. जैसे किसीकूं ऐसा स्वप्न होवैः—मेरी गऊके बच्छा हुवा है, अथवा मेरी स्त्रीके पुत्र हुवा है. तहां गऊ और स्त्रीविषे कारणताकी प्रतीति, और बहुकालस्थायिताकी प्रतीति होवै है. वत्स और पुत्रविषे कार्यता और अल्पकालस्थिरता प्रतीति होवै है, और सारेसमकाल हैं कोई किसीका कारण नहीं; किंतु गऊ वत्स स्त्रीआदिकनका अविद्याही उपादान है. तैसे जाग्रत्‌विषे भी कोई अधिककालस्थायीकारणरूपते, कोई न्यूनकालस्थायीकार्यरूपते प्रतीत स्वप्नकी न्याईं होवै है. कोई किसीका परस्पर कार्यकारण नहीं, किंतु साक्षात् अविद्याके कार्य हैं. और—

श्रुतिविषे जो क्रमते सृष्टि कही है, तहां सृष्टिप्रतिपादनमें श्रुतिका अभिप्राय नहीं, किंतु अद्वैतबोधनमें अभिप्राय है. सारे पदार्थ परमात्मासे उपजैं हैं, याते ताके विवर्त है. जो जाका विवर्त होवै सो ताकाही स्वरूप होवै है. याते सारा नामरूप ब्रह्मते पृथक् नहीं, ब्रह्मही है. इस अर्थबोधन करनेकूं सृष्टि कही है, सृष्टिका और प्रयोजन नहीं. तहां क्रमका जो कथन है, सो स्थूलदृष्टिकूं

विपरीत क्रमते लय चिंतनके निमित्त है, ताका भी अद्वैत बोधही प्रयोजन है याते क्रमकथनमें भी अभिप्रायं नहीं सृष्टिमें क्रम नहीं है किंतु सारे पदार्थ एक अविद्यासे उपजें हैं, तिनका परस्पर कार्य कारणभाव, और पूर्वउत्तरभाव, अविद्याकृत स्वमकी न्यांई मिथ्या प्रतीत होवे है. और श्रुतिने तिनकी आपसमें कार्यकारणता और पूर्वउत्तरताकही है; सो लय चिंतनके निमित्त कही है ध्यानमें यह नियम नहीं, जैसा स्वरूप होवे तैसाही ध्यान होवे है. याते जाग्रतके पदार्थनका आपसमें कारणकार्यभाव नहीं. किंतु,

सारे पदार्थ साक्षात् अविद्याके कार्य हैं, शुक्तिरजतकी न्याईं वा स्वप्नकी न्याईं अविद्याकी वृत्ति उपहितसाक्षीते तिनका प्रकाश होवे है; याते सारेपदार्थ साक्षीभास्य हैं और ज्ञानाकार और ज्ञेयाकार अविद्याका परिणाम एकही काल मैं उपजै है. साथही नष्ट होवे है याते जब पदार्थकी प्रतीति होवे, तबही प्रतीतिका विषय पदार्थ होवैहै अन्य कालमें नहीं होवे है याहीकूं दृष्टिसृष्टिवादकहैं हैं.

या पक्षमें पदार्थकी अज्ञातसत्ता नहीं, ज्ञातसत्ता है. अद्वैतवादमें यह सिद्धांत पक्ष है, या पक्षमें दो सत्ता हैं तीनि नहीं, काहेते, अनात्मपदार्थ सारे स्वप्नकी न्याईं प्रातिभासिक हैं. प्रतीतिकालसें भिन्नकालमें अनात्मकी सत्ता नहीं. याते तीसरी व्यावहारिकसत्ता नहीं या पक्षमें सारे अनात्म पदार्थ साक्षीभास्य हैं. प्रमाताप्रमाणका विषय कोई भी नहीं, काहेते, अंतःकरण और इंद्रिय तथा

घटादिक, सारी त्रिपुटी और ज्ञान, स्वप्नकी न्याईं एककालमें उपजैं हैं, तिनका विषय विषयीभाव बने नहीं, जो घटादिक विषय और नेत्रादिक इंद्रिय विषय तैसे अंतःकरण ये ज्ञानते प्रथम होवें,तो नेत्रादि द्वारा अंतःकरण कों वृत्तिरूप ज्ञान प्रमाणजन्य होवे अंतःकरण, इंद्रिय, विषय, तीनों ज्ञानके पूर्वकालमें हैं नहीं; किंतु ज्ञानसमकालही स्वप्नकी न्याईं त्रिपुटी उपजै है. याते त्रिपुटीजन्य ज्ञान कोई भी नहीं. तथापि ज्ञानविषे स्वप्नकी न्याईं त्रिपुटीजन्यता प्रतीत होवै है. याते जाग्रत्‌के पदार्थ साक्षीभास्य हैं. प्रमाणजन्य ज्ञानके विषय नहीं, याते भी स्वप्नकीं समान मिथ्या हैं. औरनकूं जाग्रत्‌के कितने पदार्थनकूं मिथ्यारूपकारिके जानैं हैं, औरनकूं सत्यरूपकारिके ऐसे जानैं हैंः—अनादिकालके पदार्थ हैं. तिनमें कोई नष्ट होवैं हैं; और तिसके समान उत्पन्न होवैं हैं ऐसे प्रपंचधाराका उच्छेद कभी होवे नहीं. जाकूं ज्ञान होवै है, ताकूं प्रपंचप्रतीति होवे नहीं, औरनकूं प्रपंच की प्रतीति होवै है. ता ज्ञानके साधन वेदगुरु हैं. तिनते परमसत्यकी प्राप्ति होवै है, ऐसी प्रतीति जाग्रत्‌में होवै है. तहां किसी पदार्थमें मिथ्यापना, किसीमें नाश, किसीमें उत्पत्ति, वेदगुरुते परमपुरुषार्थकी प्राप्ति; ये सारे अविद्याकृत स्वप्नकी न्याईं मिथ्या हैं. वासिष्ठमें ऐसे अनंत इतिहास कहे हैं क्षणमात्रके स्वप्नमें बहुकाल प्रतीत होवे; और जाग्रत्‌की न्याईं स्थायी पदार्थ प्रतीत होवे और तिनते बहुत काल भोग होवे. याते जाग्रत् पदार्थकी स्वप्नते किंचित् विलक्षणता नहीं किंतु आत्माभिन्न सर्व मिथ्या है.

शिष्यउवाच-दोहा।

लाख हजारन कल्पको, यह उपज्यो संसार ॥
याते ज्ञानी मुक्त ह्वै, बंधे अज्ञ हजार ॥ ११ ॥
झूठो स्वप्न समान जो, क्षण घटिका ह्वै याम ॥
बद्ध कौन को मुक्त है, श्रवणादिककिहकाम ॥

टीका-ईश्वरसृष्टि अनंतकल्पते अनादि है तामें ज्ञानी मुक्त होवै है, अज्ञानीकूं बंध रहै है. जो स्वप्न समान होवै तो स्वप्न एक क्षण घड़ी तथा पहर होवै है तैसे संसार भी क्षण अथवा घड़ी वा पहरकाल, वा किंचित् अधिक काल होवैगा स्वप्नकी न्याईं स्वल्पकाल स्थायी संसार होवे; तौ अनादि कालका बंध नहीं होवेगा. बंध निवृत्ति रूप मोक्षके निमित्त श्रवणादिक साधन निष्फल होवेंगे.

यद्यपि पूर्वोक्त सिद्धांतमें, बंध मोक्ष वेद गुरु अंगीकार नहीं. किंतु चेतन नित्यमुक्त है. अविद्याके परिणाम चेतनमें नाना विवर्त होवैं हैं; ताते आत्मरूपकी किंचित् मात्र भी हानि नहीं. आत्मा सदा असंग एक रस है. आजतक कोई मुक्त हुवा नहीं; आगे होवै नहीं, किंतु चेतन नित्यमुक्त है. अविद्या और ताके परिणामका चेतनसे किसी कालमें संबंध नहीं याते बंध और वेद गुरु श्रवणादिक; और समाधि तथा मोक्ष, इनकी प्रतीति भी स्वप्नकी न्याईं अविद्याजन्य है. याते मिथ्या है. इन विषे बहुत काल स्थायिता भी अविद्याजन्य है, तथापि या सिद्धांतकूं नहीं जानिके स्थूल दृष्टिका प्रश्न है.

गुरुवाक्य–दोहा।

अग्रधदेवकूं स्वप्नमें, भ्रम उपज्यो जिहिं रीति॥
शिष तोकूं यह ऊपजी, बंध मोक्ष परतीति॥ १२॥

टीका–हे शिष्य! जैसे निद्रादोषते स्वप्नमें अध्यापक, अध्ययन, वेदशास्त्र, पुराण, धर्मशास्त्र, और अध्ययन कर्त्ता, कर्म, और तिनका फल प्रतीति होवै है, और तिन सर्व पदार्थनमें सत्यताकी भ्रांति होवै है, तथापि सो स्वप्नके सारे पदार्थ मिथ्या हैं. तैसे जाग्रत्के सारे पदार्थ मिथ्या हैं. तिन विषे सत्यता प्रतीति भ्रम है. दोहेमें बंध मोक्ष ग्रहणते सर्व अनात्मका ग्रहण है. जैसे तेरेकूं हम गुरु प्रतीत होवैं हैं, वेद अर्थका बंध विघातक उपदेश करै हैं, सो तेरेकूं मिथ्याप्रतीति है. जैसे अग्रधदेवकूं स्वप्नमें मिथ्या प्रतीतिके विषय गुरु वेदादिक अनिर्वचनीय उपजैं हैं, तैसे तेरी प्रतीतिके विषे मेरेसे आदि लेके सारे अनिर्वचनीय मिथ्या हैं. सो.

अग्रधदेवको ऐसा स्वप्न हुवा है–एक अग्रध नाम देवता अनादि कालका निद्रामें सोवता हुवा स्वप्नकूं देखता भया ता स्वप्नमें तिस पुरुषकूं ऐसी प्रतीति हुई–जो मैं चंडालहूं, और महादुःखी हूं, और अस्थि मज्जा रुधिर त्वचा मांस मेद वीर्यरूप सप्तधातुसे मेरा मुख भरंया है. और महाघोर भयंकर सर्प हस्ती आदिकसे युक्त जो वन, ताके विषे मैं भ्रमण करूं हूं. सो देवता भ्रमणकर्त्ता हुवा ता वनमें अनंत स्थान देखता हुवा. कहूं नाना भयंकर प्राणी सन्मुख भक्षण करनेकूं धावन करैं हैं. और कहूं राध रुधिरसे

भरे कुंड हैं.तिन्हमें पडे प्राणी हाहाकारशब्द करैं हैं, और कहूं लोहेके तप्त स्तंभ हैं, तिनसे बंधे पुरुष रोवैं हैं, और कहूं तप्त वालु-युक्त मार्ग होयके नग्नपाद पुरुष जावैं हैं, और तिन पुरुषनकूं राजभट लोहमय दण्डोंसे ताडना करैं हैं. इसरीतिसे नाना जो भयंकर स्थान हैं,तिनकूं सो देवता देखता हुवा और कदाचित् आप भी अपराध कारिके स्वप्नमें तिन दुःखकूं प्राप्त होता भया है. और

कहूं दिव्य स्थान देखता हुवा तिन स्थानमें उत्तम देव विराजैं हैं. तिन देवनके दिव्य भोग हैं. अमृतके दर्शन मात्र से तिनकूं तृप्ति रहे है. क्षुधा तृषाकी बाधा तिन देवनकूं होवे नहीं. और मल मूत्र रहित जिनका प्रकाशमान शरीर है.और उत्तम विमानमें स्थित होयके कोई देव रमण करै है, सो विमान ता देवकी इच्छाके अनुसार गमन करैं हैं, और कहूं रंभा उर्वशीसे आदिलेके अप्सरा नृत्य करैं हैं तिनके संपूर्ण अंग दोषरहित हैं. और संपूर्ण स्त्री गुणयुक्त हैं, तिनके शरीर से कामकी प्रकाशक उत्तम सुगंध आवैं हैं. और कहूं तिनसे देव रमण करैं हैं. और कदाचित् आप-भी देवभावकूं प्राप्त होयके, तिनसे बहुत काल रमण करैं हैं. और कदाचित् तिन अप्सरानसे दिव्य स्थानमें रमण करता हुवा अक-स्मात् रुधिर मलपूरित जो कुंड हैं, तिन विषे मज्जन करैं हैं. और

एक स्थानमें सर्वका अधिपति पुरुष स्थित है. ताके आज्ञाकारी अनुचर ताके आगे स्थित हैं. कितने पुरुषकूं सो अधिपति और ताके अनुचर सौम्यरूप प्रतीत होवैं हैं. और कितने पुरुषकूं महा-

भयंकररूप प्रतीत होवैं हैं. और ता वनमें स्थित पुरुषनकूं कर्मके अनुसार फल देवैं हैं. इसरीतिसे अग्रध नाम देवता स्वप्नकालमें नाना जो स्थान हैं; तिन्हकूं देखता हुवा. और कहूं अन्यस्थानमें ब्राह्मण वेदकी ध्वनि करैं हैं. और कहूं यज्ञशालामें उत्तमकर्म करैं हैं. और कहूं उत्तम नदी वहैं हैं, तिन्हमें पुण्यके निमित्त लोक स्नान करैं हैं. और कहूं ज्ञानवान्‌आचार्य शिष्यनकूं ब्रह्मविद्याका उपदेश करैं हैं. ता ब्रह्मविद्याकूं प्राप्त होयके ता वनसे निकसी जावैहै

इसरीतिसे स्वप्नविषे अग्रध नाम देवता क्षणमात्रमें नाना आश्चर्यरूप पदार्थ ता वनमें देखता हुवा, ताकुं ऐसी प्रतीति स्वप्नमें हुई:—जो मैं अनंतकालका या वनमें स्थित हूं, या वनका कभी उच्छेद होवै नहीं.कदाचित् बागवान चारिमुखनसे नानाबीज निकासिके वनकी उत्पत्ति करै है, और जलसेचनसें पालन करैहै. और कदाचित् घोरहास्यकरिके मुखसे अग्नि निकासिके वनका दाह करै है. वनकी उत्पत्तिके संगही मेरी उत्पत्ति होवै है, और वनके दाहसंगही मेरा दाह होवै है. और सर्व वनका दाह करिके सो बागवान एकही रहै है. ताके शरीरमें वनके बीज रहैं हैं. यह प्रतीति स्वप्नवेदके श्रवणसे ता अग्रधदेवताकूं स्वप्नहीविषे हुई. तब,

वारंवार अपना जन्म मरण सुनिके ताने विचार किया, जो किसी प्रकारसे वनके बाहर निकस जाऊं और वनके बाहर नहीं भी निकसूं, तौ भी चांडालभाव मेरा दूरि होय जावे और देवभाव

सदा वन्धा रहे. सो औरतौ कोई उपाय वनते निकलनेका है नहीं-ब्रह्मविद्याके उपदेश करनेवाला अचार्य अपने शिष्यकूं वनके वाहर निकासै है. यह विचारके अचार्यकुं स्वप्नकालमेंही सो अग्रधदेवता प्राप्त हुवा. सो विधिपूर्वक प्राप्त हुआ जो शिष्य, ताकूं आचार्य. देववाणीरूप मिथ्याग्रंथ उपदेश करता हुवा.

संस्कृतग्रंथ जो मिथ्याआचार्यने मिथ्याशिष्यकूं उपदेश किया, ता ग्रंथकूं भाषाकरिके लिखैं हैं. संस्कृतग्रंथके भाषाकरनेमें मंगल करैं हैं. काहेते, मंगल करनेते जो ग्रंथकी समाप्तिके प्रतिबंधकविघ्न हैं, तिन्हका नाश होवै है. विघ्न नाम पापका है. पापते शुभकार्यकी समाप्ति होवै नहीं. ता पापका मंगलते नाश होवै है. और जो पापरहित होवे सो भी ग्रंथके आरंभमें मंगल अवश्य करै. काहेते, जो ग्रंथ आरंभमें मंगल नहीं किया होवे तौ ग्रंथकर्त्ताविषे पुरुषनकूं नास्तिकभ्रांति होयके ग्रंथमें प्रवृत्ति होवे नहीं.

सो मंगल तीनिप्रकारका है, एक वस्तुनिर्देशरूप है. और दूसरा नमस्कार है. और तीसरा आशीर्वादरूपहै, सगुण अथवा निर्गुण जो परमात्मा सो वस्तु कहिये है ताके कीर्तनका नाम वस्तुनिर्देश कहिये है. अपना अथवा शिष्यनका जो वांछितवस्तु ताके प्रार्थनाका नाम आशीर्वादरूप मंगल कहिये है. सो अपनेवांछितका प्रार्थन चतुर्थदोहेमें स्पष्ट है. शिष्यके इष्टका प्रार्थन पंचमदोहेमें स्पष्ट है.

गणेश और देवीकूं ईश्वरता पुराणमें प्रसिद्ध है, याते अनीश्वरका

चिंतन नहीं, और पुराणमें गणेशका जो जन्म है, सो जीवकी न्याईं कर्मका फल नहीं; किंतु रामकृष्णादिकनकी न्याईं भक्तजनके अनुग्रहवास्ते परमात्माकाही आविर्भाव होवै है, यह व्यास भगवान्का परम अभिप्राय है. या स्थानमें यह रहस्य है:—परमार्थदृष्टिसे जीव भी परमात्मासे भिन्न नहीं, परंतु जन्ममरणादिक बंधका आत्माविषे जो अध्यास सो जीवका जीवपना है. सो जन्मादिक बंध गणेशादिकनकूं आत्मामें प्रतीत होवै नहीं; याते जीव नहीं इसरीतिसे गणेशादिकनकूं ईश्वरता है. यातेग्रंथके आरंभमें तिनका चिंतन योग्य है नामरूप ईश्वरका जो कथन है सो सर्वकूं ईश्वरता द्योतन करनेवास्ते है और ईश्वरभक्ति और गुरुभक्ति विद्याकी प्राप्तिका मुख्यसाधन है; इस अर्थको भी द्योतन करने वास्ते है.

अथ निर्गुणवस्तुनिर्देशरूप मंगल—दोहा ।

जा विभु सत्य प्रकाशते, परकाशत रवि चंद ॥
सो साक्षी मैं बुद्धिको, शुद्धरूप आनंद ॥ १ ॥

अथ सगुण वस्तुनिर्देश मंगल—दोहा ।

नाशै विघ्न समूलते, श्रीगणपतिको नाम ॥
जा चिंतन बिन ह्वै नहीं, देवनहूके काम ॥ २ ॥

टीका—त्रिपुरवधमें यह वार्ता प्रसिद्ध है ॥ २ ॥

अथ नमस्काररूप मंगल—सोरठा ।

असुरनको संहार, लक्ष्मी पारवतीपती ॥

तिन्हैं प्रणाम हमार, भजतनकूं संतत भजैं ॥ ३ ॥

अथ स्ववांछितप्रार्थनरूप आशीर्वाद मंगल ।

दोहा ।

जा शक्तीकी शक्ति लहि, करै ईश यह साज ॥
मेरी वाणीमें बसहु ग्रंथ, सिद्धिके काज ॥ ४ ॥

अथ शिष्यवांछितप्रार्थनरूप आशीर्वाद-दोहा ।

बंधहरण सुख करण श्री, दादू दीनदयाल ॥
पढ़ै सुनै जो ग्रंथ यह, ताके हरहु जँजाल ॥ ५ ॥

अथ वेदांतशास्त्रकर्ता आचार्य नमस्कार ।

कवित्व ।

वेदवादवृक्ष बन भेदवादीवायु आय,
पकर हलाय क्रिया कंटक पसारि के ।
सरल सुशुद्ध शिष्य कंज पुनि तोरि गेरि
शूलनमैं फेरत फिरत फेरि फारिके ॥
पेखि सु पथिक भगवान जान अनुचित,
अंकमें उठाय ध्याय व्यासरूप धारिके ।
सूत्रको बनाइ जाल बनको विभागकीन्ह,
करत प्रणाम ताहि निश्चल पुकारिके ॥

टीका-जैसे वायु, वनमें पैठिके वृक्षनकं हलायके कंटक पसा

रिके, सुंदर कमलनके पुष्पनकूं स्वस्थानसे तोरिके कंटकन विषे भ्रमावै. तिन भ्रमते पुष्पकूं देखिके, पथिकके चित्तमें ऐसी आवे:— कि, ये सुंदर कमल या स्थान योग्य नहीं. किंतु उत्तम स्थान योग्य हैं. यह विचारिके तिन पुष्पनकूं उठाइ लेवै, औ फिर विचार करै जो आगे भी पवन कंटकन विषे पुष्पनकूं तोडिके भ्रमण करावैगा, याते ऐसा उपाय करूं, जाते फिर वायु कंटकममें पुष्पनकूं भ्रमावे नहीं. यह विचारिके सूत्रके जालसे कंटकयुक्त वृक्षनका विभाग करि देवे. ता जालसे पुष्पनका कंटकनमें प्रवेश होवे नहीं.

तैसे भेदवादी आचार्यरूप जो वायु है, सो वेदरूपी वनमें वाद कहिये अर्थवादरूप जो कंटकसहित वृक्ष हैं, तिन्हते सकामकर्मरूप कंटक प्रवृत करिके, सरल कहिये कपटरहित और सुशुद्ध कहिये अतिशुद्ध रागादि दोषरहित जो शिष्यरूप, कमलपुष्प तिन्हकूं समाधिरूप जो स्वस्थान तासों तोरिके सकामकर्मरूप कंटकनविषे भ्रमावते देखिके, पथिकसमानव्यापक विष्णुने विचार किया; जो यह शुद्धपुरुष या स्थान योग्य नहींहै; किंतु मेरे स्वरूपकूं प्राप्त होने योग्य है. यह विचारिके व्यास रूप धारिके, तिन्ह शिष्यनकूं उपदेशरूप अंकमें स्थापन किया. जैसे पुरुषके अंकमें स्थित पुष्प कूं वात उडावनेविषे समर्थ नहीं; तैसे ब्रह्मनिष्ठआचार्यके उपदेशमें स्थित पुरुषनकूं भेदवादी बहकावनेमें समर्थ नहीं. याते उपदेशही अंक कहिये गोद है. फिर व्यासभगवान्ने विचार किया जो भेद

वादी और पुरुषनकूं आगे भी सकामकर्मरूप कंटकनमे भ्रमावेंगे. याते ऐसा उपाय होवे, जाते आगे शिष्य भ्रमे नहीं. यह विचारिके सूत्ररूपी जालसे वेदके वाक्यरूप वृक्षनका विभाग करि दिया.

जैसे वनमें दोप्रकारके वृक्ष होवें; सकंटक और कंटकरहित तिन्हका जालसे विभाग करि देवे; औ जालते पुष्पनका कंटकसहित वृक्षनमें प्रवेश होवे नहीं. तैसे वेदमें दोप्रकारके वाक्य हैं. एक तौ कर्मकी स्तुति करिके कर्मविषे बहिर्मुख पुरुषकी प्रवृत्ति करावैं हैं;और दूसरे कर्मके फलकूं अनित्य बोधन करिके पुरुषकी निवृत्ति करावैं हैं तिन्ह वाक्यनका वेदव्यासने विभागकरिके सूत्रनसे यह बोधन किया जो सर्व वाक्यनका निवृत्तिमें तात्पर्य है; प्रवृत्तिमें किसीवाक्यका भी तात्पर्य नहीं जो प्रवृत्तिबोधक वाक्य हैं,तिन्हका भी स्वाभाविक और निषिद्ध जो प्रवृत्ति है, तासे निवृत्ति करिके विहितप्रवृत्तिसे अंतःकरण शुद्ध होयके, तासे भी निवृत्ति होयके, ज्ञाननिष्ठपुरुष होवे. इसरीतिसे निवृत्तिमें तात्पर्य है. और अर्थवाद वाक्यने जो कर्मका फल बोधन किया है, सो गुडजिह्वान्यायते किया है. फलमें तिनका तात्पर्य नहीं. यह अर्थ सूत्रनसे व्यासजीने बोधन किया है. या अर्थकूं सूत्रनसे जानिके पुरुषकी सकाम कर्ममें प्रवृत्ति होवे नहीं. जैसे सूतका जाल पुष्पनकूं कंटकनसे निरोध करै है;तैसे व्यास भगवान्के सूत्र, सकामकर्मनसे निरोध करैं हैं; याते जालरूप कहे.

दोहा।

कोउक शिष्य उदारमति, गुरुके शरणै जाइ॥
प्रश्न कियो कर जोरिके, पादपद्म शिरनाइ॥ ७॥

शिष्य उवाच-दोहा ।

भो भगवन् मैं कौन यह, संसृति कातैं होइ ॥
हेतुमुक्तिको ज्ञान वा, कर्म उपासन दोइ ॥ ८ ॥

टीका-हे भगवन् ! मैं कौन हूं ? देहस्वरूप हूं अथवा देहसे भिन्न हूं ? मैं मनुष्य हूं और मेरा शरीर है. यह दो प्रतीति होवैं हैं, याते मेरेकूं संशय है. और देहसें भिन्न भी जो आप कहो, तौ मैं कर्त्ता भोक्ता हूं अथवा अक्रिय हूं ? जो अक्रिय कहो, तो भी सर्वशरीरविषे एक हूं अथवा नाना हूं ? यह प्रथमप्रश्नका अभिप्राय है. और यह संसृति कहिये संसार, ताका कर्त्ता कौन है. याका यह अभिप्राय है-या संसारका कोई कर्त्ता है, अथवा आपही होवै है, जो कर्त्ता कहो तौ भी कोई जीव कर्त्ता है अथवा ईश्वर है, जो ईश्वर कहो तौ भी एकदेशमें सो ईश्वर स्थित है अथवा व्यापक है ? जो व्यापक है, तौ भी जैसे व्यापक आकाशते जीव भिन्न है, तैसे ता ईश्वरते जीव भिन्न है, अथवा अभिन्न है ? और मुक्तिका हेतु ज्ञान है; अथवा कर्म है, अथवा उपासना है, अथवा दो हैं ? जो दो कहो, तौ भी ज्ञानकर्म है, अथवा ज्ञानउपासना है, अथवा कर्म उपासना है ?

श्रीगुरुरुवाच-अर्द्धदोहा ।

सत चित आनँद एक तू, ब्रह्म अजन्य असंग ॥

टीका-प्रथम जो शिष्यने प्रश्न किया, ताका उत्तर कहैं हैं-"तूं सत् चित् आनंदस्वरूप है." या कहनेते देहते भिन्न कह्या. काहेते

देह असत्‌रूप है. और जडरूप है, और दुःखरूप है; और कर्त्ता-भोक्ता भी नहीं. काहेते, जाके विषे दुःख होवै, सो दुःखकी निवृत्ति औ सुखकी प्राप्तिवास्ते क्रिया करे, सो कर्त्ता कहिये है. सो तेरे विषे दुःख है नहीं याते दुःखकी निवृत्तिवास्ते क्रियाका कर्त्ता नहीं तूं आनंदस्वरूप है, याते सुखकी प्राप्तिके निमित्त भी तू क्रियाका कर्त्ता नहीं, जो कर्त्ता होवै, सोई भोक्ता होवै है. तू कर्त्ता नहीं याते भोक्ता भी नहीं. पुण्य पापका जनक जो कर्म है, ताका कर्त्ता और सुख दुःखका भोक्ता स्थूलसूक्ष्मसंघात है, तू नहीं तूसंघातका साक्षी है. याहीते आत्मा एक है, नाना नहीं. जो आत्मा कर्त्ता भोक्ता होवै तब तो नाना होवै काहेते कोई सुखी है. कोई दुःखी है और कर्त्ता भोक्ता एकही अंगीकार होवे तो एकके सुख होने तथा दुःख होनेते, सर्वकूं सुख तथा दुःख हुवा चाहिये याते भोक्ता नाना हैं, और आत्मा भोक्ता है नहीं याते एक है.

सांख्यके मतमें आत्मा कर्त्ता भोक्ता अंगीकार नहीं करिके नानापुरुष जो अंगीकार किये, सो अत्यंतविरुद्ध है. काहेते; यह सांख्यका सिद्धांत है:—सत्त्व-रज तमगुणोंकी सम अवस्थाका नाम प्रधान कहैं हैं. सो प्रधान प्रकृति है, विकृति नहीं विकृति नाम कार्यका है और प्रकृति नाम उपादानकारणका है. सो प्रधान महत्तत्त्वका उपादानकारण है; याते प्रकृति है और अनादि है, याते विकृति नहीं. और महत्तत्त्व अहंकार पंचतन्मात्रा, ये सात प्रकृति विकृति हैं, उत्तर उत्तरके प्रकृति हैं. और पूर्व पूर्वके विकृति

है. तन्मात्रा भी भूतनके प्रकृति हैं. इसरीतिसे सात प्रकृति विकृति हैं. और पंचभूत और दशइंद्रिय, और मन ये सोलह विकृति हैं प्रकृति नहीं और पुरुष; प्रकृति विकृति नहीं काहेते, जो हेतु किसी पदार्थका होवे, तो प्रकृति होवे और कार्य होवे तो विकृति होवे, सो पुरुष किसीका हेतु नहीं याते प्रकृति नहीं और कार्य नहीं; याते विकृति नहीं; यांते पुरुष असंग है इसरीतिसे सांख्य-मतमें पचीसतत्त्व हैं. तत्त्वनाम पदार्थका है सांख्यमतमें ईश्वरका अंगीकार नहीं. स्वतंत्रप्रकृति जगत्का कारण है. और पुरुषके भोग मोक्षके निमित्त प्रकृतिही प्रवृत्त होवै है; पुरुष नहीं. प्रकृतिके विषयरूप परिणामते पुरुषनकूं भोग होवै है; और बुद्धिद्वारा विवेकरूप प्रकृतिके परिणामते मोक्ष होवै है. यद्यपि पुरुष असंग है. ताकेविषे भोग मोक्ष बनै नहीं; तथापि ज्ञान सुख दुःख रागद्वेषसे आदिलेके बुद्धिके परिणाम हैं. ता बुद्धिका आत्मासे अविवेक है विवेक नहीं याते आत्मामें आरोपित बंध मोक्ष है परमार्थसे नहीं, अविवेकसिद्धि जो आत्मामें भोग,तासेही आत्माकूं सांख्यमतमें भोक्ता कहैं हैं और परमार्थसे आत्मा भोक्ता नहीं बुद्धिही भोक्ता है बुद्धि आत्मासे भिन्न है; इस ज्ञानका नाम विवेक है. ताके अभावका नाम अविवेक है. इसरीतिसे सांख्यमतमें आत्मा असंग है.

और सुखादिक बुद्धिके परिणाम हैं, याते बुद्धिके धर्म हैं, और आत्मा नाना हैं, सो वार्ता अत्यंतविरुद्ध है. जो सुख दुःख आत्माके धर्म होवें, तो सुख दुःखके प्रति शरीर भेद होनेते,

आत्माका भेद होवे. सो सुख दुःख आत्माके धर्म तो हैं नहीं किन्तु बुद्धिके धर्म हैं. याते, सुख दुःखके भेदसे बुद्धिकाही भेद सिद्ध होवै है; आत्माका भेद सिद्ध होवे नहीं जैसे एकही व्यापक आकाशमें नाना उपाधिके धर्म उपाधि और आकाशके अविवेकसे प्रतीत होवै है; तैसे एकही व्यापकआत्मामें नाना बुद्धिके धर्म अविवेकसे प्रतीत होवै हैं यह वार्त्ता सांख्यमतमें अंगीकार करनी उचित है, आत्माकूं असंग मानिके नाना अंगीकार करने निष्फल हैं. और कोई आत्मा मुक्त है औरनकूं बंध है, इसरीतिसे बंध मोक्षके भेदसे जो आत्माका भेद अंगीकार करै, सोभी बने नहीं. काहेते, जो बंध मोक्ष आत्मामें अंगीकार करैं तो बंध मोक्षके भेदसे आत्माका भेद सिद्ध होवे, सो बंधमोक्ष सांख्यमतमें असंग आत्मामें अंगीकार किये नहीं. किंतु,

बुद्धिके अविवेकसे बंध अंगीकार किया है, और बुद्धिके अविवेकसे बंधका मोक्ष अंगीकार किया है, जो वस्तु अविवेकसे होवे, और विवेकसे दूरि होवै, सो वस्तु रज्जुसर्पकी न्याईं मिथ्या होवै है, आत्माविषे भी बुद्धिके अविवेकसे बंध है,और विवेकसे दूरि होवै है, याते बंध मिथ्या है. जैसे बंध मिथ्या है, तैसे आत्माका मोक्ष भी मिथ्याहै, जामें बंध सत्य होवे, ताकाही मोक्ष सत्य होवे है, और आत्मामें बंध मिथ्या है; याते मोक्ष भी मिथ्याहीहै. इसरीतिसे मिथ्या जो बंध मोक्ष सो आकाशकी न्याईं एक आत्मामें भी बनै है,तिनके भेदसे आत्माका भेद सिद्ध होवे नहीं याते सांख्य मतमें आत्माका भेद असंगत है. तैसे;

न्यायमतमें भी आत्माका भेद असंगत है, काहेते यह न्यायका सिद्धांत हैः—सुख, ज्ञान, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, ज्ञानके संस्कार, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग,विभाग, येचतुर्दश गुण जीवरूप आत्माविषे हैं. संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग; विभाग, ज्ञान, इच्छा, प्रयत्न ये अष्ट गुण ईश्वरमें हैं. इतना भेद हैः—ईश्वरके ज्ञान, इच्छा, प्रयत्न, नित्य हैं; और जीवके तीनों अनित्य हैं, ईश्वर व्यापक है, और नित्य है; जीव नाना हैं और संपूर्ण व्यापक है, नित्य है; और जीवका ज्ञान अनित्य है, याते जब ज्ञान गुण होवै तव तो जीव चेतन है,और ज्ञान गुणका नाश होवै, तब जडरूप रहै है. ईश्वर जीवकी न्याईं आकाश, काल, दिशा, मन नित्य हैं और,

पृथिवी, जल, तेज, वायुके परमाणु, नित्य हैं, जो झरोखेमें सूक्ष्मरज प्रतीत होवै है; ताके छठे भागका नाम परमाणु है. परमाणु आत्माकी न्याई नित्य है. और भी जातिसे आदिलेके कितने पदार्थ न्यायमतमें नित्य हैं. वेदविरुद्ध सिद्धांतका वहुत लिखनेका जिज्ञासुकूं उपयोग नहीं; यातें लिखे नहीं. " मैं मनुष्य हूं, ब्राह्मण हूं "ऐसी जो देहविषे आत्मभ्रांति; तासे राग द्वेष होवै है. ता राग द्वेषते धर्म अधर्मके निमित्त प्रवृत्त होवै है; तिनते शरीरके संबंधद्वारा सुखदुःख होवैं हैं, इस रीतिसे न्यायमतमें आत्माकूं संसारका हेतु भ्रांतिज्ञानहै,

सो भ्रांतिज्ञान तत्त्वज्ञानसे दूरि होवै है; देहादिक संपूर्ण पदार्थ-

नसे " आत्मा भिन्न है " या निश्चयका नाम तत्त्वज्ञान है. ता तत्त्व-ज्ञानसे " मैं ब्राह्मण हूं मनुष्य हूं " यह भ्रांति दूरि होवै है. भ्रांति-के नाशते राग द्वेषका अभाव होवै है; तिन्हके अभावते धर्म अधर्मके निमित्त प्रवृत्तिका अभाव होवै है, प्रवृत्तिके अभावते शरीर संबंधरूप जन्मका अभाव होवै है, और प्रारब्धका भोगते नाश होवै है. शरीरसंबंधके अभावते इक्कीसदुःखका नाश होवै है. सो दुःखका नाश वही न्यायमतमें मोक्ष है. एक शरीर और श्रोत्र, त्वक्, नेत्र, रसना, घ्राण, मन ये षट् इंद्रियोंके विषय, और षट् इंद्रियोंके ज्ञान, और सुख, दुःख, ये इक्कीस दुःख हैं, शरीरादिक भी दुःखके जनक हैं, याते दुःख कहिये है. और स्वर्गादिकोंका सुख भी नाशके भयते दुःखका हेतु है. याते दुःख कहिये है.

यद्यपि न्यायमतमें श्रोत्र मन नित्य है तिन्हका नाश बने नहीं; तथापि जिस रूपकरिके श्रोत्र मन दुःखके हैं; तिसरूपका नाश होवै है. पदार्थनके ज्ञानकी उत्पत्ति करिके दुःखके हेतु हैं. सो पदार्थनका ज्ञान मोक्षकालमें श्रोत्र और मन करै नहीं. काहेते, जो कर्णगोलकमें स्थित आकाश है. सो श्रोत्र कहिये है. ता कर्णगो-लकका मोक्षकालमें अभाव है. याते आकाशरूप श्रोत्रइंद्रिय है भी, परंतु गोलकके अभाव ते ज्ञान होवै नहीं. इसरीतिसे ज्ञानका जनक जो श्रोत्रइंद्रियका स्वरूप, सोई दुःख है. और ताका ही नाश होवै है: और–

आत्माके साथ मनके संयोगते ज्ञान होवै है सो मनका संयोग-

न्यायसिद्धांतमें एककी क्रियाते अथवा दोकी क्रिया तें होवै है. जैसे बीजवृक्षका संयोग एक बीजकी क्रियाते होवै है, और दो मेषनका संयोग दोकी क्रियाते होवै है;तैसे विभु आत्मामें तौ क्रिया कभी भी होवै नहीं. और मोक्षकालमें मनमें भी क्रिया होवै नहीं याते संयोगवान् मनकाही मोक्षकालमें अभाव होवै है. और–

कोई एकदेशी त्वचाके साथ मनके संयोगकूं ज्ञानका हेतु कहें हैं. आत्माके संयोगकूं नहीं. सुषुप्तिमें पुरीतत् नाम नाडीविषे मन प्रवेश करै है–त्वचासे मनका संयोग है नहीं. याते सुषुप्तिमें ज्ञान होवै नहीं. तिन्हके मतमें त्वचासे संयोगवाला मनही ज्ञानद्वारा दुःखका हेतु होनेते दुःख है; केवल मन नहीं. मोक्षमें त्वचाके नाश होनेते ताके साथ संयोग है नहीं. याते ज्ञान होवै नहीं. मोक्षकालमें मन है भी परंतु दुःखका हेतु जो ज्ञानका जनक त्वचासे संयोगवाला मन ताका संयोगके नाशते नाश होवै है. इसरीतिसे मोक्षकालमें परमात्मासे भिन्नही दुःखरहित होयके, व्यापक आत्मा जडरूप स्थित होवै है. काहेते,ज्ञानगुणते आत्माका प्रकाश होवै है. सो जीवका ज्ञान संपूर्ण इंद्रियजन्यही है; नित्य है नहीं. ता इंद्रियजन्य ज्ञानका मोक्षकालमें नाश होवै है, याते प्रकाशरहित जडरूप होयके आत्मामें मोक्षकाल स्थित होवै है यह न्यायका सिद्धांत है. और–

न्यायमततें पूर्वउक्तप्रकारसे सुख दुःख और बंध मोक्ष आत्माकूं होवैं हैं, याते आत्मा नाना है, और संपूर्ण व्यापक है. सर्व अल्प-

पदार्थसे जो संयोग सोई न्यायमतमें व्यापकका लक्षण है. और सजातीय, स्वगतभेदका अभाव, व्यापकका लक्षण नहीं. काहेते न्यायमतमें यद्यपि आत्मा निरवयव है, याते स्वगतभेदका तो ताके विषे अभाव हैं भी, परंतु सजातीय, और विजातीयके भेदका अभाव नहीं किंतु सजातीय दूसरा आत्मा, ताका भेद आत्मामें है. और विजातीय घटादिकनका भेद भी आत्मामें है. याते सजातीय, विजातीय, स्वगतभेदका अभाव व्यापकका लक्षण नहीं; किंतु सर्व अल्पपदार्थनसे संयोगही व्यापकका लक्षण है.

ताकेविषे कोई शंका करै है—न्यायमतमें आत्माकी न्याई आकाश, काल, दिशा भी व्यापक हैं. और परमाणु सूक्ष्म हैं, निरवयव हैं; तिनसे सर्व व्यापकपदार्थनका संयोग बने नहीं. काहेते जो परमाणु सावयव होवैं, तब तो किसीदेशमें आत्माका संयोग होवै, और किसी देशमें अन्यव्यापकपदार्थनका संयोग होवै. सो परमाणु सावयव हैं नहीं; किंतु निरवयव हैं; और अतिसूक्ष्म हैं तिन्हके साथ एकही देशमें सर्व व्यापकपदार्थनका संयोग होवेगा सो बने नहीं काहेते, जो एकके संयोगसे स्थान निरुद्ध है; ता देशमें अन्यपदार्थनका संयोग बनै नहीं. याते नानापदार्थनकूं व्यापकता बने नहीं, एकही कोई पदार्थ व्यापक बनै है.

यह शंका बनै नहीं. काहेते, जो सावयववस्तुका संयोगहै सो तो अन्यके संयोगका विरोधी है. जैसे जा पृथिवी देशमें हस्तका संयोग होवै, ता देशमें पादका संयोग होवै नहीं और निरवयवका

संयोग, स्थानकूं रोके नहीं, याते अन्यके संयोगका विरोधी नहीं यह वार्त्ता अनुभवसिद्ध है. जैसे घटके जा देशमें आकाशका संयोगहै; ता देशमेंही कालका और दिशाका संयोग भी है, जो कोई घटका देश आकाश कालदिशासे बाहिर होवै,तो तादेशमें आकाशकाल दिशाका संयोग होवै नहीं; सो बाहिर तो कोई देश है नहीं, किंतु सर्व पदार्थनके सर्वदेश आकाश, काल, दिशामेंही हैं. याते सर्वपदार्थनके सर्व देशनविषे आकाश, काल, दिशाका संयोग है. इसरीतिसे परमाणुविषे भी एकही देशमें नानानिरवयवविभुका संयोग बनें है कोई दोष नहीं, याते आत्मा नाना है, और संपूर्ण व्यापक है.

सर्वका सर्वपदार्थनसे संयोग है यह न्यायका सिद्धांत है सो समीचीन नहीं. काहेते, जो व्यापक आत्मा नाना अंगीकार करें तो सर्वशरीरमें सर्व आत्माका संबंध अंगीकार करना होवैगा. याते कौन शरीर किसका है यह, निश्चय नहीं होवैगा. किंतु एकएक आत्माके सर्व शरीर हुये चाहियें जो ऐसे कहैं:—जाके कर्मसे जो शरीर उत्पन्न हुवा है, ता आत्माका सो शरीर है. सो भी बनै नहीं काहेते; कर्म जा शरीरसे होवै है, ता कर्मकरनेवाले पूर्वशरीरमें भी सर्वआत्मा का संबंध है, याते कर्म भी सर्व आत्माकेही होवेंगे एकके नहीं. और ऐसे कहैं:—जा आत्माके मनसहित शरीर है ता आत्माका सो शरीर है. सो भी बनै नहीं. काहेते शरीरकी न्याई मनके साथ भी सर्व आत्माका संबंध है. ताकेविषे यह निश्चय होवै नहीं. जो कौनसा मन किस आत्माका है; किंतु सर्व आत्माके सर्व मन हुए चाहियें. तैसे इंद्रिय भी सर्व

आत्माके सर्वही होवेंगे. बाहरके पदार्थनविषे "यह मेरा है. यह और का है" ऐसा व्यवहार भी शरीरनिमित्तक है. सो शरीर सर्व आत्माके सर्व हैं. याते बाहरके पदार्थ भी सर्व आत्माके सर्व हुए चाहिये. और-

जो ऐसे कहैं—जा आत्माकूं जा शरीरमें अहंबुद्धि और मम-बुद्धि होवे; ता आत्माका सो शरीर है. सो अहंबुद्धि और ममबुद्धि एक है; याते सर्व आत्मामें रहे नहीं. किंतु एक धर्म एकही धर्मीविषे रहै है. याते एकही आत्माका शरीर है. जा आत्माका जो शरीर है, ता शरीरके संबंधी मन इंद्रिय और बाहरके पदार्थ ता आत्माके हैं. याते व्यापक नाना आत्मा अंगीकार करनेमें भी दोष नहीं.

सो वार्त्ता भी बनै नहीं. काहेते, यद्यपि अहंबुद्धि एकदेहमें एकही आत्माकूं होवे है, तथापि सो न्यायमतमें बनै नहीं, किंतु सर्व आत्माकूं एकदेहमें अहंबुद्धि हुई चाहिये काहेते न्यायमतमें बुद्धि नाम ज्ञानका है सो ज्ञान आत्मा और मनके संयोगते होवै है. सो मनके साथ संयोग सर्व आत्माका है. याते मनके संयोगसे जैसे एक देहमें एक आत्माकूं अहंबुद्धि होवे; तैसे एक देहमें सर्व आत्माकूं अहंबुद्धि हुई चाहिये. जो ऐसे कहैं:—यद्यपि मनका संयोग तौ सर्व आत्मासे है; तथापि जा आत्मामें ज्ञानका जनक अदृष्ट है; ता आत्माकूंही अहंबुद्धि होवै है, तौ भी सर्वकूं ही ज्ञान हुवा चाहिये. काहेते, जो व्यापक नाना आत्मा अंगी-कार करें, तो एक शरीरकी शुभ अशुभ क्रियाते, शरीर में स्थित

सर्व आत्मामेंही अदृष्ट हुये चाहियें; यह वार्त्ता पूर्व कहि आये व्यापक जो नाना आत्मा अंगीकार करें, तो एक देहमें सर्वकूं सुख दुःखका भोग हुवा चाहिये, याते व्यापक नानाकर्त्ता भोक्ता आत्मा है; यह न्यायका सिद्धांत समीचीन नहीं. और—

हमारे सिद्धांतमें तो कर्त्ता भोक्ता अंतःकरण है, सो अंतःकरण नाना है, व्यापक और अणु नहीं किंतु शरीरके समानता अंतः-करणका परिमाण है. दीपकके प्रकाशकी न्याईं बडे शरीरकूं प्राप्ति होवे, तब अंतःकरणका विकाश होवे है; और न्यूनशरीरमें संकोच होवै है. यह वार्ता सिद्धांतबिंदुके व्याख्यानमें मधुसूदनस्वामीने प्रतिपादन करी है. जा अंतःकरणका जा शरीरसे संबंधहै; ता अंतःकरणकूं ता शरीरसे भोग होवै है.

जो अंतःकरणकूं व्यापक अंगीकार करें, तो सर्वशरीर सर्वके होवें; और भोग भी सर्वकूं होवैं, सो व्यापक अंतःकरण नहीं; याते दोष नहीं. और अंतःकरणकूं अणु अंगीकार करें, तौ शरीरके एकदेशमें अंतःकरण रहै है, ऐसा अंगीकार करना होवैगा, सो वार्त्ता बनै नहीं. काहेते, जो एककालमेंही पाद और मस्तकमें कंटकवेध होवे, तौ दोनों स्थानमें एकही कालमें पीडा होवै है; सो नहीं हुई चाहिये काहेते, जो अंतःकरण अणु होवै, तौ एकही स्थानमें एककालमें रहै याते जा स्थानमें अंतःकरण होवै, ता स्थान-मेंही पीडा हुई चाहिये; दोनों स्थानमें नहीं. याते अंतःकरण अणु

और व्यापक नहीं; किंतु शरीरके समान है. याते, कोई दोष नहीं. अणु और व्यापकसे विलक्षण जो है; ताकूंही मध्यपरिमाण कहे हैं. और—

न्यायमतमें किसी नवीनने ऐसा अंगीकार किया है:—आत्मा नाना है. कर्त्ता भोक्ता है, व्यापक नहीं; याते भोगका संकर नहीं अणु भी नहीं. याते दोस्थानमें पीडाका असंभव भी नहीं. किंतु जैसे वेदांतमतमें अंतःकरण मध्यम परिमाण है; तैसे आत्मा भी मध्यम परिमाण है. ताके विषे चतुर्दश गुण रहै हैं.

सो भी समीचीन नहीं. काहेते जो आत्माकूं संकोचविकाशवाला अंगीकार करें, तौ दीपकी प्रभाकी न्याई आत्मा विकारी, और विनाशवाला होवेगा. यातें मोक्षप्रतिपादक शास्त्र और साधन निष्फल होवेंगे. और मध्यम परिमाण अंगीकार करिके संकोचविकाश अंगीकार नहीं करैं, तो कौनसे शरीरके समान आत्माकूं अंगीकार करें, यह निश्चय होवे नहीं जो मनुष्यशरीरके समान अंगीकार करें; वो जब आत्मा हस्तीके शरीरकूं प्राप्त होवे, तब सर्व शरीरमें नहीं होवेगा. याते जा देशमें हस्तीके आत्मा नहीं है, ता देशमें पीडा नहीं हुई चाहिये. और हस्तीके शरीरके समान अंगीकार करें, तो तासे और शरीर बडे है, तिन्हके एकदेशमें पीडा नहीं हुई चाहिये. और सर्वसे बडा किसीका शरीर है नहीं, जाके समान आत्मा अंगीकार करें. और सर्वसे बडा विराट्का शरीर है, ताके समान जो आत्मा अंगीकार करें, तो विराट्के

शरीरके अंतर्भूत सर्व शरीर हैं. याते सर्व आत्माका सर्व शरीरसे संबंध होवेगा; ताकेविषे पूर्वदोष कहेही हैं. और यह नियम है:— जो मध्यम परिमाणवस्तु होवे, सो शरीरकी न्यांई अनित्य होवै है, याते आत्मा भी अनित्य होवेगा. और अंतःकरणका तौ हमारे मतमें ज्ञानते नाश होवै है; याते अनित्य है. मध्यम परिमाण अंगीकार कियेसे दोष नहीं. इसरीतिसे नवीन तार्किकका मत भी समीचीन नहीं. और—

जो कोई ऐसे कहै:—आत्मा नाना है, और अणु है, सो बात भी बने नहीं. काहेते, जो आत्माकूं कर्त्ता भोक्ता अंगीकार करैं, तो अंतःकरणके अणुपक्षमें जो दोष कह्या. सो दोष होवेगा. और कर्त्ता भोक्ता अंगीकार नहीं करें तो नाना आत्मा अंगीकार निष्फल होवेंगे. एकही व्यापक सर्व शरीरमें अंगीकार करना योग्य है. और कर्त्ता भोक्ता अंगीकार नहीं करें तो अपने सिद्धांतका भी त्याग होवेगा. काहेते अणुवादीका यह सिद्धांत है:—ज्ञान सुख दुःख धर्मसे आदिलेके आत्माके धर्म हैं, याते जो आत्माकूं अणु अंगीकार करैं, तौ जा शरीरदेशमें आत्मा नहीं है, सो देश मृतसमान है; ताके विषे पीडादिक नहीं हुए चाहियें.

और जो ऐसे कहै:—यद्यपि आत्मा तो शरीरके एक देशमें है; परंतु कस्तूरीके गंधकी न्यांई ताका ज्ञान सारे शरीरमें व्याप्त है. याते सर्वशरीरविषे अनुकूलप्रतिकूलके संबंधकूं अनुभव करै है.

सो भी बनै नहीं. काहेते यह नियम है:—जितने देशमें गुण-

वाच्या रहे; तासे बाहर गुण रहे नहीं, किंतु गुणीमेंही गुण रहै है. जैसे रूप, घटादिकनते बाहर रहे नहीं; तैसे आत्मासे बाहर ज्ञान भी बने नहीं. और कस्तूरीके सूक्ष्मभाग जितने देशमें व्याप्त होवैं उतने देशमेंही गंध व्याप्त होवे है; याते कस्तूरीका दृष्टांत भी बनै नहीं. "याते आत्मा अणु है" यह पक्ष भी बनै नहीं. और—

कहूं श्रुतिमें आत्मा अत्यंत अणुसे भी अणु जो कह्याहै;सो दुर्विज्ञेय है;याते कह्या है. जैसे अत्यंत अणुवस्तुका मंददृष्टिपुरुषकूं ज्ञान होवै नहीं, तैसे बहिर्मुखपुरुषकूं आत्माका भी ज्ञान होवे नहीं, याते अणुके समान है; यह श्रुतिका अभिप्राय है;और"आत्मा अणु है" यह अभिप्राय नहीं. काहेते, बहुतस्थानमें व्यापकरूप, आपही वेदने प्रतिपादन किया है; याते अणु नहीं.इसरीतिसे "व्यापक तथा मध्यम परिमाण अथवा अणु आत्मा नाना है," यह कहना संभवे नहीं.

परिशेषते एक व्यापक आत्माहै ताके विषे धर्म अधर्म सुख दुःख और बंध मोक्ष जो अंगीकार करैं; तौ किसीकूं सुख और किसीकूं दुःख किसीकूं बंध किसीकूं मोक्ष ऐसा व्यवहार नहीं होवेगा. याते धर्मादिक बुद्धिके धर्म हैं. यद्यपि बुद्धि जड है, याते ताके विषे भी धर्मसुखादिक बनै नहीं; तथापि आत्माके धर्म नहीं हैं; इस अभिप्रायते बुद्धिके धर्म कहिये हैं. और "बुद्धिके धर्म हैं," याकेविषे अभिप्राय नहीं. बुद्धि और सुखादिक आत्मामें अध्यस्त हैं. जो वस्तु जामें अध्यस्त होवै, सो तामें परमार्थसे होवै नहीं. जैसे सर्प रज्जुमें अध्यस्त है, सो परमार्थसे रज्जुमें है नहीं तैसे बुद्धि और

सुखादिक आत्मामें हैं नहीं. और अध्यस्त वस्तु भी किसीका आश्रय होवै नहीं, याते बुद्धि भी सुखादिकनका आश्रय है नहीं; परंतु अज्ञान तो शुद्धचेतनमें अध्यस्त है, और अंतःकरण अज्ञान उपहितमें अध्यस्त है और अंतःकरण उपहितमें धर्म अधर्म सुख-दुःख बंध मोक्ष, अध्यस्त हैं. इसरीतिसे आत्मामें धर्मादिकनके अधिष्ठानपनेका अंतःकरण उपाधिहै,याते अंतःकरणके धर्म कहियें हैं.

जो अंतःकरणविशिष्टमें धर्मादिक अध्यस्त कहैं, तो बनै नहीं का हेते, विशेषणयुक्तका नाम विशिष्ट है. धर्मादिक अध्यासका अधिष्ठान जो आत्मा ताका अंतःकरण जो विशेषण अंगीकार करें,तो अंतः-करण भी धर्मसुखादिकनका अधिष्ठान होवेगा. सो वार्त्ता बनै नहीं. काहेते, मिथ्यावस्तु अधिष्ठान होवे नहीं. याते आत्मामें धर्मादि-कनके अध्यासका अंतःकरण विशेषण नहीं; किंतु उपाधिहै उपा-धिका यह स्वभाव है:—आप तटस्थ होयके जितने देशमें आप होवे, उतने देशमें स्थित वस्तुकूं जनावे. और विशेषणका यह स्वभाव है:—जितने देशमें आप होवै, उतने देशमें स्थित वस्तुकूं अपनेसहित जनावे विशेषणवानकूं विशिष्ट कहैं हैं;और उपाधिवा-लेकूं उपहितकहैंहैं. इसरीतिसे अंतःकरणविशिष्टमें जोधर्मादिअध्यस्त कहें, तो जितने देशमें अंतःकरणहै, ता देशमें स्थितचेतनभाग और अंतःकरण दोनोंकूं अधिष्ठानताहोवे,सो अंतःकरण आपभी अध्यस्तहै, याते अधिष्ठान बनै नहीं. इसअभिप्रायते अंतःकरणउपहितमें धर्मादिक अध्यस्त कहे. याते " जितने देशमें अंतःकरण है, उतने देशमें

स्थित चेतन भागमात्रमें अधिष्ठानता है; अंतःकरणमें नहीं. ” यह वार्ता बनै है. तैसे.

अंतःकरण भी अज्ञानउपहितमें अध्यस्त है; अज्ञानविशिष्टमें नहीं. इसरीतिसे अध्यस्त जो धर्मादिक, तिन्हका अधिष्ठान आत्मा है. अध्यासके अधिष्ठानपनेकी अंतःकरणउपाधि है. याते बुद्धिके धर्म कहें हैं. और अविवेकसे अंतःकरण आत्मा दोनोंविषे प्रतीत होवे है. याते अंतःकरण विशिष्ट जो प्रमाता, ताके धर्म कहें हैं. धर्मादिक अंतःकरणके धर्म होवें, अथवा अंतःकरणविशिष्ट-प्रमाताके धर्म होवें, अथवा रज्जु सर्प, स्वप्नके पदार्थ, गंधर्वनगर, नभनीलताकी न्याई किसीके धर्म ना होवें; सर्वप्रकारसे आत्माके धर्म नहीं यद्यपि आत्मामें अध्यस्त हैं, तथापि जो वस्तु जामें अध्यस्त होवै सो ताहीमें परमार्थसे होवे नहीं. अध्यस्त नाम कल्पितका है. याते राग, द्वेष, धर्म, अधर्म, सुख, दुःख, बंध, मोक्षसे रहित यह व्यापक आत्मा है. सो—

आत्मा सत् है. जा वस्तुका ज्ञानसे अभाव होवे, सो असत् कहिये है. जाकी निवृत्ति किसी कालमें भी नहीं होवै, सो सत् कहिये है. सर्वपदार्थनका और तिनकी निवृत्तिका आत्मा अधिष्ठान है, जो आत्माकी निवृत्ति होवै, तौ ताका और अधिष्ठान कह्या चाहिये. काहेते, शून्यमें निवृत्ति होवै नहीं. जो आत्मा और ताकी निवृत्तिका अन्य अधिष्ठान अंगीकार करें, तो ताका और अधिष्ठान अंगीकार करना होवैगा. इसरीतिसे अन्य अवस्था

होवैगी. और आत्माकी जो निवृत्ति अंगीकार करैं, ताकूं यह पूछैं हैं:—जो आत्माकी निवृत्ति किसीने अनुभव करी है, अथवा नहीं ? जो ऐसे कहैं; अनुभव करी है. सो बने नहीं. काहेते, जो अनुभव करनेवाला है, सोई आत्मा है. और अपना स्वरूप है, ताकी निवृत्तिका अनुभव अपने मस्तकछेदनके अनुभव समान है, यातैं आत्माकी निवृत्तिका अनुभव बने नहीं. और ऐसे कहैं जो—आत्माकी निवृत्ति तौ होवै है, परंतु ताकी निवृत्तिका अनुभव किसीकूं नहीं. तौ यह वार्त्ता सिद्ध हुई, जो आत्माकी निवृत्ति तौ होवै नहीं. काहेते, जो वस्तु किसीने अनुभव नहीं करी, सो वंध्यापुत्रके समान होवै है. याते आत्माकी निवृत्ति होवै नहीं, याहीते आत्मा सत है. और—

आत्मा चित है. प्रकाशरूप जो ज्ञान, सो चित कहिये है, जो अप्रकाशरूप आत्मा अंगीकार करें, तौ अनात्मजडवस्तुका प्रकाश कभी होवै नही. जो अंतःकरण और इंद्रियनसे पदार्थनका प्रकाश कहैं, तो बनै नहीं काहेते, अंतःकरण और इंद्रिय परिच्छिन्न हैं, याते कार्य हैं. जो परिच्छिन्न होवै, सो घटकी न्याईं कार्य होवै है. और अंतःकरण इंद्रिय भी परिच्छिन्न है, याते कार्य है. देशकालते जाका अंत होवै, सो परिच्छिन्न कहिये है जो कार्य होवै सो जड होवै है. याते अंःकरण और इंद्रियें भी जड हैं. तिनके किसीवस्तुका प्रकाश बने नहीं. याते जो आत्मा सर्वका प्रकाश करै है, सो प्रकाशरूप है. और—

जो ऐसे कहैं—आत्मा प्रकाशरूप नहीं, किंतु आत्मा तौ जड है. और ताकेविषे ज्ञानगुण है; ता ज्ञानते आत्मा और अनात्माका प्रकाश होवै है. ताकूं यह पूछैं हैं—आत्माका ज्ञानगुण नित्य है, अथवा अनित्य है ? जो नित्य कहैं तौ आत्माका स्वरूपही ज्ञान सिद्ध होवैगा. काहेते, यह नियम है—जो आत्मासे भिन्न होवै, सो अनित्य होवै है. जो ज्ञानकूं आत्मासे भिन्न अंगीकार करैं, तो अनित्यही होवैगा. याते नित्य मानिके आत्मासे भिन्न ज्ञान है यह कहना बनै नहीं. और अनित्य अंगीकार करें तो घटादिकनकी न्याईं जड होवैगा. जो अनित्य वस्तु होवै, सो जड होवै है याते "ज्ञान अनित्य है" यह कहना बनै नहीं. किंतु ज्ञान नित्यही है सो नित्यज्ञान आत्मस्वरूपही है. जो अनित्य अंगीकारकरें, तो कदाचित् आत्मामें ज्ञान होवै, और कदाचित् नहीं, याते आत्मासे भिन्न भी ज्ञान होवै; और नित्य अंगीकार कियेसे तो भिन्न होवै नहीं. जो गुण होवै सो गुणवान्‌विषे कदाचित् रहै; और कदाचित् नहीं भी जैसे वस्त्रका नील पीत गुण कदाचित् रहै, और कदाचित् नहीं रहै याते जो गुण होवै, सो आगमापायी होवै है. और ज्ञानकूं नित्यता होनेते, आगमापायी है नहीं, याते आत्माका स्वरूपही ज्ञान है और—

ज्ञानकूं अनित्य कहैं, तौ इंद्रिय अथवा अंतःकरणसे ज्ञान उत्पन्न होवै है, यह कहना होवैगा. सो बनै नहीं. काहेते, सुषुप्तिमें इंद्रियादिक तो हैं नहीं, और सुखका ज्ञान होवै है; सो नहीं हुवा

चाहिये जो सुषुप्तिमें सुखका ज्ञान अंगीकार नहीं करें, तौ जागिके "मैं सुखसे सोया" यह सुषुप्तिमें सुखकी स्मृति होवै है; सो नहीं हुई चाहिये. जा वस्तुका पूर्व ज्ञान होवै ताकी स्मृति होवै हैं; और अज्ञातवस्तुकी स्मृति होवै नहीं. और सुषुप्तिके सुखकी जागिके स्मृति होवै है. याते सुषुप्तिमें सुखका ज्ञान होवै है. ता ज्ञानके जनक इंद्रियादिक सुषुप्तिमें हैं नहीं; याते नित्य है ज्ञानकूं त्यागिके आत्मा कभी भी रहै नहीं याते ज्ञान आत्माका स्वरूप है जैसे उष्णताकूं त्यागिके अग्नि कभी भी रहै नहीं; याते उष्णता वह्निका स्वरूपहै तैसे ज्ञान भी आत्माका स्वरूप है. जो आगमापायी होवै, सो गुण होवैहै उष्णता और ज्ञान आगमापायी हैं नहीं, याते अग्नि और आत्माके स्वरूप हैं जो कदाचित् होवै, सो आगमापायी कहिये है.

उत्पत्ति और विनाश अंतःकरणकी वृत्तिके होवैं हैं, ज्ञानके नहीं आत्मस्वरूप जो ज्ञान है, सो विशेषव्यवहारका हेतु नहीं; किंतु ज्ञान-सहितवृत्ति अथवा वृत्तिमें आरूढज्ञान, व्यवहारका हेतु है. यह अव-च्छेदवादकी रीति है. और आभासवादमें आभाससहितवृत्तिसे व्यव-हार होवै है. आभासद्वारा अथवा साक्षात्वृत्तिद्वारा आत्मस्वरूपज्ञा-नते ही सर्वव्यवहार सिद्ध होवै है; नहीं तौ होवै नहीं. इसरीतिसे सर्व का प्रकाशक ज्ञानस्वरूप आत्मा है. याते चित् है. और आत्मा आनंदरूप है. जो आत्मा आनंदरूप नहीं होवै, तो विषयसंबं-धसे स्वरूपआनंदका भान होवै है, सो नहीं हुआ चाहिये. विषयमें आनंद नहीं, यह वार्त्ता पूर्व कही है. जो विषयमें

आनंद होवै, तो जा विषयते एकपुरुषकूं सुख होवे, तासेही अन्यकूं दुःख होवे है. जैसे अग्निके स्पर्शते अग्निकीटकूं, और सर्पसिंहके रूप देखनेते सर्पिणी सिंहिनीकूं आनंद होवे है, और अन्यपुरुषनकूं दुःख होवे है. सो नहीं हुवा चाहिये और सिद्धांतमें तौ अग्निकीटकूं अग्निस्पर्शकी इच्छा होवै, तब चंचलबुद्धिमें स्वरूप आनंदका भान होवै नहीं. अग्निसंबंधते क्षणमात्र इच्छा दूरि होयके निश्चलबुद्धिमें स्वरूप आनंदका भान होवै है अन्यपुरुषनकूं अग्निसंबधकी इच्छा है नहीं, किंतु अन्यपदार्थनकी इच्छा है. तिन पदार्थनकी इच्छा अग्निसंबंधसे दूरि होवै नहीं. याते चंचलअंतःकरणमें अग्निसंबंधसे आनंद होवै नहीं. याके विषे;

यह शंका होवैहैः—जो इच्छारूप अंतःकरणकी वृत्तिहै, सो तो विषयप्राप्तिसे नाशकूं प्राप्त होय गई, और अन्य वृत्तिका कोई निमित्त है नहीं, याते उत्पत्ति हुई नहीं. और वृत्तिसे विना स्वरूप आनंदका भान होवै नहीं, याते विषयमेंही आनंद है.

सो शंका बनै नहीं. काहेते यद्यपि इच्छारूप तौ अंतःकरणकी वृत्तिका अभाव है; सो इच्छारूप वृत्ति होवे तौ भी ताकेविषे आनंदप्रकास होवै नहीं. काहेते इच्छारूप वृत्ति राजस है, और आनंदका प्रकाश सात्त्विकवृत्तिमें होवै है. तथापि वांछित पदार्थ जो मिल्या है, ताके स्वरूपकूं विषय करनेवास्ते जो ज्ञानरूप अंतःकरणकी वृत्ति है; सो सात्त्विक है. काहेते; सत्त्वगुणसे ज्ञान होवै है, यह नियम है. ता सात्त्विकवृत्तिमें आनंदका भान होवै

है, परंतु सो ज्ञानरूप वृत्तिं बहिर्मुख है. ताके पृष्ठभागमें स्थित जो अंतःकरणउपहित चेतनस्वरूपआनंद, ताका तिस वृत्तिसे ग्रहण होवै नहीं. याते विषयउपहितचेतन रूप आनंदका भान होवै है. सो विषय उपहितचेतनआत्मासे भिन्न नहीं याते आत्मानंदकाही विषयमें भान कहिये है ता ज्ञानरूप वृत्तिविषे विषयके साथ नेत्रादिकनका संबंधही निमित्त है. अथवा—

ज्ञानरूप जो बहिर्मुखवृत्ति, तासे अन्यअंतर्मुखवृत्ति, होवै है. ताकेविषे अंतःकरणउपहित चेतनरूपआनंदकाही भान होवै है यह उत्तमसिद्धांत है. ता वृत्तिकी उत्पत्तिमें इच्छादिकनका अभावही निमित्त है. जैसे इच्छादिकनते रहित जो एकांतमें उदासीन पुरुष स्थित है, ताकूं बहिर्मुखज्ञान रूपते कोई वृत्ति होवे नहीं, आनंदका भान होवै है. याते इच्छादिकनके अभावरूप निमित्तते अंतर्मुखवृत्ति आनंदग्रहणकरनेवाली होवैहै तासे वांछित विषके लाभसे इच्छादिकनका अभाव होनेते ज्ञानसे अनंतर अंतर्मुखवृत्ति होवै है. तिसते अंतःकरणउपहितआनंदकाही ग्रहण होवै है. सो स्वरूप आनंदका ग्रहण और विषयका ज्ञान अत्यंतव्यवहित है. याते पुरुष कुं ऐसी भ्रांति होवैहै-" मैंने विषयमें आनंद अनुभवकियाहै" प्रथमपक्ष से यह पक्ष उत्तम है. काहेते जो विषयकी ज्ञानरूपवृत्ति है; तासे अंतःकरणउपहितआनंदका तौ भान बनै नहीं. याते विषय उपहित आनंदका भान होवेगा, तो मार्गमें वृक्षकी जो ज्ञानरूपवृत्ति है सो भी सात्त्विक है, तासे भी वृक्षउपहितचेतनस्वरूपआनंदका भान

हुआ चाहिये. तैसे सर्वज्ञानसे ज्ञेयउपहितचेतनरूपआनंदका भान हुवा चाहिये. याते अनात्मवस्तुका ज्ञानरूप जो बहिर्मुखवृत्ति; तासे ज्ञेयउपहितचेतनस्वरूप आनंदका ग्रहण होवै नहीं, इसरीतिसे विषयके संबंधसे आत्मस्वरूपानंदका भान होवै है. जो आत्मा आनंदरूप नहीं होवै, तौ विषयसंबंधसे आनंदका भान बनै नहीं. याते आत्मा आनंदरूप है. और—

आत्माका संबंधी जो वस्तु है,ताकेविषे प्रेम होवैहै. तासे सन्निहितमें अधिक प्रेम होवै है. इसरीतिसे बाहिरबाहिरके पदार्थनकी अपेक्षाते अंतरअंतरके पदार्थनमें अधिक प्रीति है. परम्पराते आत्माका संबंधी जो पुत्रका मित्र तामें प्रीति होवै है. पुत्रके मित्रकी अपेक्षाते पुत्रमें अधिक प्रीति है. और पुत्रसे भी स्थूल सूक्ष्म शरीरमें अधिक प्रीति है. और स्थूलसूक्ष्म शरीरमें भी स्थूलते सूक्ष्ममें अधिक प्रीति है पूर्वपूर्वसे उत्तर उत्तर आत्माके समीप है आत्माका आभास सूक्ष्मशरीरमें है; और मैं नहीं याते आभासद्वारा आत्माका सूक्ष्मशरीरसे संबंध है, औरसे नहीं स्थूलशरीरसे सूक्ष्मशरीरका संबंध है याते, स्थूलशरीरसे सूक्ष्मशरीरद्वारा आत्माका संबंध है. और पुत्रसे स्थूलशरीरद्वारा संबंध है. और पुत्रके मित्रसे पुत्रद्वारा संबंध है इसरीतिसे उत्तर उत्तर जो आत्माके समीप, ताकेविषे अधिकप्रीति है. जा आत्माके संबंध होनेते पदार्थमें प्रीति होवै, ता आत्मामेंही मुख्य प्रीति है; और पदार्थमें नहीं, जैसे पुत्रके मित्रसे पुत्रके संबंधसे प्रीति है, याते पुत्रमेंही प्रीति है; पुत्रके मित्रमें

नहीं; तैसे आत्माके अधिकसमीपमें अधिक प्रीति होवै है, याते आत्माविषेही सर्वकी प्रीति है.

सो प्रीति आनंदमें और दुःखके अभावमें होवै है; और में नहीं, और पदार्थमें जो प्रीति होवै, सो आनंद और दुःखके अभावते निमित्त होवै है. याते आनंद और दुःखके अभावसें औरमें प्रीति नहीं. याते सर्वकी प्रीतिका विषय जो आत्मा, सो आनंदरूप है; और दुःखका अभावरूप है. कल्पितका अभाव अधिष्ठानरूप होवै है. जैसे सर्पका अभाव रज्जुरूप है. याते कल्पित जो दुःख, ताका अभाव भी आत्मारूप है. इसरीतिसे आत्मा आनंदरूप है, और–

न्यायमतमें आत्माका आनंदगुण है,सो समीचीन नहीं.काहेते, जो आनंदगुणकूं नित्य अंगीकार करें, तौ आगमापायी नहीं होवै; याते आत्माका स्वरूपही आनंद सिद्ध होवेगा. और नित्य आनंद न्याय-मतमें है भी नहीं. और अनित्य जो कहैं, तो अनुकूलविषय और इंद्रियके संबंधसे आनंदकी उत्पत्ति अंगीकार करनी होवेगी. याते सुषुप्तिमें आनंदका भान नहीं हुवा चाहिये. काहेते, सुषुप्तिमें विष-यका और इंद्रियका संबंध है नहीं. याते आत्माका आनंद गुण नहीं, किंतु आत्मा आनंदस्वरूप है. इसरीतिसे आत्मा सत् चित आनंदरूप है; सो सच्चिदानंद परस्पर भिन्न नहीं; किंतु एकही है. जो आत्माके गुण होवें तो परस्पर भिन्न भी होवें; और आत्मस्वरूप है, याते भिन्न नहीं. एकही आत्मा निवृत्तिरहित है, याते सत

कहिये है. और जडसे विलक्षण प्रकाशरूप है, याते चित कहिये है. और दुःखसे विलक्षण मुख्यप्रीतिका विषय है, याते आनंद कहिये है. जैसे उष्णप्रकाशरूप अग्नि है, तैसे सच्चित्आनंदरूप आत्मा है. और सच्चित् आनंदस्वरूपही शास्त्रमें ब्रह्म कह्या है याते ब्रह्मस्वरूप आत्मा है. और ब्रह्म नाम व्यापकका है. देशते जाका अंत नहीं होवै, सो व्यापक कहिये है. तासे आत्मा जो भिन्न होवै, तो देशते अंतवाला होवैगा. जाका देशते अंत होवै, ताका कालसे भी अंत होवै है; यह नियम है. याते अनित्य होवैगा. जाका कालसे अंत होवै सो अनित्य कहिये है. याते ब्रह्म से भिन्न आत्मा नहीं और आत्मासे भिन्न जो ब्रह्म होवै; तो अनात्म होवैगा. जो अनात्म घटादिक हैं; सो जड हैं; याते आत्मासे भिन्न ब्रह्म भी जडही होवैगा. याते आत्मासे भिन्न ब्रह्म भी नहीं; किंतु ब्रह्मस्वरूपही आत्मा है.

एकही चेतन सर्वप्रपंच और मायाका अधिष्ठान है, याते ब्रह्म कहिये है. अविद्या और व्यष्टिदेहादिकनका अधिष्ठान है याते आत्मा कहिये है. तत्पदका लक्ष्य ब्रह्म कहिये है, और त्वंपदका लक्ष्य आत्मा कहिये है. ईश्वरसाक्षी तत्पदका लक्ष्य है, और जीवसाक्षी त्वंपदका लक्ष्य है. व्यष्टिसंघातउपहितचेतन जीवसाक्षी है, और समष्टिसंघातउपहितचेतन ईश्वरसाक्षी कहिये है. यद्यपि जीवकी और ईश्वरकी एकता बने नहीं तथापि जीवसाक्षी और ईश्वरसाक्षीका उपाधिके भेदसे भेद है; और स्वरूपसे एकही हैं.

जैसे मठमें स्थित जो घटाकाश और मठाकाश; तिन्हका उपाधिके भेदविना स्वरूपसे भेद नहीं तैसे आत्मा और ब्रह्मका उपाधिभेद विना भेद नहीं; एकही वस्तु हैं. सो—

ब्रह्मरूप आत्मा अजन्म कहिये जन्मरहित है. जो आत्माका जन्म अंगीकार करैं, तौ अनित्य होवैगा सो वार्ता परलोकवादी जो आस्तिक हैं, तिन्हकूं इष्ट नहीं. काहेते जो आत्मा उत्पत्तिनाशवान् होवै, तौ प्रथमजन्मविषे पूर्वकर्मविनाही सुखदुःखका भोग; और किये कर्मका भोगसे विना नाश होवैगा. याते कर्त्ता भोक्ता जो आत्मा अंगीकार करैं, तो भी जन्मनाशरहितही अंगीकार करना होवैगा. और आत्माका जन्म जो अंगीकार करैं तो हेतुसे विना तो किसी वस्तुका जन्म होवै नहीं. याते, किसी हेतुसेही जन्म कहना होवैगा, सो बनै नहीं. काहेते, जो आत्माका हेतुहै, सोआत्मासे भिन्नही कहना होवैगा. सो आत्मासे भिन्न संपूर्ण आत्मामें कल्पितहैं, याते आत्माका हेतु बने नहीं. जैसे रज्जुमें कल्पितसर्प रज्जुका हेतु नहीं, तैसे आत्मामें कल्पितवस्तु आत्माका हेतु बनै नहीं.

जैसे एकरज्जुविषे नानापुरुषनकूं दंड, सर्प, पृथिवीरेखा, जलधारा की भ्रांति होवैहै. ता भ्रांतिमें दो अंश हैं, एक तो सामान्य इदं अंश है, एक सर्पादिक विशेष अंशहै. सो सामान्य इदंअंश सर्पादिक विशेषअंशनमें सारै व्यापकहै." यह सर्प है, यह दंड है, यह पृथिवीकी रेखा है, यह जलकी रेखा है," इसरीतिसे सर्पादिक विशेषअंशमें इदं अंश सारै व्यापक है. सो व्यापकसामान्य इदंअंश रज्जुस्वरूप है. ता सामान्य इदंअंशके ज्ञानकूंही भ्रांतिका हेतु

रज्जुका सामान्य ज्ञान कहे हैं.सो सामान्य इदंअंश सत्य है.काहेते, रज्जुका ज्ञान हुयेसे अनंतर भी ता इदं अंशकी प्रतीति होवै है.जैसे भ्रांतिकालमें "यह सर्प है" या रीतिसे सर्पादिकनसे मिलिके इदं अंशकी प्रतीति होवै है. तैसे भ्रांतिकी निवृत्तिसे अनंतर भी, "यह रज्जु है" या रीतिसे रज्जुके साथ मिलिके इदंअंशकी प्रतीति होवै है. जो इदं अंश भी मिथ्या होवै, तो सर्पादिकनकी न्याई भ्रांतिकी निवृत्तिसे अनंतर ताकी भी प्रतीति नहीं हुई चाहिये. याते सर्पादिकभ्रांतिमें व्यापक जो इदं अंश सो सत्य है.और अधिष्ठान रज्जुरूप है. और परस्पर व्यभिचारी जो सर्पादिक, सो कल्पित हैं.

तैसे सर्वपदार्थनमें पांच अंश हैं; एक नाम और रूप और अस्ति तथा भाति और प्रिय. "घट" यह दोअक्षर नाम, और "गोलरूप घट" है यह अस्ति, और "घट, प्रतीत होवै है" यह भाति, और "घट, प्रिय है" यह आनंद. सर्पादिक भी सर्पिणीआदिकनकूं प्रिय हैं. इस रीतिसे सर्वपदार्थनमें पांच अंश हैं. तिन्हविषै अस्तिभातिप्रियरूप तीनि अंश सर्व पदार्थनमें व्यापक हैं.और नामरूप व्यभिचारी हैं जो वस्तु कहूं होवै और कहूं नहीं होवै, सो व्यभिचारी कहिये है. घट नाम गोलरूप, पटविषै नहीं है. पटनाम और ताका रूप घटविषै नहीं है.इसरीतिसे सर्वपदार्थनविषै नामरूपअंश व्यभिचारी है, और अस्तिभातिप्रियरूप सर्व विषै अनुगत है. जैसे सर्पदंडादिकनमें अनुगत इदंअंश सत्य और अधिष्ठान है. तैसे सर्वपदार्थनमें अनुगत अस्तिभातिप्रियरूप सत्य है; और अधिष्ठानरूप है

सर्पदंडादिकनकी न्याई व्यभिचारी नाम रूप कल्पित हैं. और अस्तिभातिप्रिय सच्चित्आनंदरूप है; याते आत्मस्वरूप है. इसरीतिसे सच्चित्आनंदरूप आत्माविषे संपूर्ण नामरूप प्रपंच कल्पित है. सो कल्पितपदार्थ कोई आत्माके जन्मका हेतु बनै नहीं, याते आत्मा अजन्मा है. जा वस्तुका जन्म होवै; ताहीके सत्ता, वृद्धि, परिणाम, अपक्षय, विनाशरूप पांच विकार और होवैं हैं. आत्माका जन्म होवै नहीं, याते उत्तर पांच विकार भी होवैं नहीं,इसरीतिसे अजन्मा कहिये. जन्मादिक षट्विकारसे रहित आत्मा है. सत्ता नाम प्रगटताका है; और अपक्षय नाम घटनेका है. सो,—

आत्मा असंग है. संग नाम संबंधका है. सो सजातीयं विजातीय स्वगतपदार्थसे होवै है. जैसे घटका घटसे जो संबंध है, सो सजातीयसे संबंध है. और घटका पटसे जो संबंध, सो विजातीयसे संबंध है. स्वगत नाम अवयवका है. याते पटका तंतुसे जो संबंध, सो स्वगतसे संबंध है. आत्मा दो अथवा अनंत होवैं, तो सजातीयसे आत्माका संबंध होवै सो आत्मा एक है; याते सजातीय आत्मासे आत्माका संबंध नहीं और आत्मासे विजातीय अनात्मा है, सो मृगतृष्णाके जलकी न्याई आत्मामें कल्पित है. ता कल्पितसे आत्माका संबंध बनै नहीं; जैसे मृगतृष्णाके जलसे पृथिवीका संबंध होवै नहीं; जो संबंध होवै तो ऊषरभूमि जलसे गीली हुई चाहिये. जैसे मृगतृष्णाके जलसे ऊषरभूमिका संबंध नहीं;तैसे आत्मामें कल्पित जो विजातीय अनात्मा, तासे आत्माका

संबंध नहीं जो आत्माके अवयव होवैं तौ आत्माका स्वगतसे संबंध होवै. आत्मा नित्य है याते निरवयव है. ताका स्वगतसे संबंध बनै नहीं. इस रीतिसे सजातीय विजातीय स्वगत संबंध आत्माविषे नहीं, याते असंग है. इसरीतिसे, हे शिष्य ! सच्चित् आनंदब्रह्मरूप, जन्मादिकविकाररहित, असंग आत्मा है, "सो तू है." यह प्रथम प्रश्नका अर्द्ध दोहेसे आचार्यने उत्तर कह्या.

" जगत्का कर्त्ता कौन है ? " यह द्वितीय प्रश्नका उत्तर अर्द्ध दोहेसे कहैं हैं:—

दोहार्द्ध ।

विभु चेतन माया करै, जगको उत्पाति भंग ॥

टीका—विभु कहिये व्यापक जो चेतन, ताके आश्रित और ताकूं विषय करनेवाली माया कहिये, सत् असत्से विलक्षण अद्भुतशक्तिरूप अज्ञान; तासे जगत्की उत्पत्ति भंग होवै है. उत्पत्ति और भंग कहनेते स्थितिका ग्रहण अर्थते होवै है. याते यह अर्थ सिद्ध हुवा—मायायुक्त जो चेतन सो ईश्वर कहिये है. सो ईश्वर जगत्की उत्पत्ति पालन नाशका हेतु है. या कहनेते "जगत्का कोई कर्त्ता है, अथवा आपसे होवै" याका उत्तर कह्या और "जगत्का कर्त्ता कोई जीव है, अथवा ईश्वर है ?." याका भी उत्तर कह्या.

जगत्का कर्त्ता ईश्वर है, आपसे होवै नहीं. जो कर्त्तासे विना जगत् होवै तौ कुलालविना घट हुवा चाहिये. याते जगत्का

कोई कर्त्ता है. सो कर्त्ता सर्वज्ञ है. काहेते, जो कार्यका कर्त्ता होवै सो ता कार्यकूं और ताके उपादानकुं जानिके करै है. याते जगत्का कर्त्ता भी जगत्कूं और जगत्के उपादानकूं जानिके करै है. इसरीतिसे जगतका कर्त्ता जगत्कूं, और जगत्के उपादानकूं जानै है; याते सर्वज्ञ है. और सर्वशक्तिमान् है. काहेते जो अल्पशक्तिवाले जीव हैं, तिन्हसे या जगत्की रचना मनसे भी चिंतन होवै नहीं, याते अद्भुत जगत्का कर्त्ता अद्भुतशक्तिवाला है. इसरीतिसे जगत्का कर्त्ता सर्वशक्तिमान् है. और स्वतंत्र है. काहेते, जो न्यूनशक्तिवाला होवै, सो पराधीन होवै है. और सर्वशक्तिवाला पराधीन होवै नहीं; याते स्वतंत्र है. इस रीतिसे जगत्का कर्त्ता सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् स्वतंत्र है ताहीकूं ईश्वर कहैं हैं. और अल्पज्ञ अल्पशक्तिमान् पराधीनकूं जीव कहैं हैं. यद्यपि अल्पज्ञतादिक जीवमें भी परमार्थसे नहीं, तथापि अविद्याकृत मिथ्या अल्पज्ञतादिक जीवमें प्रतीत होवैं हैं; याते जीवमें कहियें हैं. अविद्याकृत अल्पज्ञतादिकनकी जो भ्रांति सोई जीवता है. सो अल्पज्ञतादिकनकी भ्रांति ईश्वरमें है नहीं. किंतु मायाकृत सर्वज्ञतादिक ईश्वरमें हैं. यह वार्त्ता विस्तारसे आगे प्रतिपादन करैंगे. इसरीतिसे जगत्का कर्त्ता जीव नहीं, ईश्वर है.

सो ईश्वर एकदेशमें स्थित नहीं, किंतु सर्वत्र व्यापक है. जो एकदेशमें अंगीकार करैं, तौ जो वस्तुका देशते अंत होवै, ताका कालसे भी अंत होवै है; याते अनित्य होवेगा. जो अनित्य होवै

सो कर्त्तासे जन्य होवै है. याते ईश्वरका भी कर्त्ता अंगीकार करना होवेगा. सो ईश्वरका कर्त्ता बने नहीं; काहेते, आप तो अपना कर्त्ता बने नहीं; जो अपना कर्त्ता आपही अंगीकार करैं तो आत्माश्रयदोष होवेगा. आपही क्रियाका कर्त्ता, और आपही क्रियाका कर्म होवै; तहां आत्माश्रय होवै है. जैसे कुलाल क्रियाका कर्त्ता है, और घट कर्म है. तैसे क्रियाका कर्त्ता और कर्म भिन्न होवैं हैं; एक बनैं नहीं; याते आत्माश्रय दोष है. कर्म नाम कार्यका है, और कार्यके विरोधीका नाम दोष है. आत्माश्रय कार्यका विरोधी है, याते दोष है, याते ईश्वरका कर्त्ता अन्य अंगीकार करना होवेगा. सो अन्य भी प्रथम कर्त्ताकी न्याई कर्त्ताजन्यही कहना होवेगा सो ताका कर्त्ताभी प्रथमकी न्याई तासे भिन्नही कहना होवेगा. सो प्रथम जो ईश्वर है, ताकूं द्वितीयकर्त्ताका कर्त्ता अंगीकार करैं, तो अन्योन्याश्रयदोष होवेगा, याते तृतीयकर्त्ता और अंगीकार करना होवेगा. ता तृतीयका कर्त्ता जो द्वितीय मानैं, तब तो अन्योन्याश्रयदोष होवै, और प्रथम मानैं तब चक्रिकादोष होवेगा. जैसे चक्रका भ्रमण होवै है, तैसे प्रथमकर्त्ता द्वितीयजन्य और द्वितीयकर्त्ता तृतीयजन्य, और तृतीय प्रथमजन्य, सो प्रथम फिर द्वितीयजन्य; इसरीतिसे कार्यकारणभावका भ्रमण होवेगा. चक्रिकास्थानमें कोई भी सिद्ध होवे नहीं, सर्वको परस्पर अपेक्षा है. अन्योन्याश्रयमें दोनोंकि परस्पर अपेक्षा है; एकको सिद्धि हुये बिना अन्यकी सिद्धि होवै नहीं. याते, जैसे कुलालका कर्ता आप नहीं किंतु ताका पिता है.

तैसे प्रथम ईश्वरकर्ताका अन्य कर्त्ता है, और कुलालका पिता अपने पुत्रसे उत्पन्न होवै नहीं, किंतु अन्यपितासे उत्पन्न होवै है. तैसे द्वितीयकर्त्ता प्रथमकर्त्तासे उत्पन्न होवै नहीं किंतु अन्यकर्त्तासेही कहना होवेगा. और कुलालका पितामह, कुलाल और ताके पितासे उत्पन्न होवै नहीं, किंतु चतुर्थ जो कुलालका प्रपितामह, तासे उत्पन्न होवै है; तैसे तृतीयकर्त्ता भी प्रथम और द्वितीय कर्त्तासे उत्पन्न होवै नहीं. याते चतुर्थ कर्त्ता और अंगीकार करना होवैगा. ता चतुर्थका कर्त्ता और पंचम मानना होवेगा, याते अनवस्थादोष होवैगा. धाराका नाम अनवस्था है जो कर्त्ताकी धारा अंगीकार करैं, तौ कौनसा कर्त्ता जगत् करै है, यह निर्णय नहीं होवेगा. किसीएककूं जगत्का कर्त्ता माननेमें कोई युक्ति नहीं. ता युक्तिके अभावका नामही विनिगमनाविरह कहैं हैं. और धाराकी कहूं विश्रांति अंगीकार करैं, तो जा कर्त्तामें धाराका अंत अंगीकार किया; सोई कर्त्ता जगत्का मानने योग्य है. पूर्व सारे निष्फल होवेंगे, याका नामही प्राग्लोप कहैं हैं. पिछलेके अभावका नाम प्राग्लोप है. इस रीतिसे ईश्वका देशते अंत अंगीकार करैं तो उत्पत्ति अंगीकार करनी होवेंगी. और उत्पत्ति अंगीकार करैं तौ आत्माश्रयादि षट् दोष होवेंगे. याते ईश्वरका देशते अंत नहीं, किंतु व्यापक है, याहीते नित्य है.

ता व्यापक ईश्वरका और जीवका स्वरूपसे भेद नहीं, किंतु उपाधिसे भेद है. काहेते, अवच्छेदवादमें मायाविशिष्टचेतन ईश्वर कहैं हैं, और अविद्याविशिष्टचेतन जीव कहैं हैं. आभासवादमें माया और

आभासविशिष्टचेतन ईश्वर कहैंहैं; और आभाससहित अविद्याविशि-ष्टचेतनकूं जीव कहैं हैं. आभासवादमें आभाससहित अविद्या और मायाका भेद है; चेतनका नहीं. तैसे अवच्छेदवादमें भी अविद्या और मायाका भेद है; स्वरूपसे चेतनका भेद नहीं. और अज्ञानमें चेत-नका प्रतिबिंब जीव है, और बिम्ब ईश्वर है. या पक्षमें भी चेतनका स्वरूपसे भेद नहीं; किंतु एकही चेतनमें जीवपना और ईश्वरपना आरोपित है. यह वार्ता आगे कहैंगे. इसरीतिसे जगत्का कर्त्ता सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् स्वतंत्र ईश्वर है. सो ईश्वर व्यापक है, ताका और जीवका विशेषणमात्रसे भेद है; और स्वरूपसे अभेद है. यह द्वितीय प्रश्नका उत्तर कह्या.

"मोक्षका साधन ज्ञान है, अथवा कर्म है अथवा उपासना है अथवा दो हैं ?" याका उत्तर कहैं हैं:—

दोहा।

हेतु मोक्षको ज्ञान इक, नहीं कर्म नहिं ध्यान ॥
रज्जु सर्प तबही नशै, होय रज्जुको ज्ञान ॥

टीका—मुक्तिका हेतु कर्म और ध्यान कहिये, उपासना नहीं; किंतु ज्ञानही हेतु है. काहेते, जो आत्मामें बंध सत्य होवै तो ताकी निवृत्तिरूप मोक्ष ज्ञानसे होवै नहीं किंतु कर्म अथवा उपा-सनाते होवै. सो बंध आत्मामें सत्य है नहीं; किंतु रज्जु सर्पकी न्याईं मिथ्या है. ता मिथ्याकी निवृत्ति अधिष्ठानज्ञानसे बनै है, कर्म अथवा उपासनासे नहीं, जैसा रज्जुका सर्प किसी क्रियाते दूरि

होवै नहीं, केवल रज्जुके ज्ञानसे दूरि होवै; तैसे आत्माके अज्ञानसे प्रतीत जो होवै है बंध, ता बंधकी प्रतीति और अज्ञान आत्माके ज्ञानसेही दूरि होवैं हैं.

जो कर्मका फल मोक्ष होवै, तो मोक्ष अनित्य होवैगा. काहेते यह नियम है:—जो कृषिआदि कर्मका फल अन्नादिक हैं; सो अनित्य हैं. और यज्ञादिककर्मका फल स्वर्गादिक भी अनित्य हैं. जो मोक्ष भी कर्मका फल अंगीकार करैं, तो अनित्य होवैगा. याते कर्मका फल मोक्ष नहीं. तैसे उपासनाका फल जो अंगीकार करैं, तो भी मोक्ष अनित्य होवैगा. काहेते उपासना भी मानसकर्महीं है; और कर्मका फल अनित्य होवै है; याते उपासनारूप कर्मका फल भी मोक्ष नहीं. और—

कर्मकर्त्ताकूं कर्मसे पांचप्रकारका उपयोग होवै है. पदार्थकी उत्पत्ति, तथा नाश, अथवा पदार्थकी प्राप्ति, वा पदार्थका विकार तैसे संस्कार. अन्यरूपकी प्राप्तिका नाम विकार है. संस्कार दो प्रकारका होवै है. मलकी निवृत्ति और गुणकी उत्पत्ति यह पांचप्रकारका कर्मसे उपयोग होवै है, सो मुमुक्षुकूं कोई भी बने नहीं; याते मुमुक्षु ज्ञानके साधन श्रवणादिकविषेही प्रवृत्त होवै, और कर्ममें नहीं. जैसे कुलालके कर्मते कुलालकूं घटकी उत्पत्ति उपयोग होवै है, तैसे मुमुक्षुकूं कर्मते मोक्षकी उत्पत्ति उपयोग बने नहीं. काहेते, जो अनर्थकी निवृत्ति, और परमानंदकी प्राप्तिरूप मोक्ष है, सो अनर्थकी निवृत्ति आत्मामें नित्यसिद्ध है. जैसे रज्जुमें सर्पकी निवृत्ति नित्यसिद्ध है और आत्मा परमआनंदस्वरूप है.

याते परमानंदकी प्राप्ति भी नित्यसिद्ध है; इसरीतिसे स्वभावसिद्ध मोक्षकी कर्मसे उत्पत्ति बने नहीं. जो वस्तु आगे सिद्ध नहीं होवै ताकी कर्मसे उत्पत्ति होवै है; और सिद्धवस्तुकी उत्पत्ति होवै नहीं. और–

वेदांतश्रवण भी मोक्षकी उत्पत्तिके निमित्त नहीं कह्या, किंतु आत्मा नित्यमुक्त है, किंचित्मात्र भी कर्तव्य नहीं; इस वार्त्ताके जानने वास्ते श्रवण है, यह जानिके कर्तव्यभ्रांति दूरि होवै है.और वेदांतश्रवणसे अनंतर भी जिनकूं कर्तव्यप्रतीति होवै है, तिन्हने तत्त्व जाना नहीं, इसीकारणते नित्यनिवृत्ति जो अनर्थ, ताकी निवृत्ति, और नित्यप्राप्तआनंदकी प्राप्ति, वेदांतश्रवणका फल देवगुरुने नैष्कर्म्यसिद्धिमें कह्या है. याते मोक्षकी उत्पत्तिरूप कर्मका योग मुमुक्षुकूं बने नहीं.

जैसे दंडका प्रहाररूप कर्मका घटका नाशरूप उपयोग होवै है; तैसे मुमुक्षुकूं कर्मते किसीपदार्थका नशारूप उपयोग भी बने नहीं. काहेते, अन्यपदार्थका नाश तो मुमुक्षुकूं वांछित है नहीं, बंधका नाशही कर्मसे उयोग कहना होवैगा. सो बंध आत्मामें है नहीं मिथ्याप्रतीति होवै है. तो मिथ्याप्रतीतिका नाश कर्मते बने नहीं, और आत्माके यथार्थज्ञानसे तो मिथ्याप्रतीतिका नाश बनै है. याते मुमुक्षुकूं पदार्थका नाशरूप उपयोग भी कर्मसे बने नहीं. जैसे गमनरूप कर्मते ग्रामकी प्राप्ति होवै है, तैसे मोक्षकी प्राप्तिरूप उपयोग कर्मसे बने नहीं, काहेते जो आत्मा नित्यमुक्त है ताकूं

मोक्षकी प्राप्ति कहना बनै नहीं; जाकूं बंध होवै ताकूं मोक्षकी प्राप्ति कहना बनै है; और आत्मामें बंध है नहीं, याते मोक्षकी प्राप्तिरूप कर्मका उपयोग मुमुक्षुकूं बने नहीं.

जैसे पाकरूप कर्मसे अन्नका विकाररूप उपयोग पाचककूं होवै है, तैसे मुमुक्षुकूं कर्मसे विकाररूप उपयोग भी बने नहीं. काहेते, और तो कोई विकार बने नहीं; जो आत्मामें प्रथम बंध अंगीकार करैं, और मोक्षदशामें चतुर्भुजादिक विलक्षणरूपप्राप्ति अंगीकार करैं; तो अन्यरूपकी प्राप्तिरूप विकार कर्मका उपयोग मुमुक्षुकूं बनै. सो अन्यरूपकी प्राप्ति आत्मामें अंगीकार नहीं याते कर्मसे विकाररूप उपयोग भी मुमुक्षुकूं बने नहीं.

जैसे वस्त्रके क्षालनरूप कर्मका मलकी निवृत्तिरूप संस्कार होवै है, तैसे मलकी निवृत्तिरूप संस्कार भी मुमुक्षुकूं कर्मसे उपयोग नहीं. काहेते, अन्यके मलकी निवृत्ति तो मुमुक्षुकूं वांछित है नहीं, आत्माके मलकी निवृत्ति कहनी होवैगी. सो आत्मा नित्यशुद्ध है, ताकेविषे मल है नहीं. याते मलकी निवृत्तिरूप संस्कार बने नहीं, और अंतःकरणविषे पापरूप जो मल है, ताकी निवृत्ति जो कर्मसे उपयोग कहैं, तो यह वार्त्ता सत्य है; परंतु शुद्धअंतःकरणवाला जो मुमुक्षु है, ताका विचार करैं हैं. ताके अंतःकरणमें भी पाप है नहीं; याते पापरूप मलकी निवृत्तिरूप संस्कार भी मुमुक्षुकूं कर्मसे उपयोग बनै नहीं. और अज्ञानकूं जो मल कहैं, तो अज्ञान आत्मामें भी है, परंतु ताकी निवृत्ति कर्मसे होवै नहीं. काहेते अज्ञा-

नका विरोधी ज्ञान है; कर्म नहीं. याते मलकी निवृत्तिरूप संस्कार मुमुक्षुकूं कर्मसे उपयोग बनै नहीं. जैसे वस्त्रका कुसुंभमें मज्जनरूप कर्मका रक्तगुणकी उत्पत्तिरूप संस्कार उपयोग होवै है, तैसे गुणकी उत्पत्तिरूप संस्कार मुमुक्षुकूं कर्मसे उपयोग बनै नहीं, काहेते, अन्यविषे ता गुणकी उत्पत्ति कहना बनै नहीं; आत्माविषेही कहना होवेगा. सो आत्मा निर्गुण है; ताकेविषे गुणकी उत्पत्ति बनै नहीं, याते गुणकी उत्पत्तिरूप संस्कार भी मुमुक्षुकूं कर्मका उपयोग बनै नहीं. या प्रकरणमें उपयोग नाम फलका है. कर्मका पांचही प्रकारका फल होवै है, और नहीं. सो पांचप्रकारका फल कर्मका मुमुक्षुकूं बनै नहीं, याते कर्मकूं त्यागिके ज्ञानके साधन श्रवणविषेही मुमुक्षु प्रवृत्त होवै. उपासना भी मानस कर्मही है; याते ताके खंडनमें पृथक् युक्ति नहीं कही. इसरीतिसे केवल कर्म अथवा उपासना मोक्षका हेतु नहीं; किंतु केवल ज्ञान है. और कोई कर्मउपासनासहित ज्ञानकूं मोक्षका हेतु अंगीकार करैं हैं, और ताकेविषे युक्तिदृष्टांत भी कहैं हैं. जैसे आकाशमें पक्षीका एकपक्षसे गमन होवे. नहीं किंतु दो पक्षसे गमन होवै है; तैसे मोक्षलोककूं भी एक ज्ञानरूपपक्षसे गमन होवै नहीं; किंतु एकपक्ष तो उपासनासहित कर्म है; और द्वितीयपक्ष ज्ञान है. उपासना भी मानसकर्मही है, याते एकही पक्ष है.

अन्य दृष्टांतः—जैसे सेतुके दर्शनसे पापका नाश होवै है. सो सेतुका दर्शन भी प्रत्यक्षरूप ज्ञान है, और श्रद्धाभक्तिसहित गमनादि

नियमकी अपेक्षा करैं हैं. जो श्रद्धादिक रहित पुरुष होवै ताकूं सेतुदर्शनसे फल होवे नहीं. जैसे सेतुका प्रत्यक्षज्ञान श्रद्धानियमादिकनकी फलकी उत्पत्तिमें अपेक्षा करैं है; तैसे ब्रह्मज्ञान भी मोक्षरूपफलकी उत्पत्तिमें कर्मउपासनाकी अपेक्षा करैं हैं और—

केवल ज्ञानसे जो मोक्ष अंगीकार करैं हैं, सो भी ज्ञानका हेतु तो कर्मउपासना मानैं हैं. शुद्ध और निश्चल अंतःकरणमें ज्ञान होवै है. सो अंतःकरण शुभकर्मसे शुद्ध होवै है; और उपासनासे निश्चल होवै है. इसरीतिसे अंतःकरणकी शुद्धि और निश्चलताद्वारा कर्म-उपासना ज्ञानके हेतु अंगीकार किये हैं.

जैसे ज्ञानके हेतु कर्मउपासना अंगीकार किये, तैसे ज्ञानके फल मोक्षके हेतु अंगीकार करने योग्य हैं.

दृष्टांत—जैसे जलका सेचन वृक्षकी उत्पत्तिका हेतु है, और वृक्षके फलकी उत्पत्तिका भी हेतु है. जो वनके वृक्षनके जलसेचन विना फल होवै हैं, सो भी वृक्षके मूलमें नीचे जलका संबंध है; याते फल होवै है, और जलके संबंध विना वृक्षही सूकजावे, फल होवै नहीं.

तैसे कर्म उपासना ज्ञानकी उत्पत्तिके हेतु हैं; और ज्ञानका फल जो मोक्ष, ताके भी हेतु हैं. इसरीतिसे कर्मउपासना ज्ञान तीनों मोक्षके हेतु हैं. याते ज्ञानवान्‌भी कर्म करै.

अथवा, कर्मउपासना ज्ञानकी रक्षाके हेतु हैं; काहेते, जो कर्म-उपासनाका ज्ञानवान् त्याग करै, तो उत्पन्न हुवा ज्ञान भी जलके

विना वृक्षकी न्याईं नष्ट होय जावेगा काहेते, शुद्धअंतःकरणमें ज्ञान होवै है और शुभकर्म नहीं करे तो ज्ञानवान्कूं पाप होवेगा और उपासनाके त्यागसे अंतःकरण फेरि चंचल होय जावेगा ता मलिन और चंचल अंतःकरणमें ज्ञान रहे नहीं. जैसे सूखी भूमिमें उत्पन्न हुवा वृक्ष भी रहै नहीं,

अन्य दृष्टांत—जैसे संस्कारसे शुद्धकियेस्थानमें वेदपाठी ब्रह्मचारी निवास करे है और शुद्ध किया स्थानभी किसी निमित्तसे फेरि मलिन होय जावे, तो ता स्थानकूं त्यागि देवैहै तैसे कर्मके त्यागसे मलिन, और उपासनाके त्यागसे चंचलहुवा जो अंतःकरण ताकेविषे ज्ञान रहै नहीं. याते कर्म और उपासना ज्ञानकी रक्षाके हेतु हैं. इसरीतिसे कर्म उपासना ज्ञान, तीनों मोक्षके हेतु अंगीकार करैं, तथा ज्ञानकी रक्षाके हेतु कर्म उपासना अंगीकार करैं, और केवल ज्ञान मोक्षका हेतु अंगीकार करैं, दोनोंप्रकारसे ज्ञानवान्कूं कर्मउपासना कर्तव्य है. याकूं समुच्चयवाद कहैं हैं, सो समीचीन नहीं. काहेते

देहसे भिन्न जो आत्मा नहीं जाने, तासे कर्म होवै नहीं. काहेते, जन्मांतरके भोगके निमित्त कर्म करैं हैं; और देहका अग्निविषे दाह होवै है; तासे जन्मांतरका भोग बने नहीं, याते शरीरसे भिन्न आत्माका ज्ञान कर्मका हेतु है. सो शरीरसे भिन्न भी आत्माका कर्त्ताभोक्तारूपकरिकै ज्ञान कर्मका हेतु है "मैं पुण्य पापका कर्त्ता हूँ, और पुण्यपापका फल मेरेकूं होवेगा," ऐसा जाकूं ज्ञान है, सो कर्म करै है. और ज्ञानवान्कूं ऐसा आत्माका ज्ञान है नहीं; किंतु पुण्यपाप

और सुखदुःखते रहित असंगब्रह्मरूप आत्मा है ऐसा वेदांतवाक्यसे ज्ञान होवै है. सो ज्ञान कर्मका हेतु नहीं उलटा विरोधी है. याते ज्ञानवानूसे कर्म होवै नहीं और कर्त्ता कर्मफलका भेदज्ञान कर्मका हेतु है. सो कर्त्ता कर्मफलकी ज्ञानवानूकूं आत्मासे भिन्न प्रतीति होवै नहीं; संपूर्ण आत्मस्वरूपही प्रतीत होवै है; याते भी ज्ञानवानूसे कर्म होवै नहीं. और भाष्यकारने बहुतप्रकारसे ज्ञानवानूकूं कर्मका अभाव प्रतिपादन किया है. कर्मका और ज्ञानका फलसे विरोध है. याते भी ज्ञानकर्मका समुच्चय बनै नहीं. कर्मका फल अनित्य संसार है; और ज्ञानका फल नित्य मोक्ष है, और आत्मामें जाति आश्रम अवस्थाका अध्यास कर्मका हेतु है. काहेते, जाति आश्रम अवस्थाके योग्य भिन्न भिन्न कर्म कहे हैं. याते जाति आदिकनका अध्यास कर्मका हेतु है. यद्यपि जाति आश्रम अवस्था देहके धर्म हैं, और कर्मीकूं देहमें आत्मा बुद्धि है नहीं; किंतु देहसे भिन्न कर्त्ता आत्मा कर्मी जानै है. यह वार्त्ता पूर्व कही. याते जाति आश्रम अवस्थाकी प्रतीति आत्मामें कर्मीकूं भी बने नहीं. तथापि देहसे भिन्न आत्माका कर्मीकूं अपरोक्षज्ञान नहीं, किंतु शास्त्रसे परोक्षज्ञान है. और देहमें आत्मज्ञान अपरोक्ष है. जो देहसे भिन्न आत्माका अपरोक्षज्ञान होवै, तो देहमें अपरोक्ष आत्मज्ञानका विरोधी होवे. और परोक्षज्ञानका अपरोक्षज्ञानसे, विरोध है नहीं, याते देहसे भिन्न कर्त्ता आत्माका ज्ञान, और देहमें आत्मबुद्धि दोनों एककूं बनैं हैं. दृष्टांतः—मूर्तिमें ईश्वरज्ञान शास्त्रसे परोक्ष है, और पाषाणबुद्धि अपरोक्ष है; तिन्हका विरोध नहीं. दोनों एककूं

होवै है. और रज्जुमें जाकूं सर्पसे अपरोक्ष भेदज्ञान है, ताकूं अपरोक्ष सर्पभ्रांति दूरि होवै है. याते यह नियम सिद्ध हुवाः— अपरोक्षभ्रांतिका अपरोक्षज्ञानसे विरोध है परोक्षसे नहीं. याते देहसे भिन्न आत्माका परोक्षज्ञान औरं देहमें अपरोक्षज्ञान बनै है. सो दोनों कर्मके हेतु हैं. देहसे भिन्न भी कर्त्तारूपकरिके. आत्माका ज्ञान कर्मका हेतु है. सो कर्त्तारूपकरिके आत्माका ज्ञान भ्रांतिरूप है. और भ्रांति विद्वाननकूं है नहीं, याते कर्मका अधिकार नहीं. और देहमें अपरोक्षआत्मबुद्धि होवै, तब देहके धर्म जाति आश्रम अवस्था प्रतीत होवै, सो देहमें आत्मबुद्धि भी विद्वान्कूं है नहीं किंतु ब्रह्मरूपकरिके आत्माका अपरोक्षज्ञान है. याते जाति आश्रम अवस्थाकी भ्रांतिके अभावते भी विद्वान्कूं कर्मका अधिकार नहीं और उपासना भी " मैं उपासक हूं, देव उपास्य है " या बुद्धिसे होवै है. सो विद्वान्कूं उपास्यउपासकभाव प्रतीत होवै नहीं " देहादिकसंघात तो मेरा और देवका स्वप्नकी न्याई कल्पित है. और चेतन एक है. " यह विद्वानका निश्चय है. याते ज्ञानका उपासनासे विरोध है. और—

पक्षीके गमनका दृष्टांत बनै नहीं. काहेते. पक्षीके तो दो पक्ष एककालमें रहें हैं; तिनका परस्पर विरोध नहीं; और ज्ञानका तो कर्मउपासनासे विरोध है, एककालमें बनै नहीं. और—

सेतुके ज्ञानका दृष्टांत भी बनै नहीं. काहेते, सेतुका दर्शन दृष्टफलका हेतु नहीं; किंतु अदृष्टफलका हेतु है. प्रत्यक्ष जो फल

प्रतीत होवै, सो दृष्टफल कहिये है. जैसे भोजनका फल तृप्ति प्रत्यक्षफल है; याते भोजन दृष्टफलका हेतु है. तैसे सेतुके दर्शनसे प्रत्यक्षफल प्रतीत होवै नहीं; किंतु पापका नाशरूप फल शास्त्रसे जाना जावै है. जो शास्त्रसे फल जानिये, और प्रत्यक्षप्रतीत होवै नहीं सो अदृष्टफल कहिये है. याते जैसे यज्ञादिककर्म स्वर्गादिक अदृष्टफलके हेतु हैं, तैसे सेतुका दर्शन भी पापका नाशरूप अदृष्टफलका हेतु है, जो अदृष्टफलका हेतु होवै है, तो जितना फलकी उत्पत्तिमें शास्त्रने सहाय बोधन किया है, ता सहित फलका हेतु होवै है, केवल नहीं. याते श्रद्धानियमादिकसहित सेतुका दर्शन पापनाशरूप फलका हेतु है; श्रद्धानियमादिकरहित हेतु नहीं काहेते. सेतुके दर्शनसे प्रत्यक्ष तो कोई फल प्रतीत होवै नहीं, केवल शास्त्रसे जाना जावै है, सो शास्त्र श्रद्धादिकसहित सेतुके दर्शनसे फल बोधन करै है; केवल दर्शनफलकी उत्पत्तिमें कोई प्रमाण नहीं. याते सेतुका दर्शनफलकी उत्पत्तिमें श्रद्धा नियमभक्तिकी अपेक्षा करै है. और—

ब्रह्मविद्या अपने फलकी उत्पत्तिमें कर्मउपासनाकी अपेक्षा करे नहीं.काहेते, जो ब्रह्मविद्याका फल भी स्वर्गकी न्याईं लोकविशेष अदृष्ट होवै; सो लोकविशेष भी केवल ब्रह्मविद्यासे शास्त्रने बोधन नहीं किया होवै; किंतु कर्मउपासनासहितसे बोधन किया होवै; तो ब्रह्मविद्या भी सेतुके दर्शनकी न्याईं फलकी उत्पत्तिमें कर्मउपासना की अपेक्षा करे. सो ब्रह्मविद्याका फल मोक्ष, स्वर्गकी न्याईं लोकवि-

शेषरूप अदृष्ट तो है नहीं; किंतु मोक्ष नित्यप्राप्त है. और भ्रांतिसे बंध प्रतीत होवै है. ताभ्रांतिकी निवृत्तिही ब्रह्मविद्याका फल है. सो भ्रांतिकी निवृत्ति केवल ब्रह्मविद्यासे हमारेकूं प्रत्यक्ष है. और रज्जुज्ञानसे सर्पभ्रांतिकी निवृत्ति सर्वकूं प्रत्यक्ष है. याते अधिष्ठान ज्ञानका भ्रांतिकी निवृत्ति दृष्टफल है. दृष्टफलकी उत्पत्ति जितनी सामग्रीसे प्रत्यक्ष प्रतीत होवै है. सो सामग्री दृष्टफलकी हेतु कहिये है. जैसे तुरीतंतुवेमसे पटकी उत्पत्ति प्रत्यक्ष है. याते तुरीतंतुवेम पटके हेतु हैं. और केवलभोजनसे तृप्तिरूप फल प्रत्यक्ष प्रतीत होवे है. याते केवल भोजन तृप्तिका हेतु है. तैसे केवल अधिष्ठानज्ञानतें भ्रांतिकी निवृत्तिका हेतु है. जैसे. रज्जु का ज्ञान भ्रांतिकी निवृत्तिमें अन्यकी अपेक्षा करे नहीं, तैसे बंधकी भ्रांतिकी अधिष्ठान जो नित्यमुक्त आत्मा. ताका ज्ञान भी बंधभ्रां तिकी निवृत्तिमें कर्मउपासनाकी अपेक्षा करे नहीं. और—

ज्ञानका फल मोक्षकूं जो स्वर्गकी न्याई लोकविशेषअदृष्ट अंगी कार करैं हैं; सो वेदवाक्यसे विरुद्ध हैं काहेते ज्ञानवान्के प्राण किसीलोककूं गमन नहीं करते यह वेदमें कहा है. और लोकविशेष अंगीकार करनेते, स्वर्गकी न्याई मोक्ष अनित्य होवेगा. याते लोकविशेषरूप मोक्ष नहीं. और लोकविशेषजो मोक्ष अंगीकार करे ताकूं भी केवल ज्ञानसेही मोक्षलोककी प्राप्ति अंगीकार करनी योग्य है. काहेते, जो शास्त्रने प्रतिपादन किया अर्थ होवे, सो शास्त्रके अनुसारही अंगीकार करिये है. सो शास्त्र केवल ज्ञानसे मोक्ष कहै

है; याते केवलज्ञान मोक्षका हेतु है, कर्म उपासना ज्ञान तीनों नहीं. और–

वृक्षका दृष्टांत भी बनै नहीं. काहेते, यद्यपि जलका सेचन, वृक्ष की उत्पत्ति और रक्षामें हेतु है; तथापि वृक्षके फलकी उत्पत्तिमें नहीं. वृद्ध जो वृक्ष है, ताकेविषे जलका सेचन वृक्षकी रक्षाके निमित्त है; फलके निमित्त नहीं. जलसे पुष्ट जो वृक्ष, सोई फलकाहेतु है, जल सेचन नहीं. तैसे कर्मउपासनाका भी ज्ञानकी उत्पत्तिमें उपयोग है, मोक्षमें नहीं. याते ज्ञानकी उत्पत्तिसे पूर्वही अंतःकरणकी शुद्धि और निश्चलताके निमित्त कर्मउपासना करै, ज्ञानसे अंतर मोक्षके निमित्त नहीं.

ज्ञानकी उत्पत्तिसे पूर्व भी जितने अंतःकरणमें मल और विक्षेप होवैं तबपर्यंत ही करे. शुद्ध और निश्चल अंतःकरण जाका होवै, सो जिज्ञासु श्रवणके विरोधी कर्मउपासनाका त्याग करे मल नाम पापका है, सो अशुभवासनाका हेतु है. जबपर्यंत मल होवै, तबपर्यंत अशुभवासना होवै है. जब अशुभवासना होवै नहीं, तब मलका अभाव निश्चय करे. अंतःकरणकी चंचलता और एकाग्रता अनुभवसिद्ध है. याते उत्तमजिज्ञासु और विद्वान्कूं कर्मउपासना निष्फल है. और–

पूर्व जो कहा"ज्ञानकी रक्षाके निमित्त कर्मउपासना करै. जैसे जलसे उत्पन्न हुवा जो वृक्ष, ताकी जलसे रक्षा होवै है, जो जलका संबंध नहीं होवै, तो वृद्धवृक्ष भी सूख जावै है. तैसे कर्म-

उपासनासे उत्पन्न हुवा जो ज्ञान, ताकी उर्म उपासनासे रक्षा होवै है. जो ज्ञानी कर्मउपासना नहीं करै, तौ अंतःकरण मलिन और चंचल फेरि होय जावेगा. ता मलिन और चंचल अंतःकरणमें सूखी भूमिमें वृक्षकी न्याईं उत्पन्न हुवा ज्ञान भी नष्ट होय जावेगा. यातैं ज्ञानवान् भी कर्मउपासना करे."

सो बनै नहीं. काहेते आभाससहित अथवा चेतनसहित जो अंतःकरणकी "मैं असंगब्रह्म हूं" यह वृत्ति; सो वेदांतका फलरूप ज्ञान है, ताका कर्मउपासनासे विना नाश होवैगा; अथवा चेतन-स्वरूप ज्ञानका नाश होवैगा. जो ऐसे कहैं—स्वरूपज्ञान तो नित्य है; याते ताका तो नाश और रक्षा बनै नहीं, परंतु वेदांतका फल जो ब्रह्मविद्यारूप ज्ञान है, ताकी कर्मउपासनासे उत्पत्ति होवै है, और कर्मउपासनाके त्यागसे उत्पन्न हुई विद्या भी नष्ट होय जावेगी याते ताकी रक्षाके निमित्त कर्मउपासना करै. सो बनै नहीं. काहेते एकवार उत्पन्न हुइ जो अंतःकरणकी ब्रह्माकारवृत्ति तासे ज्ञानऔर भ्रांतिका नाशरूप फल तिसही समय सिद्ध होवै है. अज्ञान और भ्रांतिके नाशते अनंतर फेरि वृत्तिकी रक्षाका उपयोग नहीं. और अंतःकरणकी वृत्तिकी कर्मउपासनासे रक्षा बनै भी नहीं. काहेते, जब कर्मउपासनाका अनुष्ठान करेगा, तब कर्मउपासनाकी साम-ग्रीका ही वृत्तिरूप ज्ञान होवैगा; ब्रह्मका ज्ञान बनै नहीं. और वृत्ति हुयेते प्रथमवृत्ति रहे नहीं, याते कर्मउपासना, ज्ञानकी उत्पत्तिके तो परंपराते हेतु हैं; और उत्पन्न हुई वृत्तिके विरोधी हैं. याते कर्म उपासनाते ज्ञानकी रक्षा होवै नहीं और—

पूर्व जो कह्या "ज्ञानवान्कूं कर्मके त्यागसे पाप होवै है." सो वार्ता बनै नहीं. काहेते, जो शुभकर्मका त्याग है, सो पापका हेतु नहीं. किंतु, निषिद्धकर्मका अनुष्ठानही पापका हेतु है. यह वार्ता भाष्यकारने बहुतप्रकारसे प्रतिपादन करी है, याते कर्मके त्यागसे पाप होवै नहीं और ज्ञानवान्कूं तो सर्वप्रकारसे पापका असंभव है. काहेते, पुण्य पाप और तिनका आश्रय अंतःकरण परमार्थसे है नहीं, अविद्यासे मिथ्याप्रतीति होवै है. सो अविद्या और मिथ्याप्रतीति ज्ञानवानके है नहीं. याते ज्ञानवान्कूं शुभकर्मके त्यागसे अथवा अशुभके अनुष्ठानसे पाप बनै नहीं.

या स्थानमें यह सिद्धांत है—मंद और दृढदो प्रकारका ज्ञानहै. संशयादिक सहित जो ज्ञान, सो मंदज्ञान कहिये है, और संशयादिक रहित ज्ञान दृढ कहिये है. जाकूं दृढज्ञान होवै ताकूं किंचित्मात्र भी कर्त्तव्य नहीं एकवार उत्पन्न हुवा जो संशयादिकरहित अंतःकरणकी वृत्तिरूप ज्ञान, सोई अविद्याका नाश करि देवै है. सो ज्ञान आप भी दूरि होय जावे तो भी भलेप्रकारसे जाने आत्मामें फेरि भ्रांति होवै नहीं. काहेते जो भ्रांतिका कारण अविद्या है, सो अविद्या एकवार उत्पन्न हुये ज्ञानसे नष्ट होय गई; याते भ्रांति और अविद्याके अभावते वृत्तिज्ञानकी आवृत्तिका कुछ उपयोग नहीं. और जीवन्मुक्तिके आनंदवास्तेजो वृत्तिकी आवृत्ति अपेक्षित होवै तो वारंवार वेदांतके अर्थका चिंतन ही करै. वेदांतके अर्थ चिंतनसेही वारंवार ब्रह्माकारवृत्ति होवै है. और कर्मउपासनाते नहीं. काहेते, कर्म और उपासनाका

अंतःकरणकी शुद्धि और निश्चलताद्वाराही ज्ञानमें उपयोग है; और रीतिसे नहीं. और विद्वान्के अंतःकरणमें पाप और चंचलता है नहीं. रागद्वेषद्वारा पाप और चंचलताका हेतु अविद्या है. ता अविद्याका ज्ञानसे नाश होवै है. याते विद्वान्के पाप और चंचलताके अभावते कर्म उपासनाका उपयोग नहीं. और—

जो कदाचित् ऐसे कहैं:—रागद्वेषादिक अंतःकरणके सहज धर्म हैं, जितने अंतःकरण हैं, उतने रागद्वेषका सर्वथा नाश ज्ञानवान्के भी होवै नहीं. तिन्ह राग द्वेषते ज्ञानवान्का भी अंतःकरण चंचल होवै है. याते चंचलता दूरि करनेवास्ते ज्ञानवान् भी उपासना करै

यद्यपि ज्ञानवान्कूं अंतःकरणकी चंचलतासे विदेह मोक्षमें हानि नहीं. तथापि चंचल अंतःकरणमें स्वरूप आनंदका भान होवे नहीं. याते चंचलता जीवन्मुक्तिकी विरोधी है. याते जीवन्मुक्तिके निमित्त चंचलता, दूरि करनेवास्ते उपासना करै. सो बनै नहीं. काहेते यद्यपि दृढबोध जाके अंतःकरणमें हुवा है, ताके समाधि और विक्षेप समान है याते अंतःकरणकी निश्चलताके निमित्त किसी यत्नका आरंभ विद्वान्कूं बनै नहीं.

तथापि विद्वान्की प्रवृत्ति और निवृत्ति प्रारब्धके अधीन है. प्रारब्धकर्म सर्वका विलक्षण है. किसी विद्वान्का जनकादिकनकी न्याईं भोगका हेतु प्रारब्ध है, और किसीका शुकदेव वामदेवादिकनकी न्याईं निवृत्तिका हेतु प्रारब्ध है. जाके भोगका हेतु प्रारब्ध है. ताकूं ता प्रारब्धसे भोगकी इच्छा और भोगके साधनका यत्न

होवै है. और जाके निवृत्तिका हेतु प्रारब्ध होवे, ताकूं जीवन्मुक्तिके आनंदकी इच्छा होवै है; और भोगमें ग्लानि होवे है. जाकूं जीवन्मुक्तिके आनंदकी इच्छा होवे सो ब्रह्माकारवृत्तिकी आवृत्तिके निमित्त वेदांतअर्थका चिंतनही करै; उपासना नहीं. काहेते, अंतःकरणकी निश्चलतामात्रसे ब्रह्मानंदका विशेषणरूपसे भान होवे नहीं किंतु ब्रह्माकारवृत्तिसेही होवै है. सो ब्रह्माकारवृत्ति वेदांतचिंतनसेही होवै है; उपासनाते नहीं. और अंतःकरणकी चंचलता भी विद्वानकूं वेदांतके चिंतनसेही दूरि होय जावै है. याते अंतःकरणकी निश्चलताके निमित्त भी उपासनामें प्रवृत्ति होवे नहीं इसरीतिसे दृढ़बोध जाके हुवा है, ताकी कर्म उपासनामें प्रवृत्ति होवे नहीं, और

जाके मंदबोध है, सो भी मनन और निदिध्यासन ही करै, कर्म उपासना नहीं. काहेते मंदबोध जाकूं हुवा है, सो उत्तम जिज्ञासु है. ता उत्तम जिज्ञासुकूं मनननिदिध्यासनसे विना अन्य कर्तव्य नहीं; यह वार्ता शारीरकमें सूत्रकार और भाष्यकारने प्रतिपादन करी है. और विद्वानकूं मनन निदिध्यासन भी कर्तव्य नहीं. जो जीवन्मुक्तिके आनंद वास्ते विद्वान् मनन निदिध्यासनमें प्रवृत्त होवैहै. सो भी अपनी इच्छासे प्रवृत्त होवै है. और " मैं वेदकी आज्ञा नहीं करूंगा, तो मेरेकूं जन्म मरण संसार होवैगा, " इस बुद्धिसे जो क्रिया करै, सो कर्तव्य कहिये है. सो जन्मादिकनकी बुद्धि विद्वानके होवे नहीं याते अपनी इच्छाते जो विद्वान् मनन निदिध्यासन करे सो कर्तव्य नहीं. इसरीतिसे मंदबोध अथवा दृढबोध जाके हुवा है, तिनकूं कर्मउपासना कर्तव्य नहीं. और—

जाके बोध नहीं हुवा है, किंतु आत्माके जाननेकी तीव्र इच्छा है, भोगकी नहीं; ताका अंतःकरण शुद्ध है; याते सो भी उत्तम ही जिज्ञासु है. ताकूं भी बोधके वास्ते श्रवणादिक ही कर्तव्य हैं, कर्म उपासना नहीं. काहेते जो कर्मउपासनाफल है, सो ताके सिद्ध है. और ज्ञानकी सामान्य इच्छाते जो श्रवणमें प्रवृत्त हुवा है, और अंतःकरण भोगनमें आसक्त है, सो मंदजिज्ञासु है, सो भी श्रवणकूं त्यागिके फेरि कर्म उपासनामें प्रवृत्त होवै नहीं. जो कर्म उपासनाका फल अंतःकरणकी शुद्धि और निश्चलता है, सो ताकूं श्रवणसेंही होय जावेगा. श्रवणकी आवृत्तिसे अंतःकरणके दोष दूरि होयके इस जन्मविषे अथवा अन्य जन्मविषे अथवा ब्रह्मलोकविषे ज्ञान होवै है. आवृत्ति नाम वारंवारका है. और श्रवणकूं त्यागिके जो कर्मउपासनामें प्रवृत्त होवै है, सो आरूढपतित कहिये है. इसरीतिसे ज्ञानवान् और उत्तमजिज्ञासुका कर्मउपासनाविषे अधिकार नहीं. और मंदजिज्ञासु भी जो वेदांतश्रवणमें प्रवृत्त हुवा है, ताका अधिकार नहीं. और ज्ञानकी जाकूं इच्छा तो है, परंतु भोगमें बुद्धि आसक्त है याते श्रवणमें प्रवृत्त नहीं हुवा ऐसा जो मंदजिज्ञासु ताका निष्कामकर्म और उपासनामें अधिकार है. और—

जाकी भोगविषे ही आसक्ति है, ज्ञानकी इच्छा नहीं; ऐसा जो बहिर्मुख है, ताका सकामकर्मविषे भी अधिकार है. याते ज्ञानवान्कूं कर्मउपासनाका अधिकार नहीं. कर्म उपासनाका ज्ञान विरोधी है. और—

कर्मउपासना भी अंतःकरणकी शुद्धि और निश्चलता द्वारा ज्ञानकी उत्पत्तिका तो हेतु हैं; परंतु ज्ञानकी उत्पत्तिसे अनंतर जो कर्म उपासना करै, तो उत्पन्न हुवा ज्ञान नष्ट होय जावेगा यातै ज्ञानके विरोधी हैं, इच्छाके हेतु नहीं. काहेते "मैं कर्त्ता हूं और यज्ञादिक मेरेकूं कर्तव्य हैं, यज्ञादिकनका स्वर्गादि फल है;" या भेदबुद्धिसे कर्म होवै है. और "मैं उपासक हूं, देव उपास्यहै;" या भेदबुद्धिसे उपासना होवै है. सो दोनोंप्रकारकी बुद्धि "सर्व ब्रह्म है" या बुद्धिकूं दूरि करिके होवै है. यातै कर्मउपासना ज्ञानके विरोधी हैं. यद्यपि ज्ञानवान् आत्माकूं असंग जानै है, तौ भी देहका भोजनादिक व्यवहार, अथवा जनकादिनकी न्याईं अधिक राज्यपालनादिक व्यवहार करै है, ता व्यवहारका ज्ञान विरोधी. नहीं और व्यवहार ज्ञानकाभी विरोधी नहीं काहेते जो आत्मस्वरूप, ज्ञानसे असंग जाना है. ता आत्माविषे जो व्यवहार प्रतीत होवे तो व्यवहारका विरोधी ज्ञान, तथा ज्ञानका विरोधी व्यवहार होवे; सो विद्वान्कूं आत्माविषे व्यवहार प्रतीत होवे नहीं किंतु संपूर्णव्यवहार देहादिकनके आश्रित हैं. और आत्माविषे व्यवहारसहित देहादिकनका संबंध है नहीं. या बुद्धिसे संपूर्ण व्यवहार करैं हैं. इसी कारणते विद्वान्की प्रवृत्ति भी निवृत्ति ही कही है.

जैसे अन्यव्यवहार ज्ञानका विरोधी नहीं, तैसे कर्मउपासनाभी अन्यबहिर्मुखपुरुषनके करावने वास्ते आत्माकूं असंग जानिके

और देह वाक् अंतःकरणके आश्रित क्रिया जानिके जो कर्मउपासना करै, तो ज्ञानके विरोधी नहीं. काहेते जो आत्मा विद्वान्ने असंग जाना है, ताकूं कर्त्ता जानिके जो कर्मउपासना करै, तो ज्ञानके विरोधी होवें सो आत्माका असंगरूप दृढनिश्चय कर्मउपासनासे विद्वान्का दूरि होवे नहीं. याते आभासरूप कर्म और उपासना दृढज्ञानके विरोधी नहीं इसीकारणते जनकादिकनने आभासरूप कर्म करे हैं. जो आत्माकूं असंग जानिके और व्यवहारकी न्याईं देहादिकनके धर्म जानिके विद्वान् शुभक्रिया करै, सो आभासरूप कर्म कहिये है, ताका ज्ञानसें और भाष्यकारने कर्म उपासनाका जो ज्ञानसे विरोध कहा है, सो आत्मामें कर्त्ता बुद्धिसे जो कर्मउपासना करै है, ताका विरोध कहा है; और आभासरूपसे नहीं तथापि—

मंदबोधके आभासरूपकर्म, और आभासरूप उपासना भी विरोधी है. काहेते, जो संशयादिक सहित बोध है, सो मंदबोध कहिये है. जाके अंतःकरणमें " आत्मा असंग है, अथवा नहीं है" ऐसा कदाचित संशय होवै, सो पुरुष जो वारंवार " आत्मा असंग है, मेरेकूं किंचितमात्र भी कर्तव्य नहीं; " या अर्थकूं चिंतन करै, तब तो संशय दूरि होयके दृढबोध होय जावे. और कर्मउपासना करेगा, तो मंदबोध जो उत्पन्न हुवा है, दूरि होयके " मैं कर्ता भोक्ता हूं " यह विपरीतनिश्चय होय जावेगा. याते मंदबोधकी उत्पत्तिसे पूर्वही कर्मउपासना करै; और अनंतर नहीं. जो मंदबोधवाला कर्मउपासना करेगा, तो उत्पन्न हुवा बोध नष्ट होय जावेगा.

दृष्टांतः—जैसे पक्षी अपने अंडेकूं पक्षकी उत्पत्तिसे पूर्व सेवन करे है; और पक्षकी उत्पत्तिसे अनंतर भी अंडेकूं सेवन करै; तो बालकपक्षीके ता अंडेके जलसे पक्ष गल जावें. तैसे ज्ञानकी उत्पत्तिसे पूर्वही कर्मउपासनाका सेवन करै; और ज्ञानकी उत्पत्तिसे अनंतर नहीं. जो ज्ञानकी उत्पत्तिसे अनंतर भी कर्म उपासनाका सेवन करै; तो बालकपक्षीकी न्याईं मंदज्ञानका नाश होय जावे और वृद्धपक्षीकी जैसे अंडेके संबंधसे हानि होवे नहीं; तैसे दृढबोधकी तो हानि होवे नहीं, और वृद्धपक्षीकी न्याईं दृढबोधकूं कर्म उपासनासे उपयोग भी नहीं. इसरीतिसे ज्ञानवान्‌कूं मोक्षके निमित्त किंचितमात्र भी कर्तव्य नहीं. यह तृतीयप्रश्नका उत्तर कहा.

जो शिष्यकूं आचार्यने उत्तर कहे, सो वेदके अनुसार कहे, याते यथार्थ हैं; यह वार्त्ता कहैं हैं:—

दोहा।

शिष्य कह्यो जो तोहि मैं, सर्व वेदको सार
लहै ताहि अनयासही, संसृति नशै अपार ॥ ११ ॥

टीका—हे शिष्य ! जो मैं तेरेकूं कहा सो सर्ववेदका सार है. याते याविषे विश्वास कर. और याके जाननेते अनायास कहिये खेदविना अपार जो संसृति कहिये जन्ममरणरूप संसार, ताका नाश होवै है.

यद्यपि खेदका नाम आयास है; ताके अभावका नाम अनायास है; तथापि छंदके वास्ते अनयास पढ्या है. भाषामें छंदके वास्ते गुरुके स्थानमें लघु और लघुके स्थानमें गुरु पढनेका दोष नहीं.

औरं मोक्षके स्थानमें मोच्छही भाषामें पाठ होवै है. काहेते, यह भाषाकी संप्रदाय है.

दोहा।

लघु गुरु गुरु लघु होत है, वृत्ति हेतु उच्चार।
रू है अरुकी ठौरमैं, अवकी ठौर बकार॥
संयोगी क्ष न कपर ख न, नहीं टवर्ग णकार॥
भाषामैं ऋ ऌ हु नहीं, अरु तालव्य शकार॥

टीका—इतने अक्षर भाषामें नहीं; कोई लिखे तौ कवि अशुद्ध कहै. क्षके स्थानमें छ, खके स्थानमें ष, णकारके स्थानमें नकार, ऋ ऌके स्थानमें रि लि है, शकारके स्थानमें सकार भाषामें लिखने योग्य हैं.

"जगत्का कर्त्ता ईश्वर है, सो तेरेसे भिन्न नहीं और सत चित् आनंदरूप ब्रह्म तूं है." यह आचार्यने कह्या सोई कृपाते फिरि कहैं हैं।

कवित्त।

दीनताकूं त्यागि नर अपनो स्वरूप देखि,
तू तौ शुद्धब्रह्म अज दृश्यको प्रकाशी है।
आपनै अज्ञानते जगत सब तूंही रचै,
सर्वको संहार करै आप अविनाशी है॥
मिथ्या परपंच देखि दुःख जिन आनि जिय,
देवनको देव तू तो सब सुखराशी है।

जीव जग ईश होय मायासे प्रभासे तूं ही,
जैसे रज्जु सांप सीप रूप है प्रभासी है ॥ १२ ॥
अर्थ स्पष्ट ॥ १२ ॥

कवित्त ।

राग जारि लोभ हारि द्वेष मारि मार बारि,
बारबार मृगवारि पारवार पेखिये ।
ज्ञानभानु आनि तम तम तारि भागत्याग,
जीव सीव भेद छेद वेदन सु लेखिये ॥
वेदको विचार सार आपकूं संभारि यार,
टारि दसापास आश ईशकी न देखिये ।
निश्चल तू चल न अचल चलदल छल,
नभ नील तलमल तासूं न विशेखिये ॥ १३ ॥

टीका—ज्ञानके साधन कहैं हैं;—हे शिष्य ! राग जो पदार्थनमें दृढ आसक्ति है, ताकूं जारिके, लोभकूं हारि कहिये नाशकारि द्वेषकूं मारि; मार कहिये कामकूं, बारि, दूरिकर. राग लोभ द्वेष कामके ग्रहणते सर्व राजसी तामसी वृत्तिका ग्रहण है. याते सर्व राजसी तामसी वृत्तिका नाश कर यह अर्थ सिद्ध हुवा राजसीवृत्ति और तामसी वृत्ति ज्ञानकी विरोधी हैं. तिन्हके नाशविना ज्ञान होवै नहीं. याते तिन्हकी निवृत्ति जिज्ञासुकूं अपेक्षित है विवेक, वैराग्य, शमादि षट्संपत्ति, मुमुक्षुता; ये चारि जो ज्ञानके साधन हैं, तिन्हमें विवेक प्रधान है. काहेते विवेकसे वैराग्यादिक

उत्पन्न होवैं हैं याते, विवेकका उपदेश आचार्य करैं हैं:—हे शिष्य ! पारवार जो संसार है, ताकूं वारंवार मृगवारि कहिये मृगतृष्णाके जल समान मिथ्या जान पारवार नाम संसारका है;और अपारवार नाम आत्माका है. पारवार मिथ्या है, या कहनेते अपारवार मिथ्या नहीं, किंतु सत्य है- यह वार्ता अर्थसे कही. जैसे बाजीगरके तमासे देखते पुत्रकूं पिता कहै—"हे पुत्र ! यह आम्रवृक्षसे आदिलेके जो बाजीगरने बनाये हैं, सो मिथ्या हैं."या कहनेते बाजीगरकूं मिथ्या नहीं जानै है; किंतु सत्य जानै है. तैसे जगतकूं मिथ्या कहनेते आत्माकूं सत्य जानि लेवेगा. या अभिप्रायते आचार्यने पारवार मिथ्या कह्या. इसरीतिसे जगत् मिथ्या है, और आत्मा सत्य है; या विवेकका उपदेश कन्या. ता विवेकसे अन्यसाधन आपही उत्पन्न होवैं हैं. याते विवेकके उपदेशते सर्वसाधनका उपदेश अर्थसे कह्या. ज्ञानके बहिरंगसाधन कहे, अंतरंगसाधनश्रवणादि कहे हैं:—हे शिष्य ! ज्ञानरूपी जो भानु है, ताकूं आनि कहिये; श्रवणसे संपादन करिके,तम कहिये अज्ञानरूपी जो तम अंधेरा है, ताकूं तारि कहिये नाश कर, तम नाम अंधेरा और अज्ञानका है. अंधेरा उपमान है, और अज्ञान उपमेय है; प्रथम जो तम शब्द है, सो उपमेयका वाचक है, और दूसरा उपमानका वाचक है.

दोहा।

जाकूं उपमा दीजिये, सो उपमेय बखानि ॥
जाकी उपमा दीजिये, सो कहिये उपमानि ॥ १४ ॥

ज्ञानका स्वरूप अन्यशास्त्रनमें नानाप्रकारका अंगीकार किया है. याते, महावाक्यके अनुसार ज्ञानका स्वरूप कहैं हैंः—हे शिष्य! जीव और ईश्वरविषे अविद्या और मायाभागकूं त्यागिके तिन्हका जो भेद प्रतीत होवै है; ताकूं छेद कहिये दूरि कर,और जीवईश्वरमें जो वेदन कहिये चेतनभाग है, ताकूं भेदरहित जान. या कहनेते यह वार्त्ता कही—महावाक्यनमें भागत्यागलक्षणाते जीव ईश्वरकी एकता जान. शिवके स्थानमें सीव पढ्या है; तृतीयपादका अर्थ स्पष्ट है.

पूर्वकहे अर्थकूं संक्षेपते चतुर्थपादसे कहैं हैं. हे शिष्य !चल कहिये विनाशी जो देहादिक संघात, सो तूं नहीं किंतु अचल कहिये अविनाशी जो ब्रह्म सो तूं है. और चलदल कहिये वृक्षरूप जो संसार, सो छल कहिये मिथ्या है. जैसे नभविषे नीलता और तलमल कहिये कटाहरूपता है नहीं, किंतु मिथ्याप्रतीत होवै है. तैसे संसार भी आत्माविषे है नहीं, मिथ्याप्रतीत होवै. है वृक्षरूप करि संसार, श्रुतिस्मृतिमें कह्या है; याते वृक्षके वाचक चलदल शब्दका संसारमें प्रयोग कर्‍या है. मोक्षका साधन ज्ञान है या अर्थ कूं अन्यप्रकारसे कहैं हैं—

कवित्त।

बंध मोक्ष गेह देहवान ज्ञानवान जान,
राग रु विराग दोइ ध्वजा फररात है।
विषै विषे सत्यभ्रम भ्रममति वात तात,

हल्लात प्रात रात घरि न ठहरात हैं॥
साछ्य साछी पूतरी अनूजरी रु ऊजरी है,
देखि रागी त्यागी ललचात जन जात हैं।
चंचल अचल भ्रम ब्रह्म लखि रूप निज,
दुखकूप आनंद स्वरूपमैं समात हैं॥१५॥

टीका—हे शिष्य! देहवान् कहिये देहअभिमानी अज्ञानी, और ज्ञानवान्; बंध और मोक्षके गेह कहिये धाम हैं. अज्ञानी तो बंधका धाम है, और ज्ञानी मोक्षका धाम है. राग और विराग तिनकी ध्वजा हैं. जैसे ध्वजा राजाके नगरका चिह्न होवै है, तैसे राग और विराग तिनके चिह्न हैं. अज्ञानीका राग चिह्न है, और ज्ञानीका विराग चिह्न है. अज्ञानीविषे भी विराग होवै है; याते ज्ञानीका अज्ञानीसे विलक्षण विराग कहैं हैं—हे तात! विषय जो शब्दादिक हैं; तिन्ह विषे सत्यभ्रम कहिये, सत्यपनेकी भ्रांति, और भ्रममति कहिये. रज्जुसर्पकी न्याईं विषय भ्रमरूप हैं; यह जो मति-निश्चय सो वातकी न्याईं राग और विरागकूं हलावै है. जैसे वायु ध्वजाकी चंचलता करै है, तैसे विषयमें सत्यबुद्धि और भ्रमबुद्धि राग और विरागकूं चंचल करै हैं; शिथिल होने देवैं नहीं. विषयमें सत्यबुद्धिसे रागकी शिथिलता दूरि होवै है और विषयमें भ्रमबु-द्धिसे विरागकी शिथिलता दूरि होवै है.

विषय असत्य है, याते तिन्हमें सत्यबुद्धि भ्रांतिरूप है. इस वार्त्ताके जनावनेकूं कवित्तमें सत्यभ्रम कह्या, सत्यबुद्धि नहीं कही;

भ्रांतिज्ञान, और भ्रांतिज्ञानका विषय जो मिथ्यावस्तु सो दोनों भ्रम कहियें हैं. या कहनेते, अज्ञानीके विरागते ज्ञानीके विरागका भेद कह्या; काहेते, जा अज्ञानीका विराग है, सो विषयमें मिथ्याबुद्धिसे उत्पन्न नहीं हुवा; याते मंद है. विषय मिथ्या है, यह बुद्धि अज्ञानीकूं होवै नहीं. यद्यपि शास्त्रयुक्तिसे अज्ञानी भी मिथ्या जाने है. तथापि विषय मिथ्या हैं, यह अपरोक्षमति ज्ञानवान्‌कूंही होवै है; अज्ञानीकूं नहीं. याते अज्ञानीकूं विषयमें परोक्ष जो मिथ्याबुद्धि, तासे अपरोक्ष सत्यभ्रांति दूरि होवै नहीं. इस रीतिसे अज्ञानीकूं विषयमें जब विराग होवै है, ता कालमें परोक्ष मिथ्याबुद्धि है भी परंतु परोक्ष मिथ्याबुद्धिसे प्रबल अपरोक्ष सत्यबुद्धि है. याते अज्ञानीकी परोक्ष मिथ्याबुद्धि विरागकी हेतु नहीं; किंतु प्रबल जो सत्यबुद्धि; तासे विषयमें रागही होवै है, और जो विराग होवै, तो भी मिथ्याबुद्धिसे नहीं. किंतु विषयमें दोषदृष्टिसे होवै है. ज्ञानवान् सर्वप्रपंचकूं अपरोक्षरूप करिके मिथ्या जानै है. ता अपरोक्ष मिथ्याबुद्धिसे, अपरोक्षसत्यबुद्धि दूरि होवै है, याते रागकी हेतु विषयमें सत्यबुद्धि, तो ज्ञानीकूं है नहीं; विरागकी हेतु विषयमें मिथ्याबुद्धि ज्ञानवान्‌कूं है. जो ज्ञानीकूं विषयमें सत्यबुद्धि फेरि होवै, तो राग फेरि होवै; और विराग दूरि होवै. सो अपरोक्षरूपते मिथ्या जाने पदार्थमें फेरि सत्यबुद्धि होवै नहीं जैसे अपरोक्षरूपते मिथ्या जान्या जो रज्जुमें सर्प ताकेविषे सत्यबुद्धि. फेरि होवै नहीं तैसे ज्ञानीकूं फेरि सत्य बुद्धि होवै नहीं. इसरीतिसे रागकी उत्पत्ति और विरागकी निवृत्ति

ज्ञानीको होवै नहीं, याते ज्ञानीका विराग दृढ है. और दोषदृष्टिसे जो अज्ञानीकूं विराग होवै है; सो तो दूरि होय जावे है. काहेते,जा पदार्थनमं दोपदृष्टि होवै है, ता पदार्थमेंही अन्यकालमें सम्यक् बुद्धि भी होयजावै है. जैसे सर्व पुरुषनकूं पशुधर्मके अंतमें स्त्रीविषे दोषदृष्टि होवै है; और कालांतरमें फेरि सम्यक्बुद्धि होवै है. इसरीतिसे दोपदृष्टि जब दूरि होवै, तब अज्ञानीका विराग भी दूरि होय जावै है. याते अज्ञानीकूं दृढविराग होवै नहीं. इसरीतिसे राग और विराग अज्ञानीके और ज्ञानीके चिह्न कहे हैं:—हे शिष्य! जैसे थामके ऊपरि पूतरी कहिये हस्ती आदिकनकी मूर्ति होवै है; तैसे बंधमोक्षका थाम जो अज्ञानी, और ज्ञानीका अंतःकरण है; ताकेविषे साक्ष्य साक्षी पूतरी है, अज्ञानी अंतःकरणविषे तो साक्ष्यरूपी पूतरि है, और ज्ञानी अंतःकरणमें साक्षीरूपी पूतरी है. साक्षीका विषय जो प्रपंच है, ताकूं साक्ष्य कहें हैं. साक्ष्यरूपी पूतरी अनूजरी कहिये मलिन है. और साक्षीरूपी पूतरी ऊजरी कहिये शुद्ध है. आगे अर्थ स्पष्ट है. चंचलभ्रम निजरूप लखि, और अचलब्रह्म निजरूप लखि, या क्रमते अन्वय है.

भागत्यागलक्षणाका जो कवित्तमें विशेषकरिके ग्रहण किया है, ताविषे हेतु कहनेकूं लक्षणाका भेद कहें हैं.

दोहा।

त्रिविधलच्छना कहत हैं, कोविद बुद्धिनिधान
जहती अरु अजहती पुनि, भागत्याग निजजान ॥

आदि दोइ नहिं संभवैं, महावाक्यमें तात
भागत्यागते रूप निज, ब्रह्मरूप दरशात ॥

अर्थ स्पष्ट.

शिष्य उवाच-अर्धशंकर-छंद ।

अब लच्छना प्रभु कहत काकूं, देहु यह समुझाय ॥
पुनि भेद ताके तीनि तिनके, लक्षण हुं दरशाय ॥ १७ ॥

टीका-सामान्यज्ञानसे अनंतर विशेषका ज्ञान होवै है. जैसे सामान्यब्राह्मणका ज्ञान हुयेसे अनंतर सारस्वत आदिक विशेषका ज्ञान होवै है. तैसे लक्षणासामान्यका ज्ञान होवै,तो जहती आदिक विशेषरूपनका ज्ञान होवैं. लक्षणाका सामान्यरूप जाने विना, जहती आदिक विशेषरूपनका ज्ञान होवै नहीं. इस अभिप्रायते शिष्य कहै है-हे प्रभो ! लक्षणा काकूं कहत हैं ? यह मैं नहीं जानूं हूं. याते लक्षणाका सामान्यरूप दिखायके तिसते अनंतर जो जहती आदिक लक्षणाके तीन भेद कहिये विशेष हैं; तिन्हके जुदे जुदे लक्षण दिखावो. छंदवास्ते प्रभोकूं प्रभु पढ्या, और भाषाकी संप्रदायते लक्षणाके स्थान मैं लच्छना पढ्या.

गुरुवाक्य-शंकरछंद ।

श्रुति चित्त निज एकाग्र करि,अब शिष्य सुनि मम बानि।
ज्यूं लच्छना अरु भेद ताके, लेहु नीके जानि ॥
सुनि वृत्ति है द्वैभांति पदकी, शक्ति तामें एक ।
तहां लच्छना पुनि जानि दूजी, सुनहु सो सविवेक॥ १८ ॥

टीका—पदका जो अर्थसे संबंध, सो वृत्ति कहिये है. सो वृत्ति दो प्रकारकी है. ता दो प्रकारमें, एक शक्तिवृत्ति है और दूजी लच्छनावृत्ति है. तिनकूं सविवेक कहिये विवेकसहित याका अर्थ लच्छनसहित सुनि.

अथ शक्तिलक्षण—दोहा।

जा पदतैं जा अर्थकी, है सुनतेहि प्रतीतिं॥
ऐसी इच्छा ईशकी, शक्ति न्यायकी रीति॥

टीका—जा पदते कहिये घटपदते, जा अर्थकी कहिये कलश अर्थकी सुनतेही प्रतीति कहिये ज्ञान सर्वपुरुषनकूं होवे; ऐसी जो ईश्वरकी इच्छा, ताकं न्यायशास्त्रमें शक्ति कहैं हैं.

अथ स्वरीति शक्तिलक्षण।
अर्धशंकर—छंद।

सामर्थ्य पदकी शक्ति जानहु, वेदमत अनुसार॥
सो वह्निमें जिम दाहकी है शक्तिं त्यूं निरधार॥

टीका—घटपदके श्रोताकूं कलशरूप अर्थके ज्ञान करनेका जो घटपदविषे सामर्थ्य; सोई घटपदमें शक्ति है. तैसे पटपदके श्रोताकूं वस्त्ररूप अर्थके ज्ञान करनेका जो पटपदविषे सामर्थ्य, सोई पट-पदमें शक्तिवृत्ति है. ऐसे सर्वपदनमें जानि लेनी. दृष्टांतः—जैसे वह्नि में अपनेसे मिलतेही वस्तुके दाह करनेकी सामर्थ्यरूप शक्ति है, तैसे श्रोताके कर्णसे मिलतेही वस्तुके ज्ञान करनेकी जो पदविषे सामर्थ्य, सो शक्ति कहिये है. सामर्थ्य नाम समर्थपनेका है. जाकूं

सामर्थाई कहें हैं. और बल भी कहें हैं, जोरभी कहैं हैं, जैसे अग्निमें दाहकी शक्ति है, तैसे जलविषे गीलाकरनेकी, तृषा दूरि करनेकी, पिंड बांधनेकी, जो समर्थाई है, सो शक्ति है. इस प्रकारसे सर्वपदार्थनविषे अपना अपना कार्य करनेकी सामर्थ्य है, सोई शक्ति है. यह वेदका सिद्धांत है. ताहीकूं निर्धार कहिये निश्चय कर, और न्यायकी रीति त्यागनेकूं योग्य है.

शिष्य उवाच–शंकरछंद।

ननु वह्निमें नहिं शक्ति भासै वह्नि विन कछु और।
है हेतुता जो दाहकी सो वह्निमें तिहि ठौर॥
इम पदनहूमें वर्णबिन कछु शक्ति भासत नाहिं।
या हेतुतें जो ईशइच्छा शक्ति सो मति माहिं॥ २१॥

टीका–ननुशब्द संदेहका वाचक है. वह्निमें ताके स्वरूपसे जुदी शक्ति भासै कहिये प्रतीत होवै नहीं. और पूर्व कह्या दाहका हेतु जो वह्निमें सामर्थ्य, सोई वह्निमें शक्ति है; सो बनै नहीं काहेते, दाहकी हेतुता कहिये जनकता, कारणपना केवल वह्निमेंही है. अप्रसिद्ध सामर्थ्य वह्निमें मानिके ताकेविषे हेतुता माननेका, और प्रसिद्धवह्निमें हेतुता त्यागनेका कुछ प्रयोजन नहीं. जैसे दृष्टांतमें, शक्ति नहीं संभवै, इम कहिये इसरीतिसे पदनके विषे भी वर्णका समुदाय जो पदनका स्वरूप, तासे जुदी शक्ति भासै नहीं. और ताका प्रयोजन भी नहीं. या हेतुते ईश्वरकी इच्छारूप जो न्यायकी रीतिसे शक्ति, सोई मेरी मतिमांहि भासै है.

गुरुरुवाच–शंकरछंद।

प्रतिबंध होते वह्नितैं नहिं दाह उपजे अंग।
उत्तेजक रु जब सन्निधी फिरि दहै वह्नि स्वसंग॥
है वह्निमैं जो हेतुता तो दाह है सबकाल।
जो नशै उपजै वह्नि होते हेतु शक्ति सु बाल॥ २२॥

टीका–हे अंग! प्रिय! प्रतिबंधक होते अग्निसे दाह होवै नहीं. और उत्तेजक समीप धरै, तब स्वसंग कहिये, अग्निसे मिल्या जो पदार्थ ताका दाह, प्रतिबंध होते भी होवै है. जो शक्तिसे विना केवल अग्निकूं दाहकी हेतुता होवै तो सर्वकाल कहिये, उत्तेजकरहित प्रतिबंधकाल और प्रतिबंधरहितकालकी न्याई उत्तेजकसहित प्रतिबंधकालमें भी दाह हुवा चाहिये. काहेते दाहका हेतु केवल अग्नि ताकालमें भी है. और स्वमतमें तो यह दोष नहीं. काहेते, स्वमतमें अग्निकी शक्ति अथवा शक्तिसहित अग्नि दाहका हेतु है;केवल अग्नि नहीं.जहां प्रतिबंध है तहां यद्यपि प्रतिबंधसे अग्निका तौ नाश वा तिरोधान नहीं भी होता; तथापि अग्निकी शक्तिका नाश वा तिरोधान होवै है. याते दाहका हेतु शक्ति अथवा शक्तिसहित अग्निका अभाव होनेते दाह होवै नहीं. और जा स्थानमें प्रतिबंधके समीप उत्तेजक आया है; तहां प्रतिबंधने तो अग्निकी शक्तिका नाश वा तिरोधान करि दिया, परंतु उत्तेजकने फेरि शक्तिकी उत्पत्ति वा प्रादुर्भाव किया है. याते प्रतिबंधके होते भी उत्तेजकके माहात्म्यतैं दाहका हेतुशक्ति वा शक्तिसहित अग्निके होनेते दाह होवै है. चतुर्थ

पादका अक्षरार्थ यह हैः—हे बाल ! अज्ञाततत्त्व ! जो नशै कहिये नाशकूं प्राप्त होवे प्रतिबंधते, और उपजे उत्तेजकते, सु कहिये सो शक्ति दाहका हेतु है. कारजका जो विरोधी सो प्रतिबंध और प्रतिबंधक कहिये है. और प्रतिबंधकके होते कारजका साधन उत्तेजक कहिये है.

अग्निके स्थान प्रतिबंध और उत्तेजक मणिमंत्रऔषध हैं, जा मणि वा मंत्र वा औषधके सन्निधानसे दाह होवे नहीं, सो प्रतिबंधक जा मणिमंत्रऔषधके सन्निधानसे प्रतिबंधक होते भी दाह होवे, और सो उत्तेजक है.

गुरुवाक्य।

अर्धशंकर-छंद।

शिष रीति यह सब वस्तुमें तूं, शक्ति लेहु पिछानि।
बिनशक्तिनाहिं कछु काज होवे, यहै निश्चय मानि॥

टीका—हे शिष्य ! वह्निकी न्याईं जल आदिक सर्वपदार्थनविषे तूं शक्ति पिछान. शक्तिसे विना किसी हेतुसे कोई कार्य होवे नहीं. सार्धशंकरसे शक्तिका प्रयोजन कह्या.

पूर्व जो शिष्यने प्रश्न कियाथा—"शक्ति" वह्निसे भिन्न प्रतीत होवे नहीं. ताका समाधान कहनेकूं अर्धशंकरसे शक्तिका अनुभव दिखावैं हैं—

मूल अर्धशंकर-छंद।

अब सत्ति यामैं है नहीं वह, सत्ति उपजी और।
यह सत्तिको परसिद्ध अनुभव, लोपि है किस ठौर॥

अर्थ—स्पष्ट । सिद्धांतकी रीतिसे शक्तिका स्वरूप और शक्तिमें प्रमाण निरूपण किया अन्यमतकी शक्तिखंडन करैं हैं—

अर्धशंकर—छंद ।

जो शक्ति इच्छा ईशकी, सो पदनके न नजीक
मत न्यायको अन्याय या विधि, शक्ति जांनि अलीक२५

टीका—जो ईश्वरकी, इच्छारूप पदशक्ति कही, सो बनै नहीं. काहेते, ईश्वरकी इच्छा ईश्वरका धर्म है; याते ईश्वरमें रहै. जो इच्छा सो पदकी शक्ति है, यह कहना बनै नहीं. जो पदका धर्म शक्ति होवै तो पदकी शक्ति है यह कहना बनै यावे पदकी सामर्थ्यरूपहीं पदकी शक्ति है; इसकी इच्छा पदके नजीक भी नहीं, सो पदकी शक्ति है;यह कहना बनै नहीं. अलीक नाम झूटका है.

अथ वैयाकरणरीति शक्तिलक्षण ।

अर्धशंकर—छंद ।

योग्यता जो अर्थकी, पदमांहि शक्ति सु देखि ।
यूं कहत वैयाकरणभूषण, कारिका हरि लेखि ॥ २६ ॥

टीका—पदके विषे जो अर्थकी योग्यता कहिये अर्थके ज्ञानकी हेतुता हेतुपना सो पदमें शक्ति है. जैसे घटपदविषे कलशरूप अर्थके ज्ञानकी हेतुतारूप योग्यता है, सोई शक्ति है. इसरीतिसे वैयाकरण भूषणग्रंथमें हरिकी कारिका प्रमाण लिखिके शक्ति कही है. अथवा वैयाकरणके जो भूषण कहिये उत्तम वैयाकरण, ते हरिकी कारिका कहिये श्लोककूं देखिके कहत हैं ।

गुरुवाक्य-सार्धशंकर-छंद।

सुनि शिष्य वैयाकरणमतमैं, प्रबलदूषण एक।
सामर्थ्य पदमैं है न वा यह, पूछि ताहि विवेक॥
भाषे जु है हो शक्ति मानहु, ताहि लोकप्रसिद्ध
कहिं नाहि जो असमर्थ पद सो, योग्य है, यह सिद्ध॥
असमर्थ है पद अर्थ योग्य रु, कहतही सविरोध॥
जो और दूषणदेखनो, तो ग्रंथदर्पण शोध॥ २८॥

टीका-प्रथमपाद स्पष्ट. हे शिष्य। अर्थ ज्ञानकी हेतुतारूप योग्यताकूं जो शक्ति मानै है; ताकूं यह विवेक पूछि -तेरे मतमें पदविषे सामर्थ्य है, अथवा नहीं है; प्रथमपक्ष कहै तो हमारे मतकी शक्ति बलसे सिद्ध होवै है. यह तृतीयपादसे कहें हैं, भाषै जु है तौ, इति. याका अन्वयः-जु कहिये जो भाषै हैं, तौ लोकप्रसिद्ध शक्ति ताहि मानहु. अर्थ-जो वैयाकरण कहै, पदमें सामर्थ्य है, तौ लोकमें प्रसिद्ध जो सामर्थ्यरूप शक्ति है, ताहि पदमें भी मानहु. पदमें अर्थज्ञानकी जनकतारूप योग्यताकूं शक्ति मति मान

अभिप्राय यह हैः-जो पदमें सामर्थ्य अंगीकार करै, ताकूं सामर्थ्यसे भिन्नरूप शक्तिका मानना योग्य नहीं. किंतु सामर्थ्य-रूपही शक्ति है. यह मानना योग्य है. काहेते, सामर्थ्य बल जोर शक्ति, ये. च्यारि नाम एक वस्तुके लोकमें प्रसिद्ध हैं. जोरहीनकूं लोक कहैं हैं, यह सामर्थ्यहीनहै बलहीन है, शक्तिहीन है; और भर्जित अन्नकूं कहैं हैं. याके विषे अंकुरउत्पत्तिकी सामर्थ्य नहीं

है; बल नहीं है, शक्ति नहीं है, जोर नहीं है, इसरीतिसे सामर्थ्य और शक्तिकी एकता लोकमें प्रसिद्ध है. और वह्निमें भी सामर्थ्य-रूपही शक्ति निर्णीत है. याते पदमें सामर्थ्यरूपही शक्ति माननी योग्य है और पदमें सामर्थ्य मानिके तासे भिन्न योग्यताकूं शक्ति कहनेका लोकप्रसिद्धिके विरोधविना और फल नहीं केवल लोक-प्रसिद्धिका विरोधही फल है और जो ऐसे कहैं, सामर्थ्यकूंही हम योग्यता कहें हैं, तौ हमाराही मत सिद्ध होवै है; और ऐसे कहैं हम सामर्थ्य अंगीकार करें तो सामर्थ्यरूप शक्तिपदमें संभवै; सो सामर्थ्यकूं अंगीकारही नहीं करते, याते अर्थज्ञानकी जनकतारूप योग्यताही पदमें शक्ति है, ताकूं यह पूछ्या चाहिये—

सामर्थ्यका अभाव केवल पदमेंही अंगीकार करैं हैं, अथवा वह्निआदिक सर्वपदार्थनमें सामर्थ्यका अभाव अंगीकार करैं हैं ? जो अंत्यपक्ष कहैं, तो वह्निआदिक पदार्थनमें सामर्थ्यरूप शक्तिके प्रतिपादनमें उक्त जो युक्ति तिन्हते खंडित है और प्रथमपक्ष कहैं तौ ताके विषे अंत्यपक्ष उक्त दोष तौ यद्यपि नहीं है; काहेते, जो वह्निआदिक सर्वपदार्थनमें सामर्थ्यरूप शक्ति नहीं मानैं, तौ प्रति-बंधकते दाहका अभाव बनै नहीं. यह अंत्यपक्षमें दोष है; सो दोष प्रथमपक्षमें नहीं. काहेते, वह्नि आदिक सर्वपदार्थनमें तौ सामर्थ्यरूप शक्ति है; याते प्रतिबंधकतैं दाहके अभावका असंभव नहीं. परंतु पदके विषे अर्थज्ञानकी जनकतारूप योग्यतासे भिन्न सामर्थ्यरूप शक्ति नहीं किंतु पदमें अर्थकी योग्यताही शक्ति है. यह प्रथमपक्ष

है. ताके विषे प्रतिबंधकते दाहका असंभवरूप दोष तौ नहीं, तथापि पदविषे भी वह्निकी न्याई सामर्थ्यका अंगीकार अवश्य किया चाहिये; यह प्रतिपादन करैं हैं;शंकरके दोपादनतेः—नाहिं जो असमर्थ, इत्यादि सविरोधपर्यंत. अथ नाहिं कहिये पदमें सामर्थ्यका अंगीकार नहीं, तो जो असमर्थपद सो योग्य कहिये अर्थज्ञानका जनक है; यह सिद्ध कहिये मतका निश्चय है, सो असंगत है.काहेते पद असमर्थ है, और अर्थयोग्य, कहिये अर्थज्ञानका जनक है; यह वाक्य नपुंसकका अमोघवीर्य है; इस वाक्यकी न्याई कहतेही सविरोध है विरोधसहित है. सामर्थ्यसहितका नाम समर्थ है. और सामर्थ्यरहितका नाम असमर्थ है. असमर्थसे कोई कार्य होवे नहीं, यह लोकमें प्रसिद्ध है. याते असमर्थ पदसे भी अर्थका ज्ञानरूप कार्य बनै नहीं. याते पदमें सामर्थ्य मानना योग्य है. जब सामर्थ्यपदमें अंगीकार किया तब शक्ति भी पदमें सामर्थ्यरूप ही माननी योग्य है. इसरीतिसे अर्थज्ञानकी जनकतारूप योग्यता पदमें शक्ति नहीं, किंतु सामर्थ्यरूपही शक्तिहै, जो वैयाकरणमतमें और दूषण देखना होवे, तो शक्तिके निरूपणमें दर्पणग्रंथकूं शोध, कहिये देख. दूषण क्लिष्ट है, याते दर्पणउक्तदूषण लिख्या नहीं.

अथ भट्टरीति-शक्तिलक्षण ।

अर्धशंकर-छंद ।

संबंध पदको अर्थसे तादात्म्य शक्ति सु वेद ।
इम भट्टके अनुसारि भाषत ताहि भेदाभेद ॥

टीका—पदका अर्थसे जो तादात्म्यसंबंध, ताकूं भट्टके अनुसारी शक्ति कहैं हैं. सो वेद कहिये तू जान. ताहि कहिये तिस तादात्म्यकूं भेदाभेदरूप कहैं हैं. यह तिन्हका अभिप्राय है—अग्निपदका अंगार अर्थसे अत्यंतभेद होवै तौ जैसे अग्निपदसे अत्यंतभिन्न जल आदिक हैं; तिन्हकी अग्निपदसे प्रतीति होवै नहीं. तैसे अग्निपदसे अंगाररूप अर्थकी प्रतीति नहीं होवैगी. पदसे अत्यंतभिन्न अर्थकी प्रतीति होवै नहीं. जैसे पदका अपने अर्थसे अत्यंतभेद नहीं; तैसे अत्यंत अभेद भी नहीं. जो अत्यंत अभेद वाच्यवाचकका होवै; तो जैसे अग्निपदके वाच्य अंगारसे मुखका दाह होवै है, तैसे अंगारका वाचक अग्निपदके उच्चारण कियेते भी मुखका दाह हुवा चाहिये. और पदके उच्चारणते दाह होवै नहीं; याते अत्यंतअभेद भी नहीं, किंतु अग्निपदका अंगाररूप अर्थसे, भेदसहित अभेदहै याते दाह होवै नहीं. और अभेद है याते अग्निपदते जलआदिकनकी न्याईं अंगारकी प्रतीतिका असंभव भी नहीं. जैसे अग्निपदका अंगाररूप अर्थसे भेदसहित अभेद है; तैसे उदक, वन, जल, दक, जीवन पदनका पानीरूप अर्थसे भेदसहित अभेद है. जो अत्यंत भेद होवै तो जैसे उदकआदिक पदनते अत्यंतभिन्न अग्निआदिक पदनते अत्यंतभिन्न अग्निआदिक हैं; तिन्हकी उदकआदिक पदनते प्रतीति होवै नहीं तैसे पानीरूप अर्थकी भी उदकआदिक पदनते प्रतीति नहीं होवैगी; याते अत्यंत अभेद नहीं; और अत्यंत अभेद भी नहीं. जो अत्यंत अभेद होवै, तो जैसे पानीते मुखमें शीतलता होवै है; तैसे उदक आदिक पदनके उच्चारणते भी मुखमें शीत-

लता हुई चाहिये; और पदनते शीतलता होवै नहीं, याते अत्यंतअ-भेद नहीं. किंतु भेदसहित अभेद होनेते दोऊ दोष नहीं. इसरीतिसे सर्वत्र ही अपने अपने वाच्यते वाचकपदनका भेदसहित अभेदहै. ता भेदसहित अभेदकूं ही, भट्टके अनुसारी तादात्म्यसंबंध कहैं हैं: और भेदाभेद कहैं हैं. सो भेदाभेदरूप तादात्म्यसंबंध ही, सर्वपदनमें अपने अपने अर्थकी शक्ति है. तादात्म्यसंबंधसे जुदी सामर्थ्यरूप शक्ति नहीं. भेदाभेदमें युक्ति कही. अब प्रमाण कहैं हैं:—

अर्ध शंकरछंद।

यह ओंअक्षरब्रह्म है यों कहत वेद अभेद।
पुनि बानिमैं पद अर्थ बाहरि देखियत यह भेद॥

टीका—मांडूक्यआदिक वेदवाक्यनमें "ॐ अक्षर ब्रह्म है" यह कह्या है. तहां व्याकरणकी रीतिसे प्रकाशरूप सर्वकी रक्षाक-रता ॐ अक्षरका अर्थ है. ऐसा ब्रह्म है. याते ॐ अक्षर ब्रह्मका वाचक है; और ब्रह्म वाच्य है. जो वाच्यवाचकका आपसमें अत्यंत भेद होवै, तो वाचक ॐ अक्षरका और वाच्य ब्रह्मका, मांडूक्यआदिकनमें अभेद नहीं काहेते और "ॐ अक्षर ब्रह्म है" इसरीतिसे अभेद कह्याहै. याते वाच्यवाचकके अभेदमें वेदवचन प्रमाण है. और सर्वलोककी प्रतीतिसे वाच्यवाचकका भेद सिद्ध है. काहेते, अग्निआदिक पद बानीमें हैं, और अंगारआदिक तिनका अर्थ बानीते बाहर चुल्हिआदिकनमें हैं. तैसे ॐ अक्षररूप पद बानीमें है, और ताका अर्थ ब्रह्म, बानीमें नहीं है; किंतु बानीते

बाहरि कहिये अपने महिमामें है. यद्यपि ब्रह्म व्यापक है; याते बानीमें ब्रह्मका अभाव नहीं. तथापि ब्रह्ममें बानी है; और बानीमें ब्रह्म नहीं; इसरीतिसे सर्वलोककूं पद बानीमें; और अर्थ बानीते बाहरि प्रतीत होवै है. याते पदका और अर्थका भेद लोकमें प्रसिद्ध है. इसरीतिसे वाच्यवाचकके भेदमें सर्वलोकका अनुभव प्रमाण है, और तिन्हके अभेदमें वेदवचन प्रमाण हैं याते पदका अर्थसे भेदाभेदरूप तादात्म्यसंबंध अप्रमाण नहीं; किंतु प्रमाणसिद्ध है.

प्रसंगते अन्यस्थानमें भी भेदाभेदतादात्म्यसंबंध दिखावैं हैंः—

अर्धशंकर—छंद।

जो गुण गुणी और जाति व्यक्ती, क्रिया अरु तद्वान।
संबंध लखि तादात्म्य इनको, कार्यकारण सान ॥२१॥

टीका—रूप रस गंध आदिक गुण हैं, तिन्हका आश्रय गुणी कहिये है. जैसे रूप आदिकनका आश्रय भूमि गुणी है. अनेकनके मांहि रहे जो एकधर्म, सो जाति कहियें है. जैसे सर्वब्राह्मणशरीरनके मांहि एक ब्राह्मणत्व है, और सर्वशूद्रमांहि शूद्रत्व है; और सर्वजीवनमांहि जीवत्व है, पुरुपनमें पुरुषत्व है; सर्वघटनमांहिं घटत्व है. जाकूं लोकमांहिं ब्राह्मणपना, शूद्रपना, जीवपना, पुरुषपना, घटपना कहते हैं; सोई ब्राह्मणआदिक शरीरनमाहिं, ब्राह्मणत्व आदिक जाति हैं. जातिका आश्रय जो ब्राह्मणआदिक, सो व्यक्ति कहियें हैं. गमन आगमनआदिक क्रिया कहियें हैं, और

तद्वान कहिये तिसवाला, अर्थ यह, क्रियाका आश्रय. इतने पदार्थ-नका तादात्म्यसंबंध है; यह लखि कहिये जानि. और कारणकार्यकं सान, कहिये गुणगुणी आदिकविषे मिलाव, अभिप्राय यह है:—कारणकार्यका भी गुणगुणीकी न्याई तादात्म्यसंबंध है. गुणका और गुणीका आपसमें तादात्म्यसंबंध है. जातिका और व्यक्तिका आपसमें तादात्म्यसंबंध है. तैसे क्रिया और क्रियावान्का तादात्म्यसंबंध है. कारणका और कार्यका भी तादात्म्यसंबंध है; तादात्म्य नाम भेदसहित अभेदका है.

यद्यपि निमित्तकारणका और कार्यका तौ भेदाभेदरूप तादात्म्य नहीं है; किंतु अत्यंत भेद है; तथापि उपादानकारणका और कार्यका, भेदाभेदरूप तादात्म्यही संबंध है. जैसे घटके निमित्तकारण, कुलालदंडआदिक हैं; तिनका घटरूप कार्यसे अत्यंत भेद भी है परंतु उपादानकारण मृत्तिकापिंड और घटकार्यका भेदसहि अभेद है. जो मृत्तिकापिंडसे घट अत्यंत भिन्न होवे, तो जैसे मृत्तिकापिंडसे अत्यंत भिन्न तैलकी उत्पत्ति होवे नहीं; तैसे घटकी भी उत्पत्ति नहीं होवेगी. और उपादानकारणका कार्य ते अत्यंत अभेद होवे; तौ भी मृत्पिंडसे घटकी उत्पत्ति होवे नहीं. काहेते, अपने स्वरूपसे अपनी उत्पत्ति होवे नहीं. याते उपादानकारणका कार्यते भेदसहितअभेद है. याते अत्यंत अभेदपक्षका दोष नहीं. इसरीतिसे उपादानकारणका कार्यते भेदाभेदयुक्तिसिद्ध है. और प्रतीतिसे भी उपादानते कार्यका भेदाभेदही सिद्ध है यह मृत्पिंड है, यह घट है; इसरीति की भिन्नप्रतीतिसे भेद सिद्ध होवै है. और विचारते देखैं तो घटके

बाहिरे भींतर मृत्तिकासे भिन्न कुछ वस्तु प्रतीति होवे नहीं किंतु मृत्तिका ही प्रतीति होवै है. याते अभेद सिद्ध होवैहै. इसरीतिसे उपादानकारणका, कार्यते भेदाभेदरूप तादात्म्यसंबंध है. तैसे गुण और गुणीका भी भेदाभेद है जो घटके रूपका घटसे अत्यंतभेद होवे तो जैसे घटते पटका अत्यंत भेद है; सो पट घटके आश्रित नहीं किंतु स्वतंत्र है; तैसे घटका रूप भी घटके आश्रित नहीं होवेगा. और गुणगुणीका अत्यंत अभेद होवै तौभी घटका रूप घटके आश्रित बने नहीं. काहेते, अपना आश्रय आप होवै नहीं. याते गुणगुणीका भेदाभेदरूप तादात्म्यसंबंध है, यह युक्ति, जाति और व्यक्ति तथा क्रिया और क्रियावालेके भेदाभेदरूप तादात्म्यसंबंधमें जाननी. और खंडन करना जो मत, ताके विषे बहुत युक्तिकहनेका प्रयोजन नहीं; याते और युक्ति नहीं लिखी।

अथ भट्टमतखण्डन-दोहा।

एक वस्तुको एकमैं, भेद अभेद विरुद्ध।
युक्तियुक्त यातैं कहत, यह मत सकल अशुद्ध ॥

टीका-अक्षरअर्थ स्पष्ट। अभिप्राय यह हैः-यद्यपि एक घटमें अपना अभेद है; और परका भेद है तथापि जाका अभेद है ताका भेद नहीं; और जाका भेद है ताका अभेद नहीं; इस अभिप्रायते एक वस्तुका भेद अभेद विरुद्ध कह्याहै. तथा एक वस्तुका कहिये, घटकाही अपनेमें अभेद और परमें भेदहै. परंतु जामें अभेद है तामें भेद नहीं, और जामें भेदहै तामें अभेद नहीं. इस अभिप्रायते

एकवस्तुका भेद अभेद एकमें विरुद्ध कह्या है. भेद अभेद आपसमें विरोधीहैं. एकवस्तुमें जाका भेद होवै ताका अभेद, और जाका अभेद होवै ताका भेद विरुद्धहै. याते वाच्यवाचक, गुणगुणी, जातिव्यक्ति, क्रियाक्रियावान्, उपादानकारण कार्यका, जो भेदाभेदरूप तादात्म्य अंगीकार किया, सो अशुद्ध है.

पूर्व वाच्यवाचकके भेदाभेदमें प्रमाण जो कह्याः– " बानीमें वाचक और बाहर वाच्य, याते भेद और श्रुतिमें ॐ अक्षर ब्रह्म कह्या है, याते अभेद" ताका समाधानः–

दोहा।

प्रणव वर्ण अरु ब्रह्मको, कह्यो ज्ु वेद अभेद।
तामैं अन्य रहस्य कछु, लख्यो न भट्ट सु भेद॥ २३॥

टीका–प्रणववर्ण कहिये ॐ अक्षर अरु ब्रह्मका जो वेदमें अभेद कह्या है, ता वेदवचनका वाच्यवाचकके अभेदमें तात्पर्य नहीं. किंतु तामें अन्य ही रहस्य कहिये गोप्य अभिप्राय है सो भेद कहिये अभिप्राय भट्टने लिख्या नहीं. जहां ॐ अक्षर ब्रह्म कह्या है, तिस वाक्यका ॐ अक्षर और ब्रह्मके अभेदमें तात्पर्य नहीं है, किंतु " ॐ " अक्षरकूं ब्रह्मरूप करिकै उपासना करै, इस अर्थमें तात्पर्य है उपासना जाकी विधान करी है; ता उपास्यके स्वरूपका यह नियम नहीं हैः–जैसे उपासना विधान करी है; तैसाही उपास्यका स्वरूप होवै है किंतु जैसा वस्तुका स्वरूप है ताकूं त्यागिके अन्यस्वरूपकी भी ताके विषे

उपासना करिये है. जैसे शालग्राम और नर्मदेश्वरकी, विष्णुरूप और शिवरूप करिके उपासना कही है. तहां शंख चक्र आदिक सहित चतुर्भुजमूर्तिशालग्रामकी नहीं है. और गंगाभूषित जटाजूट डमरु चर्म कपालिकासहित, भद्रामुद्रासे शरणागतनकूं त्रिगुणरहित आत्माका उपदेश देनेवाली मूर्ति नर्मदेश्वरकी नहीं है; किन्तु दोनों शिलारूप हैं और शास्त्रकी आज्ञाते तिन शिलारूपकी दृष्टि त्यागिके दोनोंविषे क्रमते विष्णुरूप, और शिवरूपकी उपासना करिये है. याते उपास्यके स्वरूपके अधीन उपासना नहीं होवै है; किंतु विधिके अधीन है. जैसे शास्त्रका वचन विधान करे, तैसी उपासना करें जैसे छांदोग्य उपनिषद्में, पंचाग्निविद्याप्रकरणमें; स्वर्गलोक, मेघ, भूमि, पुरुष, स्त्री इन पांचपदार्थनकी अग्निरूपकरिके उपासना कही है. और श्रद्धा, सोम, वर्षा, अन्न, वीर्य; इन पांचपदार्थनकी पंच अग्निकी आहुतिरूप उपासना कही है. तहां स्वर्गआदिक अग्नि नहीं हैं; और श्रद्धासोमआदिक आहुति नहीं हैं; तथापि वेदकी आज्ञाते स्वर्गलोकादिकनकी अग्निरूपते और श्रद्धाआदिकनकी आहुतिरूपते उपासना करिये है. इसरीतिसे और अक्षरकी ब्रह्मरूपकरिके उपासना कही है. तहां ॐअक्षर ब्रह्मरूप नहींहै; तौभी ब्रह्मरूपकरिके उपासनाबनैहै.

उपासनावाक्यमें वस्तुके अभेदकी अपेक्षा नहीं, किंतु भिन्नवस्तुकी भी अभिन्नरूपते उपासना होवै है. और विचारते देखिये तो ब्रह्मका वाचक जो ॐ अक्षर है ताका तो अपने वाच्य ब्रह्मते अभेद बनै भी है. घटादिक अन्यपदनका अपने जडरूप अर्थसे

अभेद बनै नहीं. काहेते, सर्वनामरूप ब्रह्ममें कल्पित है, ब्रह्म अधिष्ठान है. ॐअक्षरभी ब्रह्मका नाम है; याते ब्रह्ममें कल्पित है; अधिष्ठानसे कल्पितवस्तु भिन्न होवै नहीं; किंतु अधिष्ठानरूप ही होवै है, याते ॐ अक्षर ब्रह्मरूपहै. और घटआदिकपदनका जो जडरूप अपना अर्थ, सो अधिष्ठान नहीं. किंतु वाच्यसहित घटआदिक पद ब्रह्ममें कल्पित हैं; और ब्रह्म तिनका अधिष्ठान है. याते ब्रह्मसे तो सर्वका अभेद बनै भी है, परंतु घटआदिक पदनका अपने जडरूप वाच्यअर्थसे, अभेद किसी रीतिसे बनै नहीं. याते भट्टमतमें वाच्य वाचकका अभेद असंगत है. और—

केवल भेद जो वाच्यवाचकका अंगीकार करैं हैं; तिन्हके मतमें यह दोष भट्टने कह्या हैः—जो घटपदका वाच्य घटपदसे अत्यंत भिन्न होवै, तौ जैसे घटपदसे अत्यंत भिन्न वस्त्ररूप अर्थकी प्रतीति होवै नहीं; तैसे घटपदसे अत्यंत भिन्न कलशरूप अर्थकी प्रतीति भी नहीं होवेगी. और घटपदसे वाच्यकूं भिन्न मानिके ताकी घटपदसे प्रतीति मानोगे, तो जैसे घटपदते अत्यंत भिन्न कलशरूप अर्थकी प्रतीति होवै है तैसे अत्यंत भिन्न वस्त्रकी भी घटपदसे प्रतीति हुई चाहिये. यह दोष भी जो सामर्थ्य अथवा इच्छारूप शक्ति नहीं मानैं तिन्हके मतमें है. जो शक्ति अंगीकार करैं तिनके मतमें दोष नहीं. काहेते, जो घटपदका वाच्य कलश, और ताका अवाच्य वस्त्रादिक, सो दोनों घटपदसे भिन्न हैं. परंतु घट भेदमें कलशरूप अर्थके ज्ञानकरनेकी शक्ति है और अन्य अर्थके

ज्ञान करनेकी शक्ति नहीं याते घटपदते कलशरूप अर्थते भिन्नअ-र्थकी प्रतीति होवे नहीं. इसरीतिसे जा पदमें जिस अर्थकी शक्ति है; ताही अर्थकी तिसपदसे प्रतीति होवै है; अन्यअर्थकी नहीं. याते वाच्यवाचकके अत्यंत भेदमें दोष नहीं. तिनका भेद सहित अभेदरूप तादात्म्यसंबंध बनै नहीं.

भेद और अभेद आपसमें विरोधी हैं. तैसे उपादानकारणका कार्य ते भेदसहित अभेद नहीं; केवलभेद है. और केवलभेदमें जो दोष कह्या है. सो नैयायिक और शक्तिवादीके मतमें नहीं. काहेते, कारणकार्यके अत्यंतभेदमें यह दोष है:—जो मृत्पिण्डसे अत्यंत भिन्न घटकी उत्पत्ति होवै, तो अत्यंतभिन्न तैलकी भी मृत्पिण्डसे उत्पत्ति हुई चाहिये. और अत्यंतभिन्न तैलकी उत्पत्ति नहीं होवेगी; तो अत्यंतभिन्न. घटकीभी मृत्पिण्डसे उत्पत्ति नहीं हुई चाहिये.

यह दोष नैयायिकमतमें नहीं. काहेते, सर्ववस्तुकी उत्पत्तिमें नैयायिक प्रागभावकूं कारण मानैं हैं. जैसे घटकी उत्पत्तिमें दंड, चक्र, कुलाल, कारण हैं तैसे घटका प्रागभावभी घटका कारण है. तैसे सर्वका प्रागभाव सर्वकी उत्पत्तिमें कारण है; सो घटका प्राग-भाव घटके उपादानकारण मृत्पिंडमें रहै है; अन्यमें नहीं. तैलका प्रागभाव तिलमें रहै है; अन्यमें नहीं. ऐसे सर्वकार्यनका प्रागभाव अपने अपने उपादानकारणमें रहै है. जिस पदार्थमें जाका प्राग-भाव होवै, तिस पदार्थसे ताकी उत्पत्ति होवै है; अन्यकी नहीं जैसे मृत्पिंडमें घटका प्रागभाव है; याते मृत्पिंडसे घटकी ही उत्पत्ति होवै है; तैलकी नहीं. और तैलका प्रागभाव तिलनमें रहै है; याते

तिलनते तैलकी ही उत्पत्ति होवै है, घटकी नहीं; ऐसे सर्वकार्यमें प्रागभाव कारण है. याते कारणकार्यका अत्यंतभेद माननेते नैयायिक मतमें दोष नहीं. और—

सामर्थ्यरूप शक्तिवादीके मतमें दोष नहीं. काहेते, मृत्पिंडमें घटकी सामर्थ्यरूप शक्ति है. तैलकी नहीं और तिलनमें तैलकी सामर्थ्य है; घटकी नहीं. याते मृत्पिंडते घटकी उत्पत्ति होवै है, और तैलकी नहीं तैसे तिलनमें तैलकी ही उत्पत्ति होवै है, घटकी नहीं. इसरीतिसे उपादानकारणका और कार्यका अत्यंतभेद माननेमें दोष नहीं. भेदाभेद असंगत है. और भेदमें तथा अभेदमें जो दोष भट्टने कहे हैं; सो दोनोंपक्षके दोष भट्टके मतमें अवश्य रहैं हैं. काहेते; भट्टने भेदसहित अभेद अंगीकार किया है याते यह अर्थ सिद्ध हुवाः—कारणकार्यका भेद भी है, और अभेद भी है भेद है याते भेदपक्ष उक्तदोष होवेंगे; और अभेद है याते अभेदपक्ष उक्त दोष होवेंगे; जैसे चोरीका दोष और द्यूतका दोष जो एकएक करनेवालेकूं कहैं हैं;सो दोऊ व्यसन जाके होवें, ताके चोरीद्यूत दोनों दोष होवैं हैं तैसे गुणगुणी आदिकनके भेदाभेद माननेते भी, भेदपक्ष और अभेदपक्षके दोनोंदोष होवेंगे. और शक्तिवादीके मतमें केवल भेद अंगीकार कियेते दोष नहीं. काहेते गुणीमें गुणके धारनेकी शक्ति है; अन्यकी नहीं. याते भेदपक्षमें जो दोष कह्याथाः—घटके रूपादिक जैसे घटसे भिन्न हैं, तैसे पटआदिक भी घटसे भिन्न हैं. रूपादिकनकी न्याईं पटआदिक भी घटमें रहे चाहियें. अथवा पटआदिकनकी

न्याई रूपादिक भी नहीं रहे चाहियें सो दोष. शक्ति नहीं अंगीकार करे ताके मतमें है. शक्तिवादीके मतमें केवल भेद मानेते भी दोष नहीं उलटा. भट्टमतमें भेद अभेद दोनों माननेते, दोनोंपक्षके दोष, उक्तदृष्टांतसे हैं. और भेद अभेद विरोधी धर्मका असंभव दोष है. तैसे जातिव्यक्तिका और क्रिया क्रियावानका भी केवल भेद है. तथापि व्यक्तिमें जातिके धारनेकी शक्ति है; और क्रियावान्में क्रियाधारनेकी शक्ति है; अन्यधारनेकी शक्ति नहीं. इसरीतिसे उपादान और कार्यका तथा गुणगुणी आदिकनका भेदाभेदरूप तादात्म्यसंबंध असंगत है. सर्वकाल आपसमें भेद माननेमें भट्टउक्तदोषनकूं शक्तिग्रहसे है. यद्यपि वेदांतसिद्धांतमें भी कार्य गुण जाति क्रियाका उपादान गुणी व्यक्ति क्रियावान्ते अत्यंत भेद नहीं, किंतु तादात्म्यसंबंध ही अंगीकार किया है; तथापि वेदांतमतमें भेदा भेदरूप तादात्म्य नहीं, किंतु भेद और अभेदसे विलक्षण अनिर्वचनीयरूप तादात्म्यसंबंध है. भेदसे विलक्षण है; याते अभेदपक्षके दोष नहीं, और अभेदसे विलक्षण है, याते अभेदपक्षके दोष नहीं, इसरीतिसे भेदाभेदसे विलक्षण अनिर्वचनीय तादात्म्यसंबंध है. परंतु भेदाभेदरूप तादात्म्य असंगत है याते "वाचकवाच्यका भेदाभेदरूप तादात्म्यसंबंधही शक्ति है," यह भट्टअनुसारीका पक्ष समीचीन नहीं. किंतु पदके सुनते ही अर्थके ज्ञान करनेकी जो पदमें सामर्थ्य, सोई पदमें शक्ति है. इति शक्तिनिरूपण.

लक्षणाके ज्ञानमें शक्यका ज्ञान उपयोगी है. काहेते शक्यसंबंध लक्षणाका स्वरूप है. शक्य जाने विना शक्य संबंधरूप लक्षणाका ज्ञान होवै नहीं. याते शक्यका लक्षण कहैं हैं:—

दोहा।

है पदमें जा अर्थकी, शक्ति शक्य सो जानि।
वाच्यअर्थ पुनि कहत तिहिं, वाचक पदहि पिछानि ॥

टीका—जा पदमें जा अर्थकी शक्ति होइ, ता पदका सो अर्थ शक्य जानि. और शक्यअर्थकूं ही वाच्य अर्थ भी कहैं हैं. जैसे अग्निपदमें अंगाररूप अर्थकी शक्ति है, याते अग्निपदका अंगार शक्य अर्थ और वाच्यअर्थ कहिये है. और वाच्यअर्थका बोधक पद वाचक कहिये है.

अथ लक्षणा और जहतिआदिकभेदलक्षण।

कवित्त—शक्यको संबंध जो स्वरूप जानि लक्षणको,
लक्षणा सो भान जाको लक्ष्य सु पिछानिये।
वाच्यअर्थ सारो त्यागि वाच्यको संबंध जहां,
होई परतीति तहां जहती बखानिये ॥
वाच्ययुत वाच्यके संबंधीका जु ज्ञान होय,
ताहि ठौर लक्षणा अजहतिहि मानिये।
एक वाच्य भागत्याग होत तहां भागत्याग,
दूजो नाम जहती अजहती प्रमाणिये ॥ ३९ ॥

टीका—शक्य कहिये वाच्य अर्थका जो संबंध कहिये मिलाप, सो लक्षणका स्वरूप कहिये लक्षण जानि. और जा अर्थका पदकी शक्तिसे ज्ञान न होवै, किंतु लक्षणाते भान कहिये ज्ञान होवै, सो पदका लक्ष्य अर्थकहिये है. एकपादसे लक्षणाका स्वरूप कह्या. अब,

लक्षणाके जहतिआदिक तिन्हीं भेदनके लक्षण एकएक पादमें कहें हैं—"वाच्य" इत्यादिसे. जहां वाच्य अर्थ संपूर्ण त्यागिके वाच्य अर्थके संबंधीकी प्रतीति होवै, तहां जहतिलक्षणा कहिये है. जैसे किसीने कह्या, गंगामें ग्राम है या स्थानमें गंगापदकी तीरमें जहतिलक्षणा है. काहेते, गंगापदका वाच्य अर्थ देवनदीका प्रवाह है, ताके विषे ग्रामकी स्थितिका असंभव है. याते सारे वाच्य अर्थकूं त्यागिके तीरविषे गंगापदकी जहतिलक्षणा है वाच्यके संबंधका नाम लक्षणा है. या स्थानमें गंगापदका वाच्य जो प्रवाह ताका तीरसे संयोगसंबंध है; याते गंगापदके वाच्यका जो तीरसे संबंध सो लक्षणा. और वाच्यका सारेका त्याग याते जहतिलक्षणा.

वाच्ययुत इत्यादि, तृतीयपादसे अजहतिलक्षणा दिखावैं हैं:— वाच्ययुत कहिये वाच्यअर्थसहित, वाच्यके संबंधीका जा पदसे ज्ञान होय, ता पदमें अजहतिलक्षणा मानिये जैसे किसीने कह्या सोन धावन करै है तहां सोनपदकी लालरंगवाले अश्वविषे अजहतिलक्षणा. काहेते सोन नाम लालरंगका है. याते सोनपदका लालरंग वाच्य है. ता केवलमें धावनका असंभव है. इस कारणते सोनपदका वाच्य जो लालरंग ता सहित अश्वमें सोनपदकी अजहतिलक्षणाहै. (भाषामें शोणकूं सोन पढैं हैं.) गुणका और गुणीका तादात्म्य-

संबंध कहैं हैं; और लाल भी रूपका भेद होनेते गुण है. याते सोनपदका वाच्य जो लालगुण, ताका गुणी अश्वके साथ जो तादात्म्यसंबंध, सो लक्षणा. और वाच्यका त्याग नहीं, अधिकका ग्रहण; याते अजहतिलक्षणा.

" एक वाच्य " इत्यादि चतुर्थपादसे भागत्यागलक्षणा बतावैं हैं:—जहां पदनके वाच्यअर्थ मध्य एकभागका त्याग होवै एक भागका ग्रहण होवै, तहां भागत्यागलक्षणा कहिये है. ता भागत्यागकूं ही जहतिअजहतिलक्षणा भी कहैं हैं. जैसे प्रथम देखे पदार्थकूं अन्यदेशमें देखिके किसीने कह्या " सो यह है " तहां भागत्याग लक्षणा है. काहेते अतीतकालमें और अन्यदेशमें स्थित वस्तुकं " सो " कहैं है. याते अतीतकालसहित और अन्यदेशसहित वस्तु, सो पदका वाच्यअर्थ है. और वर्तमानकाल समीपदेशमें स्थित वस्तुकूं " यह " कहै है. याते वर्तमानकालसहित और समीपदेशसहित वस्तु, यह पदका वाच्यअर्थ है. और अतीतकाल सहित अन्यदेशसहित जो वस्तु, सोई वर्तमानकाल और समीपदेश सहित है. यह समुदायका वाच्यअर्थ है. सो संभवै नहीं काहेते अतीतकाल और वर्तमानकालका विरोध है, तथा अन्यदेशका और समीपदेशका विरोध है, याते दोनोंपदमें देशकाल जो वाच्यभाग ताकूं त्यागिके वस्तुमात्रमें दोनोंपदकी भागत्यागलक्षणा.

"तत्त्वमसि" महावाक्यमें लक्षणा दिखावनेकूं तत्पद और त्वंपदका वाच्यअर्थ दिखावैं हैं;

दोहा।

सर्वशक्ति सर्वज्ञ विभु, ईशस्वतंत्र परोक्ष।
मायी तत्पद वाच्य सो, जामैं बंध न मोक्ष ॥ ३६ ॥

टीका—सर्वशक्ति, कहिये जामें सर्वसामर्थ्य, सर्वज्ञ, कहिये सर्व वस्तुके जाननेवाला. विभु कहिये व्यापक. ईश कहिये सर्वका प्रेरक. और स्वतंत्र, कहिये कर्मके अधीन नहीं और परोक्ष, कहिये जीवके प्रत्यक्षका विषय नहीं. मायी, कहिये माया जाके अधीन और बंधमोक्षरहित. जामें बंधहोवे ताका मोक्ष होवै है. ईश्वर बंधरहित है. याते ईश्वरमें मोक्ष भी नहीं. इतने धर्मवाला ईश्वरचेतन तत्पदका वाच्य अर्थ है.

अथ त्वंपदवाच्यनिरूपण—दोहा।

कहे धर्म जो ईशके, सब तिनतैं विपरीत ॥
है जिहिं चेतन जीव तिहिं, त्वंपद वाच्यप्रतीत ॥ ३७ ॥

टीका—जो ईशके धर्म कहे तिनते विपरीतधर्म जामें होवें सो जीवचेतन त्वंपदका वाच्य प्रतीत कहिये जान. याका भाव यह है:— अल्पशक्ति, अल्पज्ञ, परिच्छिन्न, अनीश, धर्मके अधीन, अविद्यामोहित और बंधमोक्षवाला, और प्रत्यक्ष. काहेते, अपना स्वरूप किसीकूं परोक्ष नहीं. प्रत्यक्षही होवै है. यद्यपि ईश्वरकूं भी अपना स्वरूप प्रत्यक्ष है; तथापि ईश्वरका स्वरूप जीवकूं प्रत्यक्ष नहीं, याते परोक्ष कहिये है. और जीवके स्वरूपकूं जीवईश्वर दोनों जानैं

हैं; याते प्रत्यक्ष कहिये है; इतने धर्मवाला जीवचेतन त्वंपदका वाच्य कहिये है.

दोहा ।

महावाक्यमैं एकता, है दोनों की भान ॥
सो न बनै यातैं सुमति, लक्ष्यलक्षणहि जान ॥ ३८ ॥

टीका—सामवेदके छांदोग्यउपनिषद्में उद्दालकमुनिने अपने पुत्र श्वेतकेतुकूं जगत्की उत्पत्ति करनेवाला ईश्वर बतायके कह्याः— "तत्त्वमसि" ताका यह वाच्यअर्थ हैः—तत्, कहिये सो जगतकी उत्पत्ति करनेवाला; सर्वशक्ति सर्वज्ञताआदिकधर्मसहित ईश्वर, त्वं, कहिये तू अल्पशक्ति अल्पज्ञता आदिक धर्मवाला जीव असि कहिये है. इहां "सो तूं है" इस कहनेते, ईश्वर जीवकी एकता वाच्यअर्थसे भान होवै है, सो बनै नहीं काहेते, सर्वशक्ति और अल्पशक्ति, सर्वज्ञ और अल्पज्ञ, विभु और परिच्छिन्न, स्वतंत्र और कर्म अधीन, परोक्ष, और प्रत्यक्ष माया जाके अधीन; और अविद्यामोहित एकहै, यह कहना "अग्नि शीतल है" इस कहनेके समान है. याते हे सुमती ! लक्षणही कहिये लक्षणाते लक्ष्य अर्थ जानाना. वाच्य अर्थमें विरोध है.

दोहा ।

आदि दोय नाहिं संभवैं, महा वाक्यमैं तात ॥
भागत्याग यातैं लखहु, है जातैं कुशलात ॥ ३९ ॥

टीका—हे तात ! महावाक्यमें आदि दोय, कहिये जहति अज-

होति नहीं संभवै. याते भागत्यागलक्षणा महावाक्यमें लखहु, कहिये जानों. जाते कुशलात, कहिये विरोधका परिहार होवै.

अथ जहति असंभवप्रतिपादन-दोहा।

ज्ञेय जु साक्षी ब्रह्म चित, वाच्यमाहिं सो लीन।
मानहु जहतीलक्षणा, ह्वै कछु ज्ञेय नवीन॥ ४०॥

टीका—संपूर्ण वेदांतका ज्ञेय; साक्षीचेतन और ब्रह्मचित कहिये ब्रह्मचेतन है. सो साक्षीचेतन और ब्रह्मचेतन त्वंपद और तत्पदके वाच्यमें लीन, कहिये प्रविष्ट हैं. और जहतिलक्षणा जहां होवै तहां वाच्यसंपूर्णका त्यागकरिके. वाच्यका संबंधी अन्यज्ञेय होवै है. याते महावाक्यमें जहतिलक्षणा मानैं तो, वाच्यमें आया जो चेतन तासे नवीन, कहिये अन्य कछु ज्ञेय होवेगा. चेतनसे भिन्न असत जडदुःखरूप है, ताके जाननेते पुरुपार्थ सिद्ध होवे नहीं; याते महावाक्यमें जहतिलक्षणा नहीं.

अथ अजहतिलक्षणा असंभवप्रतिपादन-दोहा।

वाच्यहु सारो रहत है, जहां अजहती मीत॥
वाच्यअर्थ सविरोध यों, तजहु अजहती रीत॥ ४१॥

टीका—हे मीत प्रिय! जहांअजहातिलक्षणा होवै, तहां वाच्यअर्थ सारे रहै है. और वाच्यसे अधिकका ग्रहण होवै है. महावाक्यनमें अजहतिलक्षणा अंगीकार करैं, तो वाच्य अर्थ सारा रहेगा. और वाच्यअर्थ महावाक्यनमें सविरोध कहिये विरोध सहित है. विरोध दूरि करनेकूं लक्षणा अंगीकार करी है. अज-

हती मानैं तो महावाक्यनमें विरोध दूरि होवै नहीं याते अजहतीकी रीति महावाक्यनमें तजहु.

अथ भागत्यागलक्षणाप्रकार-दोहा।

त्यागि विरोधीधर्म सब, चेतन शुद्ध असंग।
लखहु लक्षणातैं सुमति, भागत्याग यह अंग॥ ४२॥

टीका-हे अंग! हे प्रिय! तत्पदका वाच्य ईश्वर, और त्वंपदका वाच्य जीव, तिन्हके आपसमें विरोधीधर्म त्यागिके शुद्धअसंग चेतन लक्षणाते लखहु यह भागत्याग लक्षणा है. या स्थानमें यह सिद्धांत है:-ईश्वरजीवका स्वरूप अनेकप्रकारका अद्वैतग्रंथनमें कह्या है. विवरणग्रंथमें अज्ञानमें प्रतिबिंब जीव और बिंब ईश्वर कह्याहै और विद्यारण्यके मतमें शुद्धसत्त्वगुणसहित मायामें आभास ईश्वर; और मलिन सत्त्वगुणसहित जो अंतःकरणका उपादानकारण अविद्याका अंश, तामें अभास जीव कह्या है.

यद्यपि पंचदशीग्रंथमें विद्यारण्यस्वामीने, अंतःकरणमें आभास जीव कह्या है; तथापि अंतःकरणके अभासकूं जीव मानें तो सुषुप्तिमें अंतःकरण रहे नहीं; याते जीवका भी अभाव हुवा चाहिये और प्राज्ञरूप जीव सुषुप्तिमें रहै है, याते विद्यारण्यस्वामीका यह अभिप्राय है:-अंतःकरणरूप परिणामकूं प्राप्त जो होवै अविद्याका अंश, तामें आभास जीव है. सो अविद्याका अंश सुषुप्तिमें भी रहै है; याते प्राज्ञका अभाव नहीं और केवलआभासही जीवईश्वर नहीं है; किंतु मायाका अधिष्ठानचेतन, और मायासहित आभास

ईश्वर है. और अविद्याअंशका अधिष्ठानचेतन, और अविद्याके अंशसहित आभास जीव है. ईश्वरकी उपाधिमें शुद्धसत्त्वगुण है, याते ईश्वरमें सर्वशक्ति सर्वज्ञतादिक धर्म हैं. और जीवकी उपाधिमें मलिनसत्त्वगुण है, याते जीवमें अल्पशक्ति अल्पज्ञतादिक धर्म हैं याकूं आभासवाद कहैं हैं. और—

विवरणके मतमें यद्यपि जीव ईश्वर दोनोंकी उपाधि एकही अज्ञान है; याते दोनों अल्पज्ञ हुये चाहियें; तथापि जा उपाधिमें प्रतिबिंब होवै ताका यह स्वभाव होवै हैः—प्रतिबिंबमें अपने दोष करै है, बिंबमें नहीं. जैसे दर्पणरूप उपाधिमें मुखका प्रतिबिंब होवै है. ग्रीवामें स्थित मुख बिंब है; तहां दर्पणरूप उपाधिके श्याम पीत लघुतादिक अनेकदोष प्रतिबिंबमें भान होवैं हैं, और ग्रीवामें स्थित जो बिंब है, तामें भान होवें नहीं. तैसे दर्पणस्थानी जो अज्ञान, तिसविषे प्रतिबिंबरूप जीवमें अज्ञानकृत अल्पज्ञतादिक दोष हैं; और बिंबरूप ईश्वरमें नहीं. याते ईश्वरमें सर्वज्ञतादिकहैं; और जीवमेंअल्पज्ञतादिक हैं.

आभास और प्रतिबिंबका इतना भेद हैः—आभासपक्षमें तो आभास मिथ्या है, और प्रतिबिंबवादमें प्रतिबिंब मिथ्या नहीं, किंतु सत्य है. काहेते, प्रतिबिंबवादीका यह सिद्धांत हैः—दर्पणमें जो मुखका प्रतिबिंब है, सो मुखकी छाया नहीं काहेते, छायाका यह स्वभाव हैः—जिस दिशामें छायावान्के मुख और पृष्ठ होवैं, उस दिशामें छायाके मुख और और पृष्ठ होवैं हैं और दर्पणके प्रतिबिं-

बके मुख, पीठि, बिंबसे विपरीत होवैं हैं. याते दर्पणमें छायारूप प्रतिबिंब नहीं, किंतु दर्पणको विषय करनेवास्ते, नेत्रद्वारा निकसी जो अन्तःकरणकी वृत्ति, सो दर्पणकूं विषय करिके, तत्काल ही दर्पणसे निवृत्त होयके, ग्रीवामें स्थित मुखकूं विषय करै है; जैसे भ्रमणके वेगसे अलातका चक्र भान होवै है, और चक्र नहीं है; तैसे दर्पण और मुखके विषय करनेमें, वृत्तिके वेगते मुख दर्पणमें स्थित भान होवै है और मुख ग्रीवाविषे ही स्थित है, दर्पणमें नहीं; और छाया भी नहीं. वृत्तिके वेगसे जो दर्पणमें मुखकी प्रतीति, सोई प्रतिबिंब है. इसरीतिसे दर्पणरूप उपाधिके संबंधसे, ग्रीवामें स्थित मुख ही बिंबरूप और प्रतिबिंबरूप भान होवै है. और विचारसे बिंबप्रतिबिंबभाव है नहीं. तैसे अज्ञानरूप उपाधिके संबंधसे असंगचेतनमें बिंबस्थानी ईश्वरभाव और प्रतिबिंबस्थानी जीवभाव प्रतीत होवै है, और विचारदृष्टिसे ईश्वरता जीवता है नहीं अज्ञानते जो चेतनमें जीवभावकी प्रतीति, सोई अज्ञानमें प्रतिबिंब कहिये है. याते बिंबपना और प्रतिबिंबपना तो मिथ्या है, और स्वरूपसे बिंबप्रतिबिंब सत्य हैं. काहेते, बिंबप्रतिबिंबका स्वरूप दृष्टांतविषे तो मुख है, और दार्ष्टांतविषे चेतन है. सो मुख और चेतन सत्य हैं. इसरीतिसे प्रतिबिंबकूं स्वरूपते सत्य होनेते सत्य कहैं हैं. और आभासका स्वरूप छाया मानैं हैं, याते मिथ्या है. यह आभासवाद और प्रतिबिंबवादका भेदहै. और—

कितने ग्रंथमें शुद्धसत्त्वगुणसहित मायाविशिष्टचेतन, ईश्वर

कहिये है.और मलिनसत्त्वगुणसहित अन्तःकरणका उपादान अवि-
द्याके अंशविशिष्ठचेतन, जीवकहिये है. याकूं अवच्छेदवाद कहैं हैं.
सर्व ही वेदांतकी प्रक्रिया अद्वैतआत्माके जनावनेकूं है; याते जौनसी
प्रक्रियाते जिज्ञासुकूं बोध होवे सोई ताकूं समीचीन है. तथापि
वाक्यवृत्ति और उपदेशसहस्रीमें, भाष्यकारने आभासवाद ही लिखा
है: याते आभासवाद ही मुख्य है. ताकी रीतिसे माया और मायामें
आभास और मायाका अधिष्ठान जो चेतन सर्वशक्ति सर्वज्ञता आदिक
धर्मसहित ईश्वर है; सोई तत्पदका वाच्य है. और व्यष्टिअविद्या,
तामें आभास, और ताका अधिष्ठानचेतन अल्पशक्ति अल्पज्ञता-
दिक धर्मसहित जीव है; सो त्वंपदका वाच्य है. तिन्ह दोनोंकी
" तत्त्वमसि " वाक्यते एकता बोधन करी; और बनै नहीं. याते
आभाससहित माया और मायाकृत सर्वशक्ति सर्वज्ञतादिक धर्म;
इतने वाच्यभागकूं त्यागिके, चेतनभागविषे तत्पदकी भागत्यागल-
क्षणा. तैसे आभाससहित अविद्याअंश, और अविद्याकृत अल्पश-
क्ति अल्पज्ञतादिक धर्म; जो त्वंपदका वाच्यभाग, ताकूं त्यागिके
चेतनभागमें त्वंपदकी भागत्यागलक्षणा. इसरीतिसे—

भागत्यागलक्षणाते, ईश्वर और जीवके स्वरूपमें लक्ष्य जो
चेतनभाग; तिनकी एकता " तत्त्वमसि " महावाक्य बोधन करै है.
तैसे " अयं आत्मा ब्रह्म "इस महावाक्यमें आत्मापदका जीव वाच्य
है, और ब्रह्मपदका ईश्वर वाच्य है. ब्रह्म है. ब्रह्मपदका शुद्ध वाच्य
नहीं, ईश्वर ही वाच्यहै; यह चतुर्थतरंगमें प्रतिपादन करि आये हैं.

पूर्वकी न्याई दोनोंपदनकी लक्षणा है. लक्ष्य अर्थ परोक्ष नहीं; इस अर्थकूं जनावनेकूं अयंपद है, अयं, कहिये सबके अपरोक्ष आत्मा ब्रह्म है, यह वाक्यका अर्थ है. " अहं ब्रह्मास्मि " इस महावाक्यमें, अहंपदका जीव वाच्य है, और ब्रह्मपदका ईश वाच्य है, दोनोंपदनकी चेतनभागमें लक्षणा. " मैं ब्रह्म हूं, " यह वाक्यका अर्थ है. " प्रज्ञानमानंदं ब्रह्म " इस महावाक्यमें, प्रज्ञानपदका जीव वाच्य है, ब्रह्मपदका ईश है; पूर्वकी न्याई लक्षणा लक्ष्य जो-ब्रह्मात्म, सो आनंदगुणवाला नहीं; किंतु आनंदरूप है; इस अर्थके जनावनेकूं आनंदरूप है. आत्मा अभिन्न ब्रह्म आनंदरूप है; यह वाक्यका अर्थ है. जैसे महावाक्यनमें भागत्यागलक्षणा है; तैसे अन्यवाक्यनमें सत्यज्ञान, आनंदपद भी, शुद्धब्रह्मकूं भागत्यागल-क्षणासे ही बोधन करै है, शक्तिसे नहीं. काहेते, शुद्धब्रह्म किसीपद-का वाच्य नहीं; यह सिद्धांत है. याते सारे पद विशिष्टके वाचक हैं, और शुद्धके लक्षक हैं. मायाकी आपेक्षिकसत्यता, और चेतन-की निरपेक्षिकसत्यता मिली हुई सत्यपदका वाच्य है. निरपेक्षिका सत्य लक्ष है, बुद्धिवृत्तिरूप ज्ञान और स्वयंप्रकाशज्ञान, दोनों मिलैं तो ज्ञानपदका वाच्य, और स्वयंप्रकाशभाग लक्ष. विषयसंबंधजन्य सुखाकार सात्विक अंतःकरणकी वृत्ति, और परमप्रेमका आस्पद स्वरूपसुख; दोनों मिले आनंदपदका वाच्य; और वृत्तिभागकूं त्यागिके स्वरूपभाग लक्ष. इसरीतिसे सर्वपदनकी शुद्धिमें लक्षणा, संक्षेपशारीरकमें प्रतिपादन करीहै.

अथ उक्तअर्थ संग्रह।

कवित्त।

गंगामांहिं ग्राम जहतिलक्षणा ठोर लखि,
सोन धावे लक्षणा अजहति जनाइये।
"सोई यह वस्तु" इहां लक्षणा है भागत्याग,
दूजो नाम जहति औ अजहति सुनाइये॥
"तत्त्वमसि" आदि महावाक्यनमैं भागत्याग,
लक्षणा न जहति अजहति बताइये।
ब्रह्म काहु पदको न वाच्य यों बखानै वेद,
याते सर्वपदनमें रीति यों लखाइये॥ ४३॥
मायामाहिं सत्यता जु और भांति भाषियत,
ब्रह्ममाहिं सत्यता सु और भांति भाषिये।
दोऊ मिलि सत्यपद वाच्य मुनि भाषत हैं,
ब्रह्ममाहिं सत्यता सु लक्ष्यभाग राखिये॥
बुद्धिवृत्ति संवित द्वै मिले ज्ञानपद वाच्य,
संवितस्वरूप लक्ष्य बुद्धिवृत्ति नाखिये।
आत्म औ विषैको सुख वाच्यपद आनंदको,
विषैसुख त्यागि आत्मसुख लक्ष आखिये॥ ४४॥

महावाक्यनमें विरोध दूरि करनेको दोनों पदनमें लक्षणा अंगीकार करी. तहां कोई कहै है:—एकपदमें लक्षणा अंगीकार कियेसे ही विरोध दूरि होवै है; दोयपदमें लक्षणा माननेका प्रयोजन नहीं—

दोहा।

एकहि पदमैं लक्षणा, मानै नहीं विरोध।
दोयपदनमें लक्षणा, निष्फल कहत सुबोध॥ ४५॥

टीका–सुबोध,कहिये सुज्ञ दोयपदनमें लक्षणा निष्फल कहतेहैं काहेते एकही पदमें लक्षणा मानेते विरोध दूरि होय जावै है. याका भाव यह है:–यद्यपि सर्वज्ञतादि विशिष्टकी अल्पज्ञतादि विशिष्टके साथ एकता नहीं बनै है, तथापि एकपदका लक्ष्य जो शुद्ध, ताकी विशिष्टके साथ एकता बनै है. दृष्टांत–जैसे "शूद्रमनुष्य, ब्राह्मणहै" इस रीतिसे शूद्रत्व धर्मविशिष्ट मनुष्यकी, ब्राह्मणत्वधर्मविशिष्टकेसाथ, एकता कहना विरुद्ध है. और "मनुष्य ब्राह्मण है" इसरीतिसे शूद्रत्वधर्मरहित शुद्धमनुष्यकूं ब्राह्मणत्वविशिष्टता कहनेमें विरोध नहीं. तैसे अल्पज्ञतादिधर्मविशिष्टचेतनकी, और सर्वज्ञतादिधर्मविशिष्टकी एकता विरुद्ध भी है; परंतु जीववाचकपद और ईश्वरवाचक पदकी, चेतनमें लक्षणाकरिके चेतनमात्रकी सर्वज्ञतादिधर्मविशिष्टके साथ, वा अल्पज्ञतादिविशिष्टके साथ, एकता कहनेमें विरोध नहीं, याते दोपदमें लक्षणा माननेमें कोई युक्ति नहीं. समाधान–

कवित्त।

लक्षणा जो कहै एकपदमाहिं ताकूं यह,
पूछि दोयपदनमें कौनसेमैं लक्षणा।
प्रथम वा द्वितीयमैं कहै ताहि भाषि यह,
वाक्यनको होयगो विरोध मूढलक्षणा॥

तीनिवाक्यमध्य जीववाचक प्रथमपद,
" तत्त्वमासि " यामैं आदिपद ईशलक्षणा ।
प्रथम वा द्वितीयको नेम नहिं बनै यातें,
भाषत द्वैपदनमैं लक्षणा सुलक्षणा ॥ ४६ ॥

टीका—जो एकपदमें लक्षणा अंगीकार करे, ताकूं यह पूछि—दोनोंपदनमैंसे कौनसे पदमें लक्षणा है ? जो ऐसे कहै, सर्वमहावाक्यनके प्रथमपदमें लक्षणा है, द्वितीयमें नहीं. यद्वा, द्वितीयपदमें लक्षणा सर्ववाक्यनमें है. प्रथममें नहीं. ताकूं हे शिष्य! यह भाषिः—हे मूढलक्षण ! प्रथम वा द्वितीयपदमें जो नेमते लक्षणा सर्ववाक्यनमें माने; तो वाक्यनका परस्पर विरोध होवेगा. काहेते तीनवाक्य मध्य कहियें,"अहं ब्रह्मास्मि""प्रज्ञानमानंदं ब्रह्म""अयमात्मा ब्रह्म,"इन तीन वाक्यनमें जीववाचकपद प्रथम कहिये पूर्व है और "तत्त्वमसि," या वाक्यमें आदिपद कहिये, प्रथमपद ईश लक्षण कहिये, ईश्वरका बोधक है. जो पूर्वपदमें लक्षणा सारे मानैंतो तीनिवाक्यनका तो यह अचेत होवेगाः—चेतन सर्वज्ञतादिविशिष्ट अंश सारे ईश्वररूप है. और "तत्त्वमसि"वाक्यका यह अर्थ होवेगा चेतनअल्पज्ञतादिविशिष्टसंसारी जीवरूप है. काहेते, तीनिवाक्यनमें पूर्व जीववाचकपद है; ताका चेतनभागमें लक्षणा और द्वितीय जो ईश्वरवाचकपद; ताके वाच्यका ग्रहण और"तत्त्वमसि" आदि ईशवाचकपद, ताकी चेतनभागमें लक्षणा, और द्वितीय जीववाचकपद ताके वाच्यका ग्रहण. इसरीतिसे लक्षणाका नेम करै

तो वाक्यनका परस्पर विरोध होवेगा. तैसे सर्ववाक्यनके द्वितीयपद कहिये, आगिले पदमें लक्षणा मानैं; तो तीनिवाच्यनमें पूर्व जो जीव-पद, ताके वाच्यका ग्रहण; और उत्तर ईशपदकी चेतनभागमें लक्षणा. याते अल्पज्ञानतादिधर्मविशिष्ट चेतन है, यह तीनिवाक्य-नका अर्थ होवेगा. और "तत्त्वमसि" मैं आदि ईशपद ताके वाच्यका ग्रहण, और द्वितीयजीवपदकी चेतनभागमें लक्षणा. याते सर्वज्ञता-दिधर्मविशिष्ट चेतन है; यह "तत्त्वमसि" का अर्थ होनेते, परस्पर विरोधही होवेगा. इसरीतिसे प्रथम वा द्वितीयपदमें, लक्षणाका नेम बनै नहीं. याते सुलक्षणा कहिये, सुंदर हैं. लक्षण जिनके ते आचार्य द्वै पदनमें लक्षणा भाषत हैं. और—

जो ऐसे कहैं, प्रथमपद वा द्वितीयपदमें लक्षणा है, यह नियम नहीं करै है, किंतु सर्ववाक्यनमें जो ईश्वरवाचकपद, तामें लक्षणा है, यह नियम करै है, सो ईश्वर वाचक पूर्व होवै वा उत्तर होवै याते वाक्यनका परस्पर विरोध नहीं. ताका समाधान—

दोहा ।

ईशपदहि लक्षक कहै, सब अनर्थ की खानि ।
ज्ञेय होय श्रुतिवाक्यमैं, ह्वै पुरुषारथहानि ॥ ४७ ॥

टीका—जो ईश्वरवाचक पदकूं ही लक्षक कहै तो सर्व अनर्थ अल्पज्ञता पराधीनता जन्म मरणसे आदिलेके, जो दुःखके साधन तिनकी खानि जो संसारी जीव; सो श्रुतिवाक्यनमें ज्ञेय होवैं. याते पुरुषार्थ कहिये. मोक्षकी हानि होवैगी. याका भाव यह है:—जो

ईश्वरवाचकपदमें ही लक्षणा माने, तो महावाक्यनका यह अर्थ होवेगाः—तत्पदका लक्ष्य जो अद्वय असंग मायामलरहित चेतन;सो काम कर्म अविद्याके अधीन, अल्पज्ञ, अल्पशक्ति, परिच्छिन्न, पुण्य, पाप, सुख, दुःख, जन्म, मरण, गमन आगमनआदिक अनंत अनर्थका पात्र है. जो महावाक्यका ऐसा अर्थ होवे, तौ जिज्ञासुकूं इसी अर्थ विषे बुद्धिकी स्थिति करनी होवेगी और जामें बुद्धिकी स्थिति होवै है, प्राण वियोगसे अनंतर ताहीकूं प्राप्त होवै है. याते वेदवाक्यनके विचारसे, मुमुक्षुकूं अनर्थकीही प्राप्ति होवैगी; आनंदकी प्राप्ति नहीं होवेगी याते, ईश्वरवाचकपदमें लक्षणा है, जीववाचकमें नहीं यह नियम असंगत है. और—

जो ऐसे कहैंः—सर्वमहावाक्यनमें जो जीववाचकपद है तिन्हमें लक्षणा है; ईशवाचकमें नहीं. याते पुरुषार्थकी हानि नहीं. काहेते जीववाचकपदमें लक्षणा मानैं, तो महावाक्यनका यह अर्थ होवेगाः—जो त्वंपदका लक्ष्य चेतनभाग सो सर्वशक्ति, सर्वज्ञ, स्वतंत्र जन्मादिक बंधरहित ईश्वररूप है. इस अर्थमें बुद्धिकी स्थितिसे जिज्ञासुकूं अतिउत्तम ईश्वरभावकीही प्राप्ति होवेगी. याते जीववाचकपदमें लक्षणाका नियम करैं हैं. ताका समाधान—

दोहा।

साक्षी त्वंपद लक्ष्य कहुँ, कैसे ईशस्वरूप।
याते दोपद लक्षणा, भाषत यतिवर भूप॥ ४८॥

टीका—त्वंपदका लक्ष्य जो साक्षी, सो ईशस्वरूप कैसे? यह

कहूँ. अर्थ—यह, त्वंपदके लक्ष्यकूं ईश्वररूप कहना बनै नहीं. याते यति जो संन्यासी तिनमें वर जो श्रेष्ठ, तिनके भप स्वामी, दोनों पद में लक्षणा भाषत हैं.याका भाव यह है—जो जीव वाचकपदमें लक्षणा माने, और ईश वाचकमें नहीं ताकूं यह पूछैं हैं:—त्वंपदकी लक्षणा उतने व्यापकचेतनमें है, अथवा जितने देशमें जीवकी उपाधि है. देशमें स्थित जो साक्षीचेतन, तामें त्वंपदकी लक्षणा है ? जो व्यापकचेतनमें त्वंपदकी लक्षणा कहैं, तो बनै नहीं. काहेते, वाच्य अर्थमें जाका प्रवेश होवे; तामें भागत्यागलक्षणा होवै है. और वाच्यमें प्रवेश व्यापकचेतनका नहीं, किंतु जीवपनेकी उपाधिदेशमें स्थित जो साक्षीचेतन ताका वाच्यमें प्रवेश है. याते साक्षीचेतनमें ही त्वंपदकी लक्षणा है, व्यापकचेतनमें नहीं. ता साक्षीचेतनमें सर्व के हृदयका प्रेरण और सर्वप्रपंचमें व्यापकतादिक ईश्वरके धर्मनका असंभव है. और साक्षी सदा अपरोक्ष है ताकेविषे परोक्षता ईश्वर धर्मका अत्यंत असंभव है. और मायारहितकूं मायाविशिष्ट कहना असंभव है. जैसे दंडरहितकूं दंडी कहना; और संस्काररहित द्विजबालककूं संस्कारविशिष्ट कहना; असंभव है, याते साक्षीचेतनका ईश्वरसे अभेद कहैं; तो महावाक्य असंभव अर्थके प्रतिपादक होवेंगे. और—

दोनोंपदोंमें लक्षणा मानैं,तो दोष नहीं;काहेते जो एकताके विरोधी धर्म हैं; तिन सबकूं त्यागिके दोनोंपदोंमें प्रकाशरूप चेतन जो वाच्यभाग,ता सर्वधर्मरहित चेतनमें दोनोंपदनकी लक्षणा उपाधि और उपाधिकृत धर्मनते चेतनका भेद है; स्वरूपसे नहीं. उपाधि और उपा-

धिकृत धर्मनका त्याग कियेते, दोनोंपदनके लक्ष्य. चेतनकी एकता संभवै है. जैसे घटाकाशमें घटदृष्टि त्यागिके मठविशिष्टआकाशते एकता बनै नहीं, और मठदृष्टि त्यागकियेते एकता बनै है.

दोहा ।

तत्त्वं त्वं तत् रीति यह, सबवाक्यनमैं जानि ।
जाते होय परोक्षता, परिच्छिन्नता हानि ॥ ४९ ॥

टीका–सर्ववाक्यनमें " तत् त्वं " " त्वं तत, " इसरीतिसे ओत प्रोतभावकी रीति जानि. जा ओतप्रोतभाव कियेते वाक्यके अर्थमें परोक्ष और परिच्छिन्नता भ्रांतिकी हानि होवै है.

" तत् त्वं, " या कहनेते तत्पदके अर्थका त्वंपदअर्थसे अभेद कह्या. सो त्वंपदका अर्थ साक्षी नित्यअपरोक्ष है, याते परोक्षता भ्रांतिकी हानि. और " त्वं तत, " या कहनेते त्वंपदके अर्थका तत्पदके अर्थसे अभेद कह्या, सो तत्पदका अर्थ व्यापक है; याते परिच्छिन्नताभ्रांतिकी हानि. तैसे " अहं ब्रह्म" " प्रज्ञानं ब्रह्म, " " आत्मा ब्रह्म, " याते परिच्छिन्नता हानि. और " ब्रह्म अहं, " " ब्रह्म प्रज्ञानं, " " ब्रह्म आत्मा, " याते परोक्षता हानि;

दोहा ।

जीवब्रह्मकी एकता, कहत वेद स्मृति बैन ॥
शिष्य तहाँ पहचानिये, भागत्याग की सैन ॥ ५० ॥

टीका–हे शिष्य ! जो वेदबैन और स्मृतिबैन, जीवब्रह्मकी एकता कहैं, तहांसारे भागत्यागकी सैन पहचानियें ॥ ५० ॥

दोहा ।

अस शिषगुरु उपदेश सुनि, भो ततकाल निहाल ।
भले विचारै याहि जो, ताके नशत जँजाल ॥ ५१ ॥

सोरठा ।

मिथ्यागुरु सुखानि, कियो ग्रंथ उपदेश यह ॥
सुनत करत तमहानि, यह ताकी भाषा करी ॥ ५२ ॥

दोहा ।

अग्रधदेवकूं स्वप्नमें, यह किय गुरु उपदेश ॥
नश्यो न तहुँ दुखमूल वह, मिथ्या बनको वेश ॥ ५३ ॥

वेश कहिये स्वरूप. अन्य अर्थ स्पष्ट ॥ ५३ ॥

अग्रध उवाच—चौपाई ।

भगवन यह तुम ग्रंथ पढायो। अर्थसहित सो मो हिय आयो ॥
वनदुखमूल तऊ मुहि भासै। कहु उपाय जाते यह नाशै ५४॥
बोले गुरु सुनि शिषकी बानी। सुनि शिष है जाते बनहानी ॥
अस उपाय को और नहीं है। बनका नाशक हेतु यहीहै॥५५॥
महावाक्यको अर्थ विचारहु। "मैं अग्रध" यों टेरि पुकारहु॥
सुनि पुनि वाक्य विचारे चेला।'अहं अग्रध' यह दीनों हेला५६
निद्रा गई नैन परकाशे। बन गुरु ग्रंथ सबै वह नाशे
भयो सुखी बनदुख बिसरायो। हतो अग्रध निजरूप सु पायो

दोहा।

अग्रधदेवमें नींदते, भो बनदुख जिहिं रीति ॥
आतममें अज्ञानते, त्यों जगदुख परतीति ॥ ५८ ॥
ज्यों मिथ्या गुरु ग्रंथतैं, मिथ्या बन संहार ॥
त्यों मिथ्या गुरु वेदतैं, मिथ्या जग परिहार ॥ ५९ ॥
लक्ष्यअर्थ लखि वाक्यको, ह्वै जिज्ञासु निहाल ॥
निरावरण सो आप है, दादू दीनदयाल ॥ ६० ॥

इति श्रीगुरुवेदादिसाधनमिथ्यावर्णनं नाम
षष्ठस्तरंगः समाप्तः ॥ ६ ॥

सप्तमस्तरंगः ७.

अथ जीवन्मुक्ति विदेहमुक्तिवर्णनम्–दोहा।

उत्तम मध्य कनिष्ठ तिहुँ, सुनि अस गुरुउपदेश ॥
ब्रह्म आत्म उत्तम लख्यो, रह्यो न संशय लेश ॥ १ ॥

टीका–यद्यपि गुरुने उपदेश तीनोंकूं साथ ही किया, तथापि गुरु उपदेशते साक्षात्कार उत्तम तत्त्वदृष्टिकूं हुवा ॥ १ ॥

दोहा।

भ्रमण करत ज्यों पवनते, सूखो पीपरपात ॥
शेषकर्म प्रारब्धते, क्रिया करत दरशात ॥ २ ॥
कबहुँक चढि रथ वाजि गज, बाग बगीचे देखि ॥
नग्नपाद पुनि एकले, फिर आवत तिहिं लेखि ॥ ३ ॥

विविधवेष शय्या शयन, उत्तमभोजन भोग ॥
कबहुँक अनशनगिरिगुहा, रजनिशिला संयोग ॥ ४ ॥
करि प्रणाम पूजन करत, कहुँ जन लाख हजार ॥
उभयलोकते भ्रष्ट लखि, कहत कर्मि धिक्कार ॥ ५ ॥
जो ताकी पूजा करत, संचित सुकृत सु लेत ॥
दोषदृष्टि तिहिं जो लखै, ताहि पापफल देत ॥ ६ ॥
ऐसे ताके देहको, बिना नियम व्यवहार ॥
कबहु न भ्रम संदेह ह्वै, लह्यो तत्त्व निर्धार ॥ ७ ॥
नहिं ताकूं कर्तव्य कछु, भयो भेदभ्रम नाश ॥
उपज्यो वेदप्रमाणते, अद्वय ब्रह्म प्रकाश ॥ ८ ॥
ज्ञानीके व्यहारमैं, कोउ कहत है नेम ॥
त्रिपुटि तजै दुखहेतु लखि, लहै समाधि सप्रेम ॥ ९ ॥
ह्वै किंचित् व्यवहार जो, भिक्षाशन जलपान ॥
भूलै नाहिं समाधिसुख, ह्वै त्रिपुटीतैं ग्लान ॥ १० ॥
लहै प्रयत्न समाधिको, मुनि ज्ञानी इह हेत ॥
जो समाधिसुख ताजि भ्रमत, नर कूकर खर प्रेत ॥ ११ ॥
गौड़पादमुनिकारिका, लिख्यो समाधि प्रकार ॥
ज्ञानी तजि विक्षेप यों, लहै सकलसुखसार ॥ १२ ॥
अष्ट अंगबिन होत नहिं, सो समाधिसुखमूल ॥
अष्टअंग ते अब सुनों, जे समाधि अनुकूल ॥ १३ ॥
पांचपांच यम नियमलखि, आसन बहुत प्रकार ॥
प्राणायाम अनेकविध, प्रत्याहार विचार ॥ १४ ॥

छठी धारणा ध्यान पुनि, अरु सविकल्पसमाधि ॥
अष्ट अंग ये साधिके, निर्विकल्प आराधि ॥ १५ ॥
सुनि समाधि कर्तव्यता, तत्त्वदृष्टि हँसि देत ॥
उत्तर कछु भाषत नहीं, लखि तिहिं बकत सप्रेत ॥ १६ ॥

टीका—जैसे सप्रेत कहिये प्रेतसहित भूतके आवेशवाला बकै तैसे अन्यथा कहता सुनिके तत्त्वदृष्टि हँसै है, अन्यदोहाका अक्षर-अर्थ स्पष्ट है. भाव यह हैः—ज्ञानवान्‌के शरीरव्यवहारका नियम नहीं. काहेते, ज्ञानीके व्यवहारमें, अज्ञान और ताका कार्य भेद-भ्रांति; तथा भेदभ्रमके कार्य, रागद्वेष तो हैं नहीं; किंतु ज्ञानवान्‌के भी प्रारब्धकर्म शेष रहैं हैं सोई ताके व्यवहारमें निमित्त हैं. सो प्रारब्धकर्म पुरुषभेदसे नानाप्रकारका होवै है. याते ज्ञानीके प्रारब्ध-कर्मजन्य व्यवहारका नियम नहीं, यह सिद्धांतपक्ष है.

कोई ऐसे कहैं हैंः—ज्ञानीके व्यवहारमें और किसी कर्मका तो नियम नहीं, परंतु ज्ञानवान्‌के निवृत्तिका नियम है. प्रवृत्ति होवै तो देहस्थितिके हेतु, भिक्षा, अशन, कौपीन आच्छादनमात्र ग्रहणमें-प्रवृत्ति होवै है; अन्यप्रवृत्ति होवै नहीं. काहेते, ज्ञानकी उत्पत्तिसे प्रथम जिज्ञासाकालमें, विषयनमें दोषदृष्टिसे वैराग्य होवै है, सो वैराग्य ज्ञानकी उत्पत्तिसे अनंतर भी, दोषदृष्टिते तथा विषयनमें मिथ्या बुद्धिसे होवै है अपरोक्षरूपते मिथ्या जाने पदार्थनमें सत्य बुद्धि होवै नहीं. दोषदृष्टिते राग होवै नहीं, और प्रवृत्ति रागते होवै है. ज्ञानीके राग संभवै नहीं; याते प्रवृत्ति होवै नहीं.

शरीरनिर्वाहक भोजनादिकनमें प्रवृत्ति तौ रागते विना प्रारब्ध-कर्मते संभवै है. कर्म तीनि प्रकारके हैं, संचित, आगामी और प्रारब्ध तिनमें भूतशरीरनमें किये कर्म फलारंभरहित संचित कहियें हैं. भविष्यत्कर्म आगामी कहियें हैं. भूतशरीरनमें किया वर्तमानश-रीरका हेतु कर्म प्रारब्ध कहिये है. तिनमें संचितकर्मका ज्ञानते नाश होवै है. ज्ञानवान्कूं आत्मामें कर्तृत्वभ्रांति नहीं याते ताकूं आगा-मीकर्मका संभव नहीं. और जिस प्रारब्धकर्मने ज्ञानीके शरीरका आरंभ किया है; सोई प्रारब्धकर्म शरीरस्थितिके हेतु भिक्षादिकनमें प्रवृत्ति करवावै है. प्रारब्धकर्मका भोगविना नाश होवै नहीं.

और कहूं ऐसा लिखाहैः—संचित अगामीकर्मकीन्याईं, ज्ञानीके प्रारब्धकर्म भी रहैं नहीं, याते भोजनादिक प्रवृत्ति भी ज्ञानीकूं संभवै नहीं. ताका यह अभिप्राय हैः—ज्ञानकिं दृष्टिते आत्मामें कर्म और ताके फलका संबंध नहीं. याते आत्मामें सर्वकर्मका निषेध अभिप्रायते, प्रारब्धका निषेध किया है. और ज्ञानते पूर्वकिये प्रारब्धका ज्ञानीके शरीरकूं भोग होवै नहीं; इस अभिप्रायते प्रारब्धका निषेध नहीं; काहेते सूत्रकारने यह लिखा हैः—ज्ञानीके संचितकर्मका ज्ञानते नाश होवै है, आगामीका संबंध होवै नहीं; प्रारब्धका भोगते नाश होवै है. याते प्रारब्धके बलते शरीरनिर्वाहक क्रिया ज्ञानीकी होवै है; अधिक नहीं. परंतु—

कर्म नानाप्रकारके हैं. जहां एककर्म नानाशरीरका आरंभक होवै; ऐसे कर्मते रचित प्रथमशरीरमें जाकूं ज्ञान होवै; तहां ज्ञान-

वानूकूं अन्यशरीरकी प्राप्ति हुई चाहिये; काहेते फलका जाने आरंभ किया है, सो प्रारब्ध कहिये है; ताका भोगविना नाश होवे नहीं. अनेकशरीरका हेतु कर्म एक है, तामें प्रथम शरीर जो उपजाया तामें ज्ञान हुवा; ता कर्मके फलज्ञानते अनंतर और शरीर शेष रहैहै, याते ज्ञानवानूकूं भी अन्यशरीरकी प्राप्ति हुई चाहिये. और

जो ऐसे कहैः—प्रारब्धकर्मका फल जितनें शरीर होवें, उतने शरीर ज्ञानीकूं भी होवे हैं. प्रारब्धके भोगते अधिक होवे नहीं. याते ज्ञान भी सफल होवे है. सो बने नहीं. काहेते यह वेदका ढँढोरा हैः—"ज्ञानवानूके प्राण अन्यलोकमें, वा इसलोकके अन्यशरीरमें गमन नहीं करते." किंतु, तिसी स्थानमें अंतःकरण इंद्रियसहित लीन होवैं हैं. और प्राणगमनाविना अन्यशरीरकी प्राप्ति संभवे नहीं याते ज्ञानवानूकूं प्रारब्ध शेषते, और शरीर होवै है, यह कहना तो संभवे नहीं. किंतु—

यह समाधानहैः—जहां अनेकशरीरका आरंभक एक कर्म होवे, तहां अंतशरीरमें ही ज्ञान होवै है; पूर्वशरीरमें ज्ञान होवे नहीं. काहेते, अनेकशरीरका आरंभक, प्रारब्ध ही ज्ञानका प्रतिबंधक है. जैसे विषयनमें आसक्ति, बुद्धिमंदता, भेदवादीवचनमें विश्वास, ज्ञानके प्रतिबंधक हैं; तैसे विलक्षणप्रारब्ध भी ज्ञानका प्रतिबंधक है, और ज्ञानके प्रतिबंधक होते, जहां ज्ञानसाधन श्रवणादिक होवे, तहां प्रतिबंधक दूरि हुयेते, प्रथमजन्मविषे किये जो श्रवणादिक हैं; तिनते ही अन्यशरीरमें ज्ञान होवै है. जैसे वामदेवने पूर्वजन्मविषे

श्रवणादिक किये, तब प्रारब्धका फल एकशरीर शेष होते ज्ञान नहीं हुवा. किंतु श्रवणादिक करते वर्तमानशरीरका पात होयके अन्यशरीरकी प्राप्ति हुयेते, पूर्वजन्ममें किये श्रवणादिकनते गर्भविषे ज्ञान हुवा है. याते ज्ञानसे अनंतर अन्यशरीरका संबंध होवे नहीं. और वर्तमानशरीरकी चेष्टा प्रारब्धसे होवै है. तहां जितनी चेष्टा शरीरकी निर्वाहक हैं सोई होवें; रागजन्य अधिक चेष्टा होवें नहीं. याते सर्वप्रवृत्तिरहित ज्ञानी होवैहै.

इसरीतिसे निवृत्तिप्रधान ज्ञानीका व्यवहार होवै है. याकेविषे ऐसी शंका है:-मनका स्वभाव अतिचंचल है, निरालंब मनकी स्थिति होवे नहीं; किसी आलंबते मनकी स्थिति होवै है. याते मनके किसी आलंबकी प्राप्तिनिमित्त भी, ज्ञानवान्‌की प्रवृत्ति होवै है. ताका यह समाधान है:-

यद्यपि समाधिहीनपुरुषका मन चंचल होवै है, तथापि समाधिते मनका विजय होवै है. और ज्ञानवान् समाधिविषे स्थित होवै है. याते ज्ञानवान्‌की प्रवृत्ति होवै नहीं. सो, समाधि इन अष्ट अंगनते होवै है:-यम १, नियम २, आसन ३, प्राणायाम ४, प्रत्याहार ५, धारणा ६, ध्यान ७, सविकल्प-समाधि ८, इन अष्टअंगनते समाधि होवै है.

अहिंसा १, सत्य २, अस्तेय ३, ब्रह्मचर्य ४, अपरिग्रह ५ ये पांच यम कहे हैं.

शौच १, संतोष २, तप ३, स्वाध्याय ४, ईश्वरप्रणिधान ५ ये पांच नियम कहियें हैं. और ज्ञानसमुद्रग्रंथमें दशप्रकारके यम, और दशप्रकारके नियम कहे हैं; सो पुराणकी रीतिसे कहे हैं; वेदांतसंप्रदायमें यम नियमके पांच पांच ही भेद हैं. और—

आसनके भेद अनंत हैं. तिनमें स्वस्तिक १, गोमुख २, वीर; ३, कूर्म ४, पद्म ५, कुक्कुट ६, उत्तान ७, कूर्मक ८, धनुष ९, मत्स्य १०, पश्चिमतान ११, मयूर १२, शव १३, सिंह १४, भद्र १५, सिद्ध १६, इत्यादिक चौरासी आसन योगग्रंथनमें लिखे हैं; तिनके लक्षण भी तहां लिखे हैं ग्रंथके विस्तारभयतें, तथा वेदांतमें अत्यन्तउपयोगी नहीं, यातें लक्षण लिखे नहीं. तिनमें सिंह, भद्र, पद्म, सिद्ध, ये चारिआसन प्रधान हैं. तिन चारिमें भी,

सिद्धआसन अत्यंतप्रधान है. ताका यह लक्षणहैः—वामपादकी एडी गुदा मेढ्रके मध्य सीवनमें दाबिके धरै दक्षिणपादकी एडी मेढ्रके उपरि दाबिके धरै, भ्रुकुटीके अंतर दृष्टि राखे; स्थाणुकी न्याईं सरल निश्चलशरीरते स्थितिकूं सिद्धासन कहैं हैं. और—
कोई ऐसे कहैं हैंः— वामपादकी एडी सीवनमें नहीं लगावे; किंतु मेढ्रके ऊपरि लगावे, ताके ऊपरि दक्षिणएडी धरै. और पूर्वकी न्याईं यह सिद्धासन ही अतिप्रधान है. काहेते, कितने आसन तो रोगनाशके हेतु हैं. और कोई आसन ऐसे हैं, प्राणायामादिक समाधिके अंग जितने होवैं हैं, और सिद्धासन समाधिकालमें होवै है; याते अतिप्रधान है. याहीकूं वज्रासन,मुक्तासन गुप्तासन, कहैंहैं।

आसनसिद्धिसे अनंतर. प्राणायाम भी करै सो प्राणायाम बहुतप्रकारका है, तथापि संक्षेपते यह लक्षण हैः—नासाके :वाम छिद्रद्वारा ईडा नाम नाडीते वायुकूं पूर्ण करै; ताकूं पूरक कहैं हैं. दक्षिणते त्यागे. ताकूं रेचक कहैं हैं. सुषुम्णाते रोके ताकूं कुंभक कहैं हैं इसरीतिसे पूरक रेचक कुंभककूं प्राणायाम कहैं हैं. सो दोप्रकारका हैः— एक अगर्भ है. तैसे दूसरा सगर्भ है. प्रणवके उच्चारणरहित प्राणायाम अगर्भ कहिये है. प्रणवके उच्चारणसहित प्राणायाम, सगर्भ कहिये है.

विषयनते सकलइंद्रियके निरोधकूं प्रत्याहार कहैं हैं. अंतरायरहित अंतःकरणकी स्थिति, धारणा कहिये है. अंतरायसहित अद्वितीयवस्तुविषे अंतःकरणका प्रवाह ध्यान कहिये है.

व्युत्थानसंस्कारनका तिरस्कार, और निरोधसंस्कारनकी प्रकटता हुआ, अंतःकरणका एकाग्रतारूप परिणाम समाधि कहिये है. सो समाधि दोप्रकारकी हैः—एक सविकल्पसमाधि है, दूसरी निर्विकल्प समाधि है. ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेयरूप त्रिपुटीभानसहित अद्वितीयब्रह्मविषे अंतःकरणकी वृत्तिकी स्थिति,सविकल्पसमाधि कहिये है. सो सविकल्पसमाधि दो प्रकारकी हैः—एक तो शब्दानुविद्ध है, दूसरी शब्दाननुविद्ध है. " अहं ब्रह्मास्मि" इस शब्दकरिके अनुविद्ध कहिये सहित होवै, सो शब्दानुविद्ध कहिये है. शब्दरहितकूं शब्दाननुविद्ध कहैं हैं. त्रिपुटीभानरहित अखंडब्रह्माकार अंतःकरणवृत्तिकी स्थिति, निर्विकल्पसमाधि कहिये है. इसरीतिसे सविकल्प और

निर्विकल्पसमाधिके दो भेद हैं. तिनमें सविकल्पसमाधि साधन है; और निर्विकल्पसमाधि फलहै. साधनरूप जो सविकल्पसमाधि है, ताकेविषे यद्यपि त्रिपुटीरूप द्वैत प्रतीत होवै है, तथापि सो द्वैत इसरीतिसे ब्रह्मरूप करिके प्रतीत होवै हैः—जैसे मृत्तिका विकारनकूं मृत्तिकारूप जानेते विवेकीकूं मृत्तिकाके विकार घटादिक प्रतीत भी होवैं हैं, परंतु मृत्तिकारूप ही प्रतीत होवैं हैं. तैसे सविकल्पसमाधिमें त्रिपुटीद्वैत ब्रह्मरूप ही प्रतीत होवै है. निर्विकल्पसमाधिविषे भी सविकल्पसमाधिकी न्याईं त्रिपुटीरूप द्वैत विद्यमान भी होवै है. तौभी त्रिपुटीद्वैतकी प्रतीति होवै नहीं. जैसे जलमें लवणकूं गेरे तहां लवण विद्यमान होवै है, परंतु नेत्रसे लवणकी सर्वथा प्रतीति होवै नहीं इसरीतिसे सविकल्पनिर्विकल्पका यह भेद सिद्धहुवाः—सविकल्पसमाधिमें ब्रह्मरूप करिके द्वैतकी प्रतीति; और निर्विकल्पसमाधिमें त्रिपुटीरूप द्वैतकी अप्रतीति. तैसे—

सुषुप्तिसे निर्विकल्पका यह भेद है;सुषुप्तिमें अंतःकरणकी ब्रह्माकारवृत्तिका अभाव होवै है. और निर्विकल्पसमाधिमें ब्रह्माकारवृत्ति तो अंतःकरणकी होवै है, ताका अभाव होवै नहीं. इसरीतिते सुषुप्तिमें तो वृत्तिसहित अंतःकरणका अभाव होवै है; और निर्विकल्पसमाधिमें वृत्तिसहित अंतःकरण तो होवै है; ताकी प्रतीति होवै नहीं. निर्विकल्पसमाधिविषे अंतःकरणकी जो ब्रह्माकार वृत्ति होवै है; ताका हेतु सविकल्पसमाधिका अभ्यास है. याते साधनरूप अष्टअंगनमें सविकल्पसमाधि गिनी है, निर्विकल्पसमाधि फलहै.

सो निर्विकल्पसमाधि भी दोप्रकारकी होवै है:—एक अद्वैतभावनारूप और दूसरी अद्वैतावस्थानरूप होवै है. अद्वैत ब्रह्माकार अंतःकरणकी अज्ञातवृत्तिसहित होवै सो अद्वैतभावनारूप निर्विकल्प समाधि कहिये है. या समाधिमें अभ्यास अधिक हुयेते, ब्रह्माकारवृत्ति भी शांत होय जावै है. याते वृत्तिरहितकूं अद्वैतावस्थानरूप निर्विकल्पसमाधि कहैं हैं. जैसे तप्तलोहके ऊपरि जलकी बुंद गेरी तप्तलोहमें प्रवेश करै है, तैसे अद्वैतभावनारूप समाधिके दृढ़अभ्यासते अत्यंत प्रकाशमान ब्रह्मविषे वृत्तिका लय होवै है. सो अद्वैतावस्थानरूप निर्विकल्पसमाधि ताका साधन है.

अद्वैतावस्थानरूप समाधि, और सुषुप्तिका इतना भेदहै:—सुषुप्तिमें वृत्तिका लय अज्ञानमें होवै है; अद्वैतावस्थानसमाधिमें वृत्तिका लय ब्रह्मप्रकाशमें होवै है. और सुषुप्तिका आनंदका अज्ञान आवृत है, और समाधिमें निरावरणब्रह्मानंदका भान होवै है.परंतु—

निर्विकल्पसमाधिमें चारि विघ्न होवैं हैं; सो निषेध करनेकूं कहियें हैं:—लय १, विक्षेप २, कषाय ३, रसास्वाद ४.आलस्यकरिके अथवा निद्राकरिके वृत्तिके अभावकूं लय कहैं हैं. ता लयते सुषुप्तिसमान अवस्था होवै है; ब्रह्मानंदका भान होवै नहीं; याते निद्रा आलस्यादिक निमित्तते जब वृत्तिका अपने उपादान अंतःकरणमें लय होता दीखै, तब योगी सावधान होयके निद्रादिकनकूंरोकिके वृत्तिकूं जगावै इसरीतिसे लयरूप विघ्नका विरोधी,जोनिद्राआलस्य निरोधसहित वृत्तिका प्रवाहरूप जागरण; ताकूं गौडपादाचार्य चित्त संबोधन कहैं हैं.

निक्षेपका यह अर्थ हैः—जैसे वाज वा विल्लीते डारिके चटिका गृहमें प्रवेश करे; तव भयव्याकुलकूं गृहके अंतर तत्काल स्थान दीखे नहीं; याते फेरि वाहिर आयके, भय अथवा मरणरूप खेदकूं प्राप्त होवै है. तैसे अनात्मपदार्थनकूं दुःख हेतु जानिके, अद्वैतानंदकूं विषय करनेवास्ते अंतर्मुख हुई जो वृत्ति, तहां वृत्तिका विषय चेतन अतिसूक्ष्म है; याते किंचित्काल वृत्तिकी स्थितिविना, तत्काल ही चेतनस्वरूप आनंदका लाभ नहीं होवै है, ताते वृत्ति बहिर्मुख होवै है. इसरीतिसे बहिर्मुखवृत्ति, विक्षेप कहिये है. सो वृत्तिकी स्थिरताविना स्वरूपआनंदका अलाभ होवै है. याते अंतर्मुखवृत्ति हुयेते भी जितनेकाल वृत्ति ब्रह्माकार होवै नहीं, उतनेकाल वाह्यपदार्थनमें दोषभावनाते, वृत्तिकूं बहिर्मुखता योगी होने देवे नहीं, किंतु वृत्तिकी अंतर्मुखता ही स्थापन. विक्षेपरूप विघ्नका विरोधी करे जो योगीका प्रयत्न, ताकं गौडपादाचार्यने सम कह्या है.

रागादिक दोषकूं कषाय कहैं हैं. यद्यपि रागादिक दो प्रकारके हैंः—एक वाह्य है, और, दूसरा अंतर है. पुत्र स्त्री धन आदिक जिनके विषय वर्तमान होवैं, सो वाह्य कहिये है. भूतका वा भावीका चिंतनरूप जो मनोराज्य, सो अंतर कहिये है. सो दोनोंप्रकारके रागादिक; समाधिमें, प्रवृत्त योगीविषे संभवैं नहीं. काहेते चित्तकी पांच भूमिकाः—हैं तिनमें एक क्षेप नाम भूमिका है; दूजी मूढता, तीजी विक्षेप, चौथी एकाग्रता, पांचवीं निरोधभूमिका है. लोकवासना, देहवासना, शास्त्रवासना इसते आदिलेके रजोगु-

णका परिणाम जो दृढअनात्मवासना, ताकूं क्षेप कहैं हैं. निद्राआलस्यादिक तमोगुणपरिणामकूं मूढता कहैं हैं. ध्यानमें प्रवृत्त चित्तकी कदाचित् बाह्यप्रवृत्तिकूं विक्षेप कहैं हैं. अंतःकरणका अतीतपरिणाम और वर्तमानपरिणाम समानाकार होवै, ताकूं एकाग्रता कहैं हैं यह एकाग्रताका लक्षण योगसूत्रमें पतंजलिने कहाहै;ताका भाव यह हैः— समाधिकालमें योगीके अंतःकरणमें एकाग्रता होवै है; सो एकाग्रता वृत्ति का अभावरूप नहीं;किंतु जितने अंतःकरणके परिणाम समाधिकालमें होवैं हैं, सो सारे ब्रह्मकूं ही विषय करैं हैं. याते अंतःकरणके अतीतपरिणाम और वर्तमानपरिणाम केवल ब्रह्माकार होनेते समानाकार होवैं हैं. ता एकाग्रताकी वृत्तिकूं निरोध कहैं हैं. ये पांच भूमिका अंतःकरणकी हैं. भूमिका नाम अवस्थाका है. ये—

पांचभूमिकासहित अंतःकरणके, ये क्रमते नाम हैंः—क्षिप्त १ अंतकरणका तो समाधिविषे अधिकार नहीं. विक्षिप्त अंतःकरणकूं मूढ २, विक्षिप्त ३, एकाग्र ४, निरुद्ध ५, तिनमें क्षिप्त और मूढ अंतःकरणका तो समाधिविषे अधिकार नहीं. विक्षिप्त अंतःकरणकूं अधिकार है. एकाग्र और निरुद्ध अंतःकरण समाधिकालमें होवै है, यह योगग्रंथनमें कहा है. रागादिक दोषसहित अंतःकरण क्षिप्त ही है; ता क्षिप्तअंतःकरणका योगमें अधिकार नहीं.याते रागादिक दोषरूप कषाय समाधिके विघ्न हैं; यह कहना संभवै नहीं; तथापि यह समाधान हैः—बाह्य अथवा अंतर जो रागादिक हैं, सो तो क्षिप्त अंतःकरणमें ही होवैं हैं; ताका अधिकार भी नहीं. तो भी अनेकजन्मविषे पूर्व अनुभव किये जो बाह्यअंतरें रागद्वेष, तिनके

सूक्ष्मसंस्कार, विक्षिप्तादिक अंतःकरणमें भी संभवें हैं. याते राग-द्वेषका नाम कषाय नहीं; किंतु रागद्वेषादिकनके संस्कार कषाय कहिये हैं. सो संस्कार अंतःकरण रहे जितने दूरि होवे नहीं; याते समाधिकालमें भी अंतःकरणमें रहैं हैं. परन्तु रागद्वेषादिकनके उद्भूतसंस्कार समाधिके विरोधी हैं; अनुद्भूत विरोधी नहीं. प्रगटकूं उद्भूत कहें हैं; अप्रगटकूं अनुद्भूत कहें हैं. समाधिमें प्रवृत्त योगीकूं जो रागद्वेषके संस्कारनकी प्रगटता होवे, तो विषयनमें दोषदर्शनते दावि देवे, विक्षेप कषायका यह भेद हैः—बाह्यविषयाकार वृत्तिकूं विक्षेप कहें हैं. और योगीके प्रयत्नते जहां वृत्ति अंतर्मुख तो होवे, परंतु रागादिकनके उद्भूत-संस्कारनते, अंतर्मुख हुई वृत्ति भी रुकि जावे, ब्रह्मकूं विषय करै नहीं, ताकूं कषाय कहें हैं. विषयमें दोषदर्शनसहित योगीके प्रयत्नते कषायविघ्नकी निवृत्ति होवै है.

रसास्वादका यह अर्थ हैः—योगीकूं ब्रह्मानंदका अनुभव होवै है और विक्षेपरूप दुःखकी निवृत्तिका अनुभव होवै है. कहूं दुःखकी निवृत्तिसे भी आनंद होवे है जैसे भारवाही पुरुषका भार उतरेसे ताकूं आनंद होवे, तहां आनंदमें और तो कोई विषय हेतु है नहीं; किंतु भारजन्य दुःखकी निवृत्तिसे यह कहै हैः—"मेरेकूं आनंद हुवा है." याते दुःखकी निवृत्ति भी आनंदका हेतु है. तैसे योगीकूं समाधिमें विक्षेपजन्यदुःखकी निवृत्तिसे जो आनंद होवे; ताका अनुभव, रसास्वाद कहिये है. जो दुःखनिवृत्तिजन्य आनंदके अनु-

भवसे ही योगी अलंबुद्धि करि लेवे, तौ सकल उपाधिरहित ब्रह्मानंदाकारवृत्तिके अभावते, ताका अनुभव समाधिमें होवे नहीं. याते दुःखनिवृत्तिजन्य आनंदका अनुभवरूप रसास्वाद भी समाधिमें विघ्न है. वांछितकी प्राप्तिविना भी विरोधीकी निवृत्तिसे; आनंदकी उत्पत्तिमें अन्य दृष्टांतः—जैसे पृथिवीमें निधि होवै, सो निधि अत्यंत विषधरसर्पते रहित होवे, तहां निधिप्राप्तिसे प्रथम भी, निधिप्राप्तिका विरोधी जो सर्प है; ताकी निवृत्तिसे आनंद होवै है. तहां सर्पनिवृत्तिके आनंदमें जो अलंबुद्धि करे, तो उद्यम त्यागनेते निधिप्राप्तिका परमानंद प्राप्त होवे नहीं. तैसे अद्वैतब्रह्मरूप निधि है, देहादिक अनात्मपदार्थनकी प्रतीतिरूप जो विक्षेप, सो सर्प है. विक्षेपरूप सर्पकी निवृत्तिजन्य जो अवांतरआनंदरूपी रसका अनुभवरूप आस्वादन है सो निधिरूपी अद्वैतब्रह्मकी प्राप्तिजन्य जो आनंद है; ताकी प्राप्तिका प्रतिबंधक होनेते विघ्न कहिये है. अथवा—

रसास्वादका यह और अर्थ है:—सविकल्पसमाधिसे उत्तर निर्विकल्पसमाधि होवै है. और सविकल्पसमाधिमें त्रिपुटी प्रतीत होवै है. याते सविकल्पसमाधिका आनंद त्रिपुटीरूप उपाधिसहित होनेते सोपाधिक कहिये है. और निर्विकल्पसमाधिमें त्रिपुटीप्रतीत होवे नहीं, याते निरुपाधिकआनंद निर्विकल्पसमाधिमें होवै है. इसरीतिसे सविकल्पसमाधिसे उत्तर निर्विकल्पसमाधिके आरंभमें भी सविकल्पसमाधिके सोपाधिकआनंदकूं त्यागि सकै नहीं किंतु

ताहीकूं अनुभव करै; सो रसास्वाद कहिये है. याते विक्षेप निवृत्तिजन्य आनंदका अनुभव, अथवा सविकल्पसमाधिके आनंदका अनुभव,रसास्वाद कहिये है. दोनोंप्रकारका रसास्वाद, निर्विकल्पसमाधिके परमानंदके अनुभवका विरोधी होनेते, विघ्न है; याते ताकूं ही त्यागे ऐसे निर्विकल्पसमाधिमें चारि विघ्न होवैं हैं; सो च्यारों विघ्न समाधिके आरंभमें होवैं हैं. याते सावधानतासे च्यारों विघ्नोंकूं रोकिके—

समाधिमें परमानंदकूं विद्वान् अनुभव करै है. ताहीकूं जीवन्मुक्त कहैं हैं. इसरीतिसे ज्ञानीका चित्त निरालंब नहीं होवै है. जब प्रारब्धबलते समाधिसे उत्थान होवै, तब भी समाधिमें जो परमानंदका अनुभव किया है, ताकी स्मृति होवै है. याते उत्थान कालमें भी ज्ञानीका चित्त निरालंब नहीं, और ज्ञानवान्की जो भोजनादिकनमें प्रवृत्ति होवे है; सो केवल प्रारब्धसे होवै है; परंतु भोजनादिकव्यवहारमें ज्ञानी खेद मानिके प्रवृत्त होवै है. काहेते, भोजनादिकनमें प्रवृत्ति भी समाधिसुषुप्तिकी विरोधी है. जाकूं भोजनादिक शरीरनिर्वाहकी प्रवृत्ति ही खेदरूप प्रतीत होवै, ताकी अधिक प्रवृत्ति संभवे नहीं. इसरीतिसे बहुत आचार्योंने यही पक्ष लिखा है, और जीवन्मुक्तिका आनंद भी बाह्यप्रवृत्तिमें होवे नहीं; किंतु निवृत्तिमें होवै है. याते जीवन्मुक्तिके सुखार्थी ज्ञानवान्की बाह्यप्रवृत्ति संभवे नहीं;

तथापि ज्ञानवान्के निवृत्तिका भी नियम कहना संभवे नहीं; काहेते निवृत्तिमें अथवा प्रवृत्तिमें वेदकी आज्ञारूप विधि तो ज्ञानीकूं

है नहीं. जाते ज्ञानीके व्यवहारमें नियम होवे. याते ज्ञानी निरंकुश है; ताका व्यवहार प्रारब्धसे होवै है. जिस ज्ञानीका प्रारब्ध भिक्षाभोजनमात्र फलका हेतु है; ताकी भिक्षाभोजनमात्रमें प्रवृत्ति होवै है. जाका प्रारब्ध अधिकभोगका हेतु होवे, ताकी अधिकमें भी प्रवृत्ति होवै है, और—

जो ऐसे कहैः—जाका प्रारब्ध भिक्षाभोजनमात्रका हेतुहोवै ताहीकूं ज्ञान होवै है, अधिक व्यवहारका हेतु जाका प्रारब्ध होवे ताकूं ज्ञान होवे नहीं, याते भिक्षाभोजनादिक व्यवहारते अधिकव्यवहारज्ञानीका होवे नहीं. जाकी अधिकप्रवृत्ति होवे सो ज्ञानी नहीं.

सो शंका बनै नहीं. काहेते, याज्ञवल्क्य, जनकादिक ज्ञानी कहे हैं. सभाविजयते धनसंग्रहव्यवहार याज्ञवल्क्यका तथा राज्यपालन व्यवहार जनकका कह्या है. और वासिष्ठग्रंथमें अनेक ज्ञानीपुरुषनके व्यवहार, नानाप्रकारके कहे हैं. याते ज्ञानीकी प्रवृत्ति अथवा निवृत्तिका नियम नहीं यद्यपि याज्ञवल्क्यने सभाविजयते उत्तर, विद्वत्संन्यासरूप निवृत्ति ही धारी है; और प्रवृत्तिमें ग्लानिके हेतु नानादोष कहे हैं; तथापि याज्ञवल्क्यकूं विद्वत्संन्यासते पूर्व ज्ञान नहीं था. यह कहना तो संभवै नहीं. किंतु ज्ञान तो प्रथम भी था: परंतु विद्वत्संन्यासते पूर्व जीवन्मुक्तिका आनंद प्राप्त हुवा नहीं. याते जीवन्मुक्तिके आनंदवास्ते सर्वसंग्रहका त्याग किया है. याज्ञवल्क्यकूं प्रारब्ध कुछकाल अधिकभोगका हेतु था, और उत्तरकाल न्यूनभोगका हेतु था याते प्रथम तो याज्ञवल्क्यकं ग्लानिविना अधिकभोग, और आगे ग्लानिते सर्वभोगनका त्याग हुवा है; और जन-

कका प्रारब्ध मरणपर्यंत राज्यपालनादिक समृद्धिभोगका हेतु हुवा है. याते सदा त्यागका अभाव ही हुवा है, भोगनमें ग्लानि भी हुई नहीं. और वामदेवादिकनका प्रारब्ध न्यूनभोगका हेतु हुवा है, तिनकूं सदा भोगनमें ग्लानिते प्रवृत्तिका अभाव ही कह्या है. और वासिष्ठमें ऐसा भी प्रसंग हैः—शिखरध्वजकी ज्ञानते अनंतर अधिकप्रवृत्ति हुई हैः—इसरीतिसे नानाप्रकारके विलक्षणव्यवहार ज्ञानी पुरुषनके कहे हैं. तिन सर्वकूं ज्ञान समान है, और ताका फल मोक्ष भी समान है और प्रारब्धभेदसे व्यवहारका भेद है. व्यवहारकी न्यूनतासे जीवन्मुक्तिके सुखकी अधिकता, और व्यवहारकी अधिकतासे जीवन्मुक्तिके सुखकी न्यूनता होवै है, याकेविषे—

कोई यह शंका करैहैः—जो जीवन्मुक्तिके सुखकूं त्यागिके तुच्छ भोगनमें प्रवृत्त होवे, विदेहमोक्षकूं भी त्यागिके, वैकुंठादिक लोककी इच्छा धारिके जावेगा.

सो शंका बनै नहीं. काहेते, जीवन्मुक्तिके सुखका त्याग और भोगनमें प्रवृत्ति तो ज्ञानीकी प्रारब्धबलते संभवै है और विदेहमोक्षका त्याग और परलोककूं गमन संभवे नहीं. काहेते ज्ञानीके प्राण बाहरि गमन करैं नहीं याते; परलोककूं गमन संभवै नहीं. और विदेहमोक्षका त्याग संभवे नहीं, काहेते ज्ञानते अज्ञानकी निवृत्ति होयके प्रारब्धभोगते अनंतर स्थूलसूक्ष्मशरीराकार अज्ञानका, चेतनमें लय विदेहमोक्ष कहिये है. सो अवश्य होवै है. जो मूलज्ञान बाकी रहै, अथवा नष्टअज्ञानकी फेरि उत्पत्ति होवै, तौ

विदेहमोक्षका अभाव होवै. सो मूलअज्ञानका विरोधी ज्ञान हुयेते अज्ञान बाकी रहै नहीं. और नाश हुये अज्ञानकी फेरि उत्पत्ति होवै नहीं. याते विदेहमोक्षका अभाव होवै नहीं. और विदेहमोक्षके त्यागमें तथा परलोकके गमनमें. ज्ञानीकी इच्छा भी संभवै नहीं. काहेते ज्ञानीकूं इच्छा केवल प्रारब्धसे होवै है. जितनी सामग्रीविना प्रारब्धका भोग संभवे नहीं. उतनी सामग्रीकूं प्रारब्ध रचै है इच्छाविना भोग संभवै नहीं. ताते ज्ञानीकी इच्छा भी प्रारब्धका फल है और अन्यलोकमें अथवा इसलोकमें, अन्यशरीरका संबंध ज्ञानीकूं प्रारब्धसे भी होवै नहीं, यह पूर्व इसीतरंगमें प्रतिपादन करि आये हैं. याते ज्ञानीकूं प्रारब्धसे विदेहमोक्षके त्यागकी, वा परलोकके गमनकी इच्छा होवै नहीं.

जीवन्मुक्तिके सुखके विरोधी वर्तमानशरीरमें अधिकभोगनकी इच्छा तो भिक्षाभोजनादिकनकी न्याईं जनकादिकनकूं संभवै है. या स्थानमें यह रहस्य है:—ज्ञानीकी बाह्य प्रवृत्ति जीवन्मुक्तिकी विरोधी नहीं; किंतु जीवन्मुक्तिके विलक्षणसुखकी विरोधी है, काहेते, आत्मा नित्यमुक्त है, अविद्यासे बंध प्रतीत होवै है. जिसकालमें ज्ञान होवै है, तिसीकालमें अविद्याकृत बंधभ्रम नष्ट होवै है. ज्ञान हुयेते फेरि बंधभ्रांति होवे नहीं. शरीरसहितकूं बंधभ्रमका अभाव ही जीवन्मुक्ति कहिये है. देहादिकनकी प्रवृत्तिमें, तथा निवृत्तिमें, ज्ञानीकूं बंध भ्रांति आत्मामें होवे नहीं, याते बाह्यप्रवृत्तिसे भी जीवन्मुक्ति

दूरि होवै नहीं. तौ भी बाह्यप्रवृत्तिमें जीवन्मुक्तकूं विलक्षण सुख होवै नहीं. एकाग्रतारूप अंतःकरण परिणामते सुख होवै है. सो एकाग्रता परिणाम बाह्यप्रवृत्तिमें होवै नहीं इसरीतिसे प्रारब्धभेदते ज्ञानीपुरुषनके व्यवहार नानाप्रकारके हैं, परंतु जाका प्रारब्ध अधिकप्रवृत्तिका हेतु होवै है; ताका मंदप्रारब्ध कहिये है काहेते अधिकप्रवृत्ति एकाग्रता की विरोधी है. और एकाग्रताविना निरुपाधिकआनंद प्रतीत होवै नहीं. यह समाधिनिरूपणमें कही है. और

जो पूर्व कह्या" ज्ञानवानकूं सर्व अनात्मपदार्थनमें मिथ्या बुद्धि होवै है, राग होवै नहीं; याते प्रवृत्ति संभवै नहीं—

सो शंका भी बनै नहीं. काहेते, जैसे देहविषे मिथ्याबुद्धि भी ज्ञानीकूं होवै है; तौ भी देहके अनुकूल जो भिक्षादिक हैं, तिनमें केवल प्रारब्धते प्रवृत्ति होवै है; तैसे जिसका अधिकभोगका प्रारब्ध होवे, तिस ज्ञानीकी अधिकप्रवृत्ति भी, होवैहै. जैसे बाजीगरके तमासेकूं मिथ्या जानिके, सर्वलोगनकी प्रवृत्ति होवै है; तैसे सर्वपदार्थनमें ज्ञानीकूं मिथ्या बुद्धि हुयेसे भी प्रवृत्ति संभवै है. और—
जो ऐसे कहैं, जाकूं जिस पदार्थमें दोषदृष्टि होवै; ताके विषे तिस पुरुषकी प्रवृत्ति होवै नहीं. ज्ञानीकूं अनात्मपदार्थनमें दोषदृष्टि होवै है राग होवैनहीं; याते प्रवृत्ति संभवै नहीं.

सो भी बनै नहीं. काहेते, जिस अपथ्यसेवनमें, रोगीने अन्वयव्यतिरेकते दोष निश्चय कियाहै; ता अपथ्यसेवनमें प्रारब्धते जैसे रोगीकी प्रवृत्ति होवै है तैसे प्रारब्धसे ज्ञानीकी सर्वव्यवहारमें प्रवृत्ति

दोषदृष्टि हुये भी संभवै है. इसरीतिसे ज्ञानीके व्यवहारका नियम नहीं यह पक्ष विद्यारण्यस्वामीने विस्तारसे तृप्तिदीपमें प्रतिपादन किया है. याते तत्त्वदृष्टिका व्यवहार नियम रहित है. समाधिरूप नियमकी विधि सुनिके तत्त्वदृष्टि हँसै है.

दोहा ।

भ्रमण करत कछु काल यों, तत्त्वदृष्टि सुज्ञान ।
भोगौ निजप्रारब्ध तब, लीन भये तिहिं प्रान ॥ १७ ॥

टीका—प्रारब्धभोगते अनंतर ज्ञानीके प्राण गमन करैं नहीं. याते तत्त्वदृष्टिके प्राण लीन हुये यह कह्या और ज्ञानीके शरीरत्यागमें कालविशेषकी अपेक्षा नहीं. उत्तरायणमें अथवा दक्षिणायनमें देहपात होवै, सर्वथा मुक्त है. तैसे देशविशेषकी अपेक्षा नहीं. काशीआदिक पुनीतदेशमें, अथवा अत्यंतमलिनदेशमें ज्ञानीका देहपात होवै, सर्वथा मुक्त है. तैसे आसनविशेषकी अपेक्षा नहीं. पृथिवीमें सबआसनते अथवा सिद्धआसनते देहपात होवै तैसे सावधान ब्रह्मचिंतन करतेका अथवा रोगव्याकुल हाहाशब्द पुकारतेका देहपात होवै, सर्वथामुक्तहै काहेते, जिसकालमें ज्ञानते अज्ञान निवृत्त हुआ तिसी कालमें ज्ञानी मुक्त है. याते ज्ञानीकूं विदेहमोक्षमें, देश काल आसनादिकनकी अपेक्षा नहीं. जैसे ज्ञानीकूं देहपातमें देशकालादिकनकी अपेक्षा नहीं; तैसे ज्ञानके निमित्त श्रवणमें भी, देशकालआसनादिकनकी अपेक्षा नहीं, और—

उपासककूं देशकालादिकनकी, अपेक्षा है. यद्यपि भीष्मादिक

ज्ञानी कहे हैं, और भीष्मने उत्तरायणविना प्राण त्याग किये नहीं; तथापि भीष्मादिक अधिकारीपुरुष हैं. याते उपासकनके उपदेश-वास्ते, तिन्होंने कालविशेषकी प्रतीक्षा करी है. और वशिष्ठ भीष्मादिक अधिकारी हैं याते ही उनकूं अनेक जन्म हुये हैं. काहेते अधिकारीपुरुषनका एक कल्पपर्यंत प्रारब्ध होवै है. कल्पके अंत-रविना विदेहमोक्ष होवै नहीं. और कल्पके भीतरि तिनकूं इच्छा बलते नानाशरीर होवैं हैं. तथापि आत्मस्वरूपविषे तिनकूं जन्मम-रणभ्रांति होवे नहीं; याते जीवन्मुक्त हैं. तिन अधिकारीपुरुषनका व्यवहार संपूर्ण अन्यके उपदेशनिमित्त है. और अन्यज्ञानीके व्यव-हारमें कोई नियम नहीं. इस अभिप्रायते तत्त्वदृष्टिके देहपातका देशकालआसनादिक कुछ कह्या नहीं.

दोहा।

दूजो शिष्य अदृष्टि तिहिं, गंगातट शुभथान।
देश इकंत पवित्र अति, कियो ब्रह्मको ध्यान॥ १८॥
शास्त्ररीति तजि देहकूं, पूरव कह्यो जु राह।
जाय मिल्यो सो ब्रह्मतैं, पायो अधिक उछाह॥ १९॥

टीका—जैसे ज्ञानीकूं देशकालकी अपेक्षा नहीं; तासे विपरीत उपासककूं जाननी. उत्तमदेशमें, उत्तम उत्तरायणादिक कालमें, उपासक शरीर तजै; तब उपासनाका फल होवै और ज्ञानीकूं मरणसमय सावधानतासे, ज्ञेयकी स्मृतिकी अपेक्षा नहीं; उपास-ककूं मरणसमय ध्येयका स्वरूपकी स्मृतिकी अपेक्षा है, जिस

ध्येयका पूर्व ध्यान किया है, ता ध्येयकी स्मृति मरणसमय होवैः तब उपासनाका फल होवै है. जैसे ध्येयकी स्मृति चाहियेः तैसे ध्येयब्रह्मकी प्राप्तिका जो मार्ग पंचम तरंगमें कहा है, ताकी भी स्मृति चाहिये. काहेते, मार्गचिंतन भी उपासनाका अंग है, और ज्ञाननिमित्त श्रवणमें देशकालआसनकी अपेक्षा नहीं. ध्यानमें उत्तमदेश, निरंतर काल सिद्धादिकआसनकी अपेक्षा है. याते अदृष्टिकूं उत्तमदेश, गंगातीरमें स्थितिः और मरणसमय भी योगशास्त्र रीतिसे देहपात कह्या.

दोहा।

तर्कदृष्टि पुनि तीसरो, लहि गुरुमुखउपदेश।
अष्टादशप्रस्थान जिन, अवगाहन करि वेश ॥ २० ॥
जेती वाणी वैखरी, ताको अलं पिछान॥
हेतुमुक्तिको ज्ञान लखि, अद्वयनिश्चय ज्ञान ॥ २१ ॥

टीका—तर्कदृष्टि नाम तीसरा गुरुद्वारा उपदेशकूं श्रवणकरिके सुने अर्थमें अन्यशास्त्रनका विरोध दूरि करनेकूं सर्वशास्त्रनका अभिप्राय विचारिके यह निश्चय कियाः—सकलशास्त्रनका परमप्रयोजन मोक्ष है. मोक्षका साधन ज्ञान है. सो ज्ञान अद्वयनिश्चयरूप है. भेदनिश्चय यथार्थज्ञान नहीं. सारे शास्त्र साक्षात् अथवा परंपराते ब्रह्मज्ञानका हेतु हैं.

यद्यपि संस्कृत वैखरीवाणीके अष्टादश प्रस्थान हैं; तिनमें कोई कर्मकूं प्रतिपादन करै है; कोई विषयसुखके उपायोंकूं प्रतिपादन

करै है, कोई ब्रह्मभिन्न देवनकी उपासनाकूं बोधन करै है. तैसे ज्ञाननिमित्त जो न्याय सांख्य आदिक शास्त्र हैं; सो भी भेदज्ञान-कूंही यथार्थज्ञान कहैं हैं; याते सर्वकूं अद्वैतब्रह्मकी बोधकता बनै नहीं.

तथापि सकलशास्त्रनके कर्त्ता सर्वज्ञ हुये हैं; और कृपालु हुये हैं. याते तिनके किये मूलसूत्रनका तौ, वेदके अनुसार ही अर्थ है. परंतु तिनके व्याख्यानकर्त्ता भ्रांत हुये हैं. मूलसूत्रकारनके अभिप्रा-यते विलक्षण अर्थ किया है. सो वेदसे विरुद्ध तिन सूत्रनका अर्थ नहीं; किंतु सर्वशास्त्रनका वेदानुसारी अर्थ है. यह तर्कदृष्टिने उत्तम संस्कारते निश्चय किया.

विद्याके अष्टादश प्रस्थान यह हैं:—चारि वेद, चारि उपवेद षट् वेदके अंग, पुराण, न्याय, मीमांसा, धर्मशास्त्र; इसरीतिसे वैखरीवा-णीरूप विद्याके अठारह भेद हैं. तिन्हकूं प्रस्थान कहैं हैं.

ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद; ये चारि वेद हैं. तिनमें कितने वचन ज्ञेयब्रह्मकूं बोधन करैं हैं; कितने ध्येयकूं बोधन करैं हैं;और बाकी कर्मकूं बोधन करैं हैं. जो कर्मके बोधक वेदवचन हैं, तिनका भी अंतःकरणशुद्धिद्वारा ज्ञान ही प्रयोजन है. और प्रवृत्तिमें किसी वेदवचनका अभिप्राय नहीं किंतु निषिद्धस्वाभाविक प्रवृत्तिसे रोकनेमें अभिप्राय है याते अभिचारादि कर्मका प्रतिपादक जो अथर्ववेद है, ताका भी निवृत्तिमें तात्पर्य है जो द्वेषते शत्रुमारनेमें प्रवृत्त होवै, तो गरदानसे अथवा अग्निदाहसे शत्रुकूं नहीं मारे; इस-वास्ते अभिचार कर्म श्येनयागादिक कहे हैं. शत्रुमारणके निमित्त

जो कर्म, सो अभिचार कहिये है. ऐसा श्येन नाम यज्ञ है. श्येनयागका बोधक जो वेदवचन है; ताका यह अर्थ नहीं:—शत्रुमारणकामनावाला श्येनयागमें प्रवृत्त होवै, किंतु शत्रुमारणकी जाकूं कामना होवे सो श्येनयागते भिन्न जो गरदानादिक शत्रुमारणके उपाय हैं, तिनमें प्रवृत्त होवै नहीं. इसरीतिसे द्वेषते प्राप्त जो गरदानादिक तिनते निवृत्तिमें श्येनयागबोधकवचनका अभिप्राय है; प्रवृत्तिमें नहीं. काहेते प्रवृत्ति द्वेषते प्राप्त है जो अन्यते प्राप्त होवे तामें वाक्यका अभिप्राय होवै नहीं. इसरीतिसे सारे अथर्ववेदका निवृत्तिमें तात्पर्य है. और तीनि वेदनमें कर्मबोधक वाक्यनका; अंतःकरणशुद्धिद्वारा ज्ञानमें उपयोग स्पष्ट है. तैसे चारि उपवेद हैं:—आयुर्वेद १, धनुर्वेद २, गांधर्ववेद ३, अर्थवेद ४. तिनमें आयुर्वेदका कर्ता ब्रह्मा, प्रजापति, अश्विनीकुमार, धन्वंतरि आदिक हैं. चरक, वाग्भट्टादिक चिकित्साशास्त्र आयुर्वेद है. और वात्स्यायनकृत कामशास्त्र भी आयुर्वेदके अंतर्भूत है. काहेते, कामशास्त्रका विषय वाजीकरण स्तंभनादिक भी, चरकादिकोंने कथन किये हैं. तिस आयुर्वेदका वैराग्यमें ही अभिप्राय है. काहेते, आयुर्वेदकी रीतिसे रोगादिकनकी निवृत्ति हुयेते भी फेरि रोगादिक उत्पन्न होवैं हैं. याते लौकिक उपाय तुच्छ हैं, इस अर्थमें आयुर्वेदका अभिप्राय है. और औषधदानादिकनते पुण्य होयके अंतःकरणकी शुद्धिद्वारा भी ज्ञानमें उपयोग है. तैसे—

विश्वामित्रकृत धनुर्वेदमें आयुध निरूपण किये हैं. आयुधचारि प्रकारके हैं:—मुक्त १, अमुक्त २, मुक्तामुक्त ३, यंत्रमुक्त ४,

चक्रादिक हाथसे फेंकियें सो मुक्त कहियें हैं, खड्गादिक अमुक्त कहियें हैं. बरछी आदिक मुक्तामुक्त कहियें हैं. शर गोलीआदिक यंत्रमुक्त कहियें हैं. इसरीतिसे चारिप्रकारके आयुध हैं. तिनमें मुक्त आयुधकूं अस्त्र कहैं हैं. अमुक्तकूं शस्त्र कहैं हैं. इन चारिप्रकारके आयुधनके, ब्रह्मा, विष्णु, पशुपति, प्रजापति, अग्नि, वरुण आदिक देवता; मंत्र कहे हैं. क्षत्रियकुमार अधिकारी कहे हैं, और तिनके अनुसारी ब्राह्मणादिक भी अधिकारीकहे हैं. तिनके चारि भेद कहे हैंः—पदाति १ रथारूढ २ अश्वारूढ ३ गजारूढ ४ और युद्धमें शकुन मंगल कहे हैं. इतना अर्थ धनुर्वेदके प्रथम पादमें कहा है. और आचार्यका लक्षण तथा आचार्यते शस्त्रोंके ग्रहणकी रीति, धनुर्वेदके द्वितीयपादमें कही है. और गुरुसंप्रदायते प्राप्त हुये शस्त्रोंका अभ्यास, तथा मंत्रसिद्धि देवतासिद्धिका प्रकार तृतीयपादमें कह्या है. सिद्ध हुये मंत्रनका प्रयोग चतुर्थपादमें कहा है, इतना अर्थ धनुर्वेदमें है सो ब्रह्मा प्रजापति आदिकनते विश्वामित्रको प्राप्त हुवा है. ताने प्रगट किया है. और विश्वामित्रते धनुर्वेद उत्पन्न नहीं हुवा. दुष्टचौरादिकनते प्रजापालन क्षत्रियका धर्मबोधक धनुर्वेद है. याते ताका भी अंतःकरणशुद्धिकरिके, ज्ञानद्वारा मोक्षमें ही अभिप्राय है. तैसे गांधर्ववेद भरतने प्रगट किया है तामें स्वर, ताल, मूर्छना सहित, गीत, नृत्य, वाद्यका निरूपण विस्तारसे किया है देवताका आराधन, निर्विकल्पसमाधिकी सिद्धि गांधर्ववेदका प्रयोजन कह्या है. याते ताका भी अंतःकरणकी एकाग्रताकरिके; ज्ञानद्वारा मोक्ष ही प्रयोजन है. तैसे अर्थवेद भी नानाप्रकारका हैः—नीति-

शास्त्र, अश्वशास्त्र, शिल्पशास्त्र, सूपकारशास्त्रसे आदिलेके धनप्राप्तिके उपाय-बोधकशास्त्र, अर्थवेद कहिये है. धनप्राप्तिके सकलउपायनमें निपुण पुरुषकूं भी भाग्यविना धनकी प्राप्ति होवै नहीं; याते अर्थवेदका भी वैराग्यमें ही तात्पर्य है. तैसे चारि वेदनके षट् अंग हैं:—शिक्षा १, कल्प २, व्याकरण ३, निरुक्त ४, ज्योतिष ५, पिंगल ६, ये छः वेदके उपयोगी होनेते वेदके अंग कहियें हैं. तिनमें, शिक्षाका कर्त्ता पाणिनि है. वेदके शब्दनमें अक्षरोंके स्थानका ज्ञान; और उदात्त, अनुदात्त, स्वरितका ज्ञान शिक्षाते होवै है. वेदनके व्याख्यानरूप जो अनेक प्रातिशाख्यादि नाम ग्रंथ हैं; सो भी शिक्षाके अंतर्भूत हैं—

तैसे वेदबोधितकर्मके अनुष्ठानकी रीति, कल्पसूत्रनते जानी जावै है. यह करावनेवाले ब्राह्मण, ऋत्विक् कहियें हैं. तिनके भिन्न भिन्न करनेयोग्य जो कर्म; तिनके प्रकारके बोधक कल्पसूत्र हैं. तिन कल्पसूत्रनके कर्त्ता कात्यायन आश्वलायनादिक मुनि हैं, याते कल्पसूत्र भी वेदका उपयोगी होनेते वेदका अंग है. तैसे—

व्याकरणते वेदके शब्दनका शुद्धताका ज्ञान होवै है सो व्याकरण सूत्ररूप अष्टअध्याय पाणिनि नाम मुनिने किया है. कात्यायन और पतंजलिने तिन सूत्रनके व्याख्यानरूप वार्त्तिक और भाष्य किये हैं. और जो व्याकरण हैं, तिनमें वेदके शब्दनका विचार नहीं; याते पुराणादिकनमें उपयोगी तो हैं; परंतु वेदके उपयोगी नहीं. और पाणिनिकृत व्याकरण, वेदके शब्दनकी भी सिद्धि करै है; याते

वेदका अंग है. तैसे यास्क नाम मुनिने त्रयोदशअध्यायरूप निरुक्त किया है. तहां वेदके मंत्रनमें अप्रसिद्धपदनके अर्थबोधके निमित्त नाम निरूपण किये हैं. याते वैदिक अप्रसिद्धपदनके अर्थ ज्ञानमें उपयोगी होनेते, निरुक्त भी वेदका अंग है. संज्ञाका बोधक जो पंचाध्यायरूप निघंटु नाम ग्रंथ यास्कने किया है; सो भी निरुक्तके अंतर्भूत है. और अमरसिंह, हेमादिकननै किये जो संज्ञाके बोधक कोष हैं, सो सारे निरुक्तके अंतर्भूत हैं. तैसे—

पिंगलमुनिने सूत्र अष्टअध्यायते छन्द निरूपण किये हैं; तिनते वैदिकगायत्रीआदिक छंदनका ज्ञान होता है; याते पिंगलकृत सूत्र भी वेदके अंग हैं. तैसे आदित्य गर्गादिकृत ज्योतिष भी वेदका अंग है. काहेते, वैदिककर्मके आरम्भमें कालका ज्ञान चाहिये. सो काल ज्ञान ज्योतिषते होवै है; याते वेदका अंग है. यह षट् जो वेदके अंग हैं, तिनमें वेदमें उपयोगी जो अर्थ नहीं; ताका प्रसंगते निरूपण किया है, प्रधानतासे नहीं. याते वेदका जो प्रयोजन है सोई षट्अंगनका प्रयोजन है; पृथक् नहीं.

पुराण अष्टादश हैं. व्यास नाम मुनिने किये हैं. तिनके ये नाम हैं—ब्राह्म १, पाद्म २, वैष्णव, ३, शैव ४, भागवत ५, नारदीय ६, मार्कंडेय ७, आग्नेय ८, भविष्य ९, ब्रह्मवैवर्त १०; लैंग ११, वाराह १२, स्कंद १३, वामन १४, कौर्म १५, मात्स्य १६, गारुड १७, ब्रह्मांड १८, ये अष्टादशपुराण व्यासने किये हैं. तैसे कालिकापुराणादिक और बहुत हैं सो उपपुराण हैं. कोई उप

पुराणभी अष्टादश कहैं हैं, सो नियम नहीं. उपपुराण बहुत हैं, भागवत दो हैं:—एक तो वैष्णवभागवत है, और दूसरा भगवती भागवत है, दोनोंकी समानसंख्या अष्टादशसहस्र है और दोनोंके द्वादश स्कंध हैं, परन्तु तिनमें एक पुराण है, दूसरा उपपुराण है. दोनों व्यासकृत हैं याते दोनों प्रामाणिक हैं,जैसे व्यासने पुराण किये हैं; तैसे उपपुराणभी कोई व्यासने किये हैं; कोई उपपुराण परासरआदिक अन्य सर्वज्ञमुनियोंने किये हैं, याते उपपुराणभी प्रमाण हैं, जो उपनिषदनका अर्थ है, सोई उपपुराणसहित पुराणोंका अर्थ है, यह वार्ता आगे प्रतिपादन करैंगे, तैसे—

पंचअध्यायरूप न्यायसूत्र गौतमने किया है. तिनमें युक्ति प्रधान है, युक्तिचिंतनते पुरुषकी तीव्र बुद्धि होवे, तब मनन करनेविषे समर्थ होवै है, याते युक्तिप्रधान न्यायसूत्रनकाभी, मननद्वारा वेदांतजन्य ज्ञानही फल है. और कणाद नाम मुनिने दशअध्यायरूप वैशेषिकसूत्र किये हैं; तिनकाभी न्यायमें अंतर्भाव है. तैसे—

मीमांसाके दो भेद हैं:—एक धर्ममीमांसा दूसरी ब्रह्ममीमांसा. धर्ममीमांसाकूं पूर्वमीमांसा कहैं हैं, ब्रह्ममीमांसाकूं उत्तरमीमांसा कहैं हैं, धर्ममीमांसाके द्वादशअध्याय हैं; जैमिनि नाम ताका कर्त्ता है. कर्मअनुष्ठानकी रीति तामें प्रतिपादन करी है. याते विधिसे कर्ममें प्रवृत्ति; धर्ममीमांसाका फल है. कर्ममें प्रवृत्तिसे अन्तः-करणशुद्धि, तासे ज्ञान और ज्ञानते मोक्ष इस रीतिसे धर्ममीमांसाका मोक्ष फल है. और धर्ममीमांसाके द्वादशअध्यायनमें; आपसमें अर्थका भेद है सो कठिन है, याते लिखा नहीं. और संकर्षणकांड

पंचअध्यायरूप जैमिनिने किया है, ताकेविषै उपासना कही है ताका भी धर्ममीमांसामें अंतर्भाव है. तैसे—

अध्यायके चारि चारि पाद हैं. तहां प्रथमअध्यायमें यह अर्थ हैः—

ब्रह्ममीमांसाके च्यारि अध्याय हैं,ताका कर्त्ता व्यासहैं;एक एक अध्यायके चारि चारि पाद हैं. तहां प्रथमअध्यायमें यह अर्थ है:— सारे उपनिषद्वाक्य, ब्रह्मकूं प्रतिपादन करैं हैं अन्यकूं नहीं. और उपनिषद्वाक्यनका मंदबुद्धिपुरुषनकूं आपसमें विरोध प्रतीत होवै है; ताका परिहार द्वितीयअध्यायमें कह्या है. और ज्ञान उपासनाके साधनका विचार तृतीयअध्यायमें कह्या है. ज्ञान उपासना का फल चतुर्थअध्यायमें कह्या है, यह ब्रह्ममीमांसारूप शारीरक शास्त्रही सर्वशास्त्रनमें प्रधान है, मुमुक्षुकूं येही उपादेय है. ताके व्याख्यानरूप ग्रंथ यद्यपि नाना हैं; तथापि श्रीशंकरकृतभाष्यरूप व्याख्यान ही मुमुक्षकूं श्रोतव्य है.ताका ज्ञानद्वारा मोक्षफल स्पष्ट ही है. तैसे—

मनु, याज्ञवल्क्य, विष्णु, यम, अंगिरा, वशिष्ठ, दक्ष, संवर्त्त, शातातप, परासर, गौतम, शंख, लिखित, हारीत, आपस्तंब, शुक, बृहस्पति, व्यास, कात्यायन, देवल, नारद इत्यादिक सर्वज्ञ हुये हैं: तिन्होंने वेदके अनुसार स्मृति नाम ग्रंथ किये हैं.सो धर्मशास्त्रकहिये हैं. तिनमें वर्ण आश्रमके कायिक वाचिक मानसिक धर्म कहे हैं. तिनका भी अन्तःकरणशुद्धिद्वारा ज्ञान होयके मोक्षही प्रयोजन है तैसे व्यासने महाभारत, और वाल्मीकिने रामायण किया है;तिनका भी धर्मशास्त्रमें अंतर्भाव है और देवताआराधनके निमित्त जो मंत्र-

शास्त्र है, ताकाभी धर्मशास्त्रमें अंतर्भाव है. देवताआराधनका अंतः- करणशुद्धि प्रयोजन है. तैसे सांख्यशास्त्र, योगशास्त्र वैष्णवतन्त्र, शैवतन्त्रादिकभी, धर्मशास्त्रके अंतर्भूत हैं. काहेते, इनमेंभी मानस धर्मका निरूपण है. तहां-

सांख्यशास्त्र षट्अध्यायरूप कपिलने किया है ताके प्रथम अध्यायमें विषय निरूपण किये हैं. द्वितिय अध्यायमें महत्तत्त्व अहंकारादिक प्रधानके कार्य्य कहे हैं. तृतीय अध्यायमें विपयनते वैराग्य कह्या है. चौथे अध्यायमें विरक्तोंकी आख्यायिका कही है. पंचम अध्यायमें परपक्षका खंडन कह्या है. छठेअध्यायमें सारे अर्थका संक्षेपते संग्रह किया है. प्रकृतिपुरुषके विवेकते पुरुषका असंगज्ञान सांख्यशास्त्रका प्रयोजन है. ताकाभी त्वंपदके लक्ष्य अर्थ शोधनद्वारा महावाक्यजन्य ज्ञानमें उपयोगी होनेते, मोक्षही फल है. तैसे--

योगशास्त्र चारिपादरूप है. पतंजलि ताका कर्ता है. सो पतं जलि शेषका अवतार है. एक ऋषि संध्याउपासना करेथा, ताकी अंजलिमें प्रगट होयके पृथिवीमें पड़्या है, याते पतंजलि नाम क- हिये है, ताने शरीरका रोगरूपी मल दूरि करनेवास्ते चिकित्साग्रन्थ किया है. और अशुद्धशब्दका उच्चारणरूपी जो वाणीका मल है, ताके नाशकूं पाणिनिव्याकरणका भाष्य किया है. तैसे विक्षेपरूप अंतःकरणकामल है,ताके नाशकूं योगसूत्र किये हैं. तहां प्रथम पादमें चित्तवृत्तिका निरोधरूप समाधि,और ताके साधन,अभ्यास वैराग्या-

दिक कहे हैं. तैसे विक्षिप्तचित्तकूं समाधिके साधन, यम, नियम, आ-
सन, प्राणायाम,प्रत्याहार,धारणा,ध्यान,समाधि,ये आठसमाधिके अं-
गद्वितीयपादमें कहेहैं,तृतीयपादमें योगकी विभूति कही है,चतुर्थपादमें
योगका फल मोक्ष कह्या है. इसरीतिसे योगशास्त्र भी ज्ञानसाधन,
निदिध्यासनकूं संपादनद्वारा मोक्षका हेतु है. शारीरकसूत्रनमें जो
सांख्ययोगका खंडन किया है, सो तिनके व्याख्यान जो उपनिषदनसे
विरुद्ध किये हैं; तिनका खंडन किया है; सूत्रनका नहीं. तैसे,

न्याय वैशेषिकका खंडन भी विरुद्धव्याख्यानका है तैसे नारदने
पंचरात्र नाम तंत्र, किया है, तामें वासुदेवमें अंतःकरण स्थापन
कह्या है, ताका भी अंतःकरणकी स्थिरतासें ज्ञानद्वारा मोक्ष ही
फल है. सारे वैष्णवग्रंथ पंचरात्रके अंतर्भूत हैं. सो पंचरात्र धर्म-
शास्त्रके अंतर्भूत है. तैसे पाशुपततंत्रमें पशुपतिका आराधन कह्या
है; ताका कर्त्ता पशुपति है ताका भी अंतःकरणकी निश्चलताद्वारा
मोक्षसाधन ज्ञान फल है, और—

जो शैवग्रंथ हैं, सो सारे पाशुपततंत्रके अंतर्भूत हैं. तैसे गणेश,
सूर्य, देवीकी उपासनाबोधक ग्रंथनका चित्तकी निश्चलताद्वारा
ज्ञान फल है. और सर्वका धर्मशास्त्रमें अंतर्भाव है. परंतु—

देवीकी उपासनाके बोधक ग्रंथमें दो संप्रदाय हैं:—एक दक्षिण
संप्रदाय दूसरी उत्तरसंप्रदाय है. उत्तरसंप्रदायकूं वाममार्ग कहैं हैं.
तिनमें दक्षिणसंप्रदायकी रीतिसे जिन ग्रंथनमें देवीकी उपासना है
सो तो धर्मशास्त्रके अंतर्भूत हैं. और वाममार्ग जिन ग्रंथमें है, सो

धर्मशास्त्रसे विरुद्ध हैं, याते अप्रमाण हैं. यद्यपि वामतंत्र शिवने किया है, तथापि सकलशास्त्र और वेदसे विरुद्ध है; याते प्रमाण नहीं. जैसे विष्णुके बुद्धअवतारने नास्तिकग्रंथ किये हैं; सो वेदविरुद्धहैं; याते प्रमाण नहीं. तैसे शिवकृतवामतंत्र भी अत्यंतविरुद्ध मदिरादिक अत्यंत अशुद्धपदार्थनका तामें ग्रहण लिखा है. और उत्तमपदार्थनके जो नाम हैं. सोई मलिनपदार्थनके नाम लोकवचनके निमित्त कहे हैं. मदिराका नाम तीर्थ, मांसका नाम शुद्ध, मदिरापात्रका नाम पद्मा. प्याजका नाम व्यास, लशुनका नाम शुकदेव, मदिराकारी कलालका नाम दीक्षित कहैं हैं. तैसे वेश्यासेवी चर्मकारीआदिक चांडालीसेवीकूं प्रयागसेवी काशीसेवी कहैं हैं. और भैरवीचक्रमें स्थित जो चांडालादिक हैं, तिनकूं ब्राह्मण कहैं हैं. और अत्यंत व्यभिचारिणीकूं योगिनी, और व्यभिचारीकूं योगी कहैं हैं. ऐसे अनेकप्रकारसे निषिद्ध तिनका व्यवहार है. पूजनके समय अनेक दोषवती स्त्रीकूं उत्तमशक्ति कहैं हैं. जातिकी चांडाली अतिव्यभिचारिणी, रजस्वलास्त्रीकूं देवीबुद्धिसे पूजन करैं हैं ताका उच्छिष्टमदिरापान करैं हैं और अधिकमदिरापानसे जो वमन करि देवे, ताकूं पृथ्वीमें नहीं गिरने देवैं हैं, किंतु आचार्यसहित दूसरे सावधान भक्षण करैं हैं. वमनकूं भैरवी कहैं हैं और स्त्रीकी योनिमें जिह्वा लगायके मंत्रनका जप करैं हैं. मदिरा १, मांस २, मैथुन ३, मुद्रा ४, मंत्र ५; इन पांच मकारकूं भोग मोक्ष निमित्त सेवन करैं हैं. प्रथमा द्वितीयादिक तिन प्रकारनके अप्रसिद्ध नामनते

व्यवहार करें हैं. इसते आदिलेके वामतंत्रका सकलव्यवहार, इस लोकते और परलोकते भ्रष्ट करे है. इसीकारणते, कर्णच्छेदी योगी, और अवधूत गुसांई, तैसे अनेक संन्यासी और ब्राह्मणादिक वाम-मार्गकूं सेवन करें हैं. तो भी लोकवेदनिंदित जानिके गुप्त राखें हैं अधिक क्या कहैं वामतंत्रकी रीति सुनिके, म्लेच्छके भी रोमांच होय जावें. ऐसा निंदित वामतंत्र है. सर्वगी जो भक्षण करें हैं सो सारे निंदितमार्ग वामतंत्रमें कहे हैं अतिनीचव्यवहार लिखनेयोग्य नहीं याते विशेष प्रकार लिखा नहीं. सर्वथा वामतंत्र त्यागने योग्यहै. तैसे—

नास्तिकमत भी त्यागने योग्य है. नास्तिकनके षट् भेद हैं:— माध्यमिक १, योगाचार २, सौत्रांतिक ३, वैभाषिक ४, चार्वाक ५, दिगंबर ६, ये छह वेदकूं प्रमाण नहीं मानें हैं तिनका आपसमें विलक्षणसिद्धांत है. माध्यमिक शून्यवादी हैं. योगाचारके मतमें सारे पदार्थ विज्ञानसे भिन्न नहीं; विज्ञानही तत्त्व है; सो विज्ञान क्षणिक है. सौत्रांतिकमतमें विज्ञानका आकार बाह्यपदार्थ विषय विना होवे नहीं, याते विज्ञानते बाह्यपदार्थनका अनुमान होवे है; इसरीतिसे सौत्रांतिकमतमें अनुमानप्रमाणके विषय बाह्यपदार्थ हैं. प्रत्यक्ष नहीं, और स्थिर नहीं किंतु सारे पदार्थ क्षणिक हैं. और वैभाषिकमतमें बाह्यपदार्थ क्षणिक तो हैं परंतु प्रत्यक्षप्रमाणके विषय हैं; इतना भेद है. ये चारि मत सुगतके हैं चार्वाकमतमें पदार्थ क्षणिक नहीं, परंतु तिसके मतमें देह आत्मा है. और दिगंबरमतमें

देह आत्मा नहीं, देहसे आत्मा भिन्न है; परंतु जितना देहका परिमाण होवै, उतना आत्माका परिमाण है. इसरीतिसे इनका आपसमें मतका भेद है. और भी इनकी आपसमें मतकी विलक्षणता बहुत है, परंतु सारे वेदके विरोधी हैं; याते नास्तिक हैं; इसी कारणते तिनके मतका उपपादन और खंडन विशेष करिके लिखा नहीं. इसरीतिसे—

वाममार्ग और नास्तिकमतनके ग्रंथ यद्यपि संस्कृतवाणीरूप है, तथापि वेदबाह्य हैं; याते वेदके अनुसारी विद्याके प्रस्थान अष्टादशही हैं. और मम्मटआदिकने जो साहित्यग्रंथ किये हैं तिनका भी कामशास्त्रमें अंतर्भाव है. तैसे सकलकाव्यनका भी किसीका कामशास्त्रमें, किसीका धर्मशास्त्रमें अंतर्भाव है. इसरीतिसे अष्टादश विद्याके अवस्थान, सारे ब्रह्मज्ञानद्वारा मोक्षके हेतु हैं. कोई साक्षात् ज्ञानका हेतु है, कोई परंपराते ज्ञानका हेतु है. यह तर्कदृष्टिने सकलशास्त्रनका अभिप्राय निश्चय किया यद्यपि उत्तरमीमांसाविना सारे शास्त्र जिज्ञासुकूं हेय हैं, यह शारीरिकमें सूत्रकार भाष्यकारने प्रतिपादन किया है. याते अन्यशास्त्र भी मोक्षके उपयोगी हैं यह कहना संभवे नहीं; तथापि सारग्राहीदृष्टिसे तर्कदृष्टिने यह सार निश्चय किया.

दोहा।

सुनि प्रसिद्ध विद्वान पुनि, मिल्यो आप तिहिं जाय।
निश्चय अपनो ताहि तिहिं, दीनो सकल सुनाय ॥ २२ ॥

टीका—गुरुद्वारा सुने अर्थमें बुद्धिकी स्थिरताके निमित्त सकलशास्त्रनका अभिप्राय विचारा; तो भी फेरि संदेह हुवाः—जो शास्त्रनका अभिप्राय मैं निश्चय किया सोई है, अथवा अन्य अभिप्राय है ? काहेते, तर्कदृष्टि कनिष्ठअधिकारी कह्या है; याते वारंवार कुतर्कते संदेह होवै है. ताकी निवृत्तिवास्ते अन्यविद्वान्के निश्चयते अपने निश्चयकी एकता करनेकूं गया.

दोहा।

तर्कदृष्टिके वैन सुनि, सो बोल्यो बुधसंत।
जो मोसूं तैं यह कह्यो, सोई मुख्य सिद्धांत ॥ २३ ॥
संशय सकल नशाय यों, लख्यो ब्रह्म अपरोक्ष।
जग जान्यो जिन सब असत, तैसे बंध रु मोक्ष ॥२४॥
शेष रह्यो प्रारब्ध यों, इच्छा उपजी येह।
चालि तत्कालहि देखिये, जननिजनकयुत गेह ॥२५॥

टीका—"ज्ञानीका सकल व्यवहार अज्ञानीकी न्याईं प्रारब्धसे होवै है;" यह पूर्व कही है; याते इच्छा संभवै है. और कहूं शास्त्रमें ऐसा लिखा हैः—ज्ञानीकूं इच्छा होवे नहीं, ताका यह अभिप्राय नहीं, ज्ञानीका अंतःकरण पदार्थकी इच्छारूप परिणामकूं प्राप्त होवे नहीं. काहेते—

अंतःकरणके इच्छादिक सहजधर्म हैं. और अंतःकरण यद्यपि भूतनके सत्त्वगुणका कार्य कह्या है; तथापि रजोगुण तमोगुणसहित, सत्त्वगुणका कार्य है; केवल सत्त्वगुणका नहीं. केवल सत्त्वगुणका

कार्य होवै, तो चलस्वभाव अंतःकरणका नहीं हुवा चाहिये, तैसे राजसीवृत्ति काम क्रोधादिक; और मूढतादिक तामसीवृत्ति, किसी अंतःकरणकी नहीं हुई चाहियें. याते केवलसत्त्वगुणका अंतः-करण कार्य नहीं; किंतु अप्रधानरजोगुण तमोगुणसहित; प्रधानसत्त्व-गुणवाले भूतनते अंतःकरण उपजै है. याते अंतःकरणमें तीनोंगुण रहैं हैं. सो तीनों गुण भी पुरुषनके जितने अंतःकरण हैं, तिनमें सम नहीं; किंतु न्यून अधिक हैं. याते गुणोंकी न्यूनता अधि-कतासे सर्वके विलक्षणस्वभाव हैं. इसरीतिसे तीनोंगुणोंका कार्य अंतःकरण है.

जितने अंतःकरण रहै, उतने रजोगुणका परिणामरूप इच्छाका अभाव बनै नहीं. याते ज्ञानीकूं इच्छा होवै नहीं; ताका यह अभिप्राय है:--अज्ञानी और ज्ञानी दोनोंको इच्छा तो समान होवै है, परंतु अज्ञानी तो इच्छादिके आत्माके धर्म जानै है; और ज्ञानिकूं जिसकालमें इच्छादिक होवैं हैं; तिसकालमें भी आत्माके धर्म इच्छादिकनकूं जानै नहीं. किंतु, काम, संकल्प, संदेह, राग, द्वेष, श्रद्धा, भय, लज्जा, इच्छादिक अंतःकरणके परिणाम हैं; याते अंतःकरणके धर्म जानैं हैं. इसरीतिसे इच्छादिक होवैं भी हैं, आत्माके धर्म इच्छादिक, ज्ञानीकूं प्रतीत होवें नहीं. याते ज्ञानीसें इच्छाका अभाव कह्या है. तैसे मन वाणी तनुसे जो व्यवहार ज्ञानी करै, सो सारा ज्ञानीकूं आत्मामें प्रतीत होवे नहीं. किंतु सारी क्रिया मन वाणी तनुमें है " और आत्मा असंग है, " यह

ज्ञानीका निश्चय है. याते सर्वव्यवहार कर्त्ता भी ज्ञानी अकर्त्ता है इसीकारणते श्रुतिमें यह कह्या है:– " ज्ञानते उत्तर किये जो वर्तमानशरीरमें शुभअशुभकर्म, तिनके फल पुण्य पापका संबंध होवै नहीं " प्रारब्धबलते अज्ञानीकी न्याई सर्वव्यवहार, और ताकी इच्छा संभवै है.

शुभसंतति नाम राजाकूं त्यागिके तीनों पुत्र निकसे, तहांपुत्रनकी कथा कही. अब पिताका प्रसंग कहैं हैं:–

दोहा।

पुत्र गये लखि गेहते, पितु चित उपज्यो खेद ।
सूनो राज न तिनि तज्यो, नहिं यथार्थनिर्वेद ॥ २६ ॥

टीका---पुत्र गृहते निकसे, तब राजाकूं तीव्रवैराग्यके अभाव ते तिनके वियोगका दुःख हुवा. तैसे मंदवैराग्य हुवा है, यातेविषय भोगका सुख होवै नहीं. और बाहारि निकसनेकी इच्छा करी. सो पुत्रनके निकसनेते सूना राज्य छोडि सकै नहीं, याते भी दुःख हुवा. जो तीव्रवैराग्य होता तो सूनाराज्य भी त्याग देता सो वैराग्य तीव्र हुवा नहीं, किंतु मंद हुवा है. याते त्यागि सकै नहीं. और भोगनमें आसक्ति नहीं, याते उभयथा खेदहीहै. यथार्थनिर्वेद कहिये तीव्रवैराग्य नहीं. मंद वैराग्यका फल उपास्यकी जिज्ञासा कहैं हैं:–

चौपाई।

शुभ संतति पितु सो वडभागा।भयो प्रथम तिहिं मंदविरागा॥

जिज्ञासा उपजी यह ताकूं।देव ध्येय को ध्याऊं जाकूं॥ २७॥
पंडित निर्णय करन बुलाये। यथायोग्य आसन बैठाये॥
प्रश्न कियो यह सबके आगे।अस को देव न सोवै जागे॥२८॥
पुरुषारथहित जन जिहिं जाचै। भक्तिमानके मनमें राचै॥
सुनि यह पृथिवीपतिकी बानी।इकातिनमें बोल्यो सुज्ञानी२९
सुन राजा तुहि कहूं सु देवा। शिव विरंचि लागे जिहिं सेवा॥
शंख चक्रधारी हितकारी। पद्म गदाधर परउपकारी ॥३०॥
मंगलमूर्ती विष्णु कृपालू। निज सेवक लखि करत निहालू॥
शक्ति गणेश सूर शिव जे हैं। सब आज्ञा ताकीमैं ते हैं॥३१॥
भारत सकलग्रंथ यह भाखै। पद्मपुराण तापिनी आँखै॥

टीका—तापनी कहिये नृसिंहतापिनी, रामतापिनी, गोपाल तापिनी, उपनिषद्.

चौपाई।

विष्णुरूपते उपजत सबही। परे भीर जाचैं तिहिं तबही॥३२॥
विविधवेषको धरि अवतारा। सब देवनकूं देत सहारा॥
याते ताकी कीजै पूजा। विष्णुसमान सेव्य नहिं दूजा ३३॥
विष्णु भक्त शिव उत्तम कहिये।तथापि सेव्य स्वरूप न लहिये
रूप अमंगलशिवको शवसम।ध्यान करै नहिं ताको यों हम

शव कहिये मुर्दा, ताके सम अमंगल.

चौपाई।

राख डमरु गजचर्म कपाला। धरैं आज किहिं करैं निहाला

ताको पूत गणेशहु तैसो । रूप विलक्षण नरपशु जैसो॥३५॥
शठ हठते ध्यावत जो देवी । तासमरूप धरत तिहिं सेवी ॥
तिर्यनिंदितअशुची न पवित्रा।अवगुण गिनै न जातिविचित्रा
कपटकूटको आकर कहिये । पराधीन निज तंत्र न लहिये ॥
ऐसो रूप जु चहिये जाकूं।सो सेवहु नर खरतम ताकूं ॥ ३७॥
भ्रमत फिरै निशिदिन यह भानू।रहत न निश्चल क्षण इक थानू
भ्रमतो फिरै उपासक ताको।तिहिसमान सेवक जो जाको३८
आनदेव याते सब त्यागै । सेवनीय इक हरि नित जागै ॥
पूजन ध्यान करन विधि जो हैं।नारदपंचरात्रमैं सोहैं॥३९॥

टीका—विष्णूकूं त्यागिके प्रसिद्ध जो च्यारि उपासना हैं; तिन एक एकका निषेध कियेते भी, स्मार्त्तउपासनाका भी निषेध किया. काहेते, पांचोंदेवनकूं समबुद्धिकरिके उपासे, ताकूं स्मार्त्तउपासना कहें हैं. शिवआदिक च्यारि देवनकूं विष्णुकी समता निषेधनेते, स्मार्त्तउपासनाका निषेध भी अर्थसे किया है.

चौपाई ।

शिवसेवक सुनि सुनि तिहिं बैना।क्रोधसहितबोल्यो चलनैना
सुन राजन वाणी इक मोरी।जामैं वचन प्रमाण करोरी४०॥
शिवसमान आन को कहिये । मांगे देत जाहि जो चहिये ॥
सब विभूति हरिकूं दै मांगी । धरत विभूति आप नितत्यागी४१
चर्म कपाल हेतु इहिं धारै। सम नाहिं उत्तम अधम विचारै॥
नग्न रहत उपदेशत येही।नहिं विरागसम सुख है केही॥४२॥

टीका—वैष्णवने चर्म कपालादिक निंदितवस्तुका धारण आक्षेप किया, ताका यह समाधान हैः—महादेवकूं सर्व पदार्थनमें समबुद्धि है. द्वितीयपादका अन्वय यह है—सम विचारै, उत्तम अधम नहीं विचारै.

चौपाई।

सदावर्त ऐसो दे भारी। काशीपुरी मरे नर नारी॥
सो सायुज्यमुक्तिकूं जावे। गर्भवास संकट नहिं पावै॥४३॥
शिवसमान नर नारी ते सब। लहत सु दिव्यभोग सगरे तब॥
करत आप अद्वय उपदेशा। तजत लिंग यों ब्रह्मप्रवेशा ४४
ऊंच नीच रंचहु नहिं देखै। मुक्ती सबकूं दे इक लेखै॥
शिवसमान राजनको दाता। भक्तअभक्तनसबकोत्राता ४५॥
विष्णुसुभाव सुन्यो हम ऐसो। जगमें जन प्राकृत है तैसो॥
त्राता भक्त अभक्त न त्राता। यह प्रसिद्ध सबजगमें नाता४६
हरिसेवक हर सेव्य बखान्यो। रामचंद्र रामेश्वर मान्यो॥
स्कंदपुराणव्यासबहुभाख्यो हरिसेवकहरसेव्याहिराख्यो ४७
कह्यो जु भारत पद्मपुराना। सबदेवनतैं हरि अधिकाना॥
भारततातपर्य नाहिं देख्यो। जा अप्पयदीक्षित बुध लेख्यो४८

टीका—वैष्णवने यह कह्याः—"भारतादिक ग्रंथनमें; विष्णु सर्व देवनका पूज्य कह्या है," सो बनै नहीं, काहेते, भारतग्रंथका तात्पर्य देखते शिवकूं ही ईश्वरता प्रतीत होवै. है यह अप्पयदीक्षत

नाम विद्वान्ने सकलपुराण इतिहासका तात्पर्य लिख्या है. तहां भारतमें यह प्रसंग हैः--अश्वत्थामाने नारायणअस्त्र और आग्नेयअस्त्र का प्रयोग किया, तब बहुत सेनाका तो संहारभी हुवा, परन्तु पंचपांडवोंमें कोई मऱ्या नहीं, तब रथकूं त्यागिके धनुर्वेद और आचार्यकूं धिक्कार करता वनकूं चल्या, तहां व्यासभगवान् ताकूं मिले और यह कह्याः--"हे ब्राह्मण! तू आचार्य और वेदकूं धिक्कार मति कहु यह अर्जुन कृष्ण दोनों नरनारायणरूप हैं. इन्होंने शिवका पूजन बहुत किया है. याते इनकी भक्तिके अधीन हुवा त्रिशूली महादेव, इनके रथके आगे रहै है. याते इन दोनोंके उपरि प्रयोग किये अनेकशस्त्रअस्त्रनकी सामर्थ्यकूं महादेव नाश करि देवैं है" इस भारतप्रसंगते नारायणरूप कृष्णकी विभूति महादेवकी कृपाते उपजी है; यह सिद्ध होवै है. याते विष्णुचरित्रके प्रतिपादक जो ग्रन्थ हैं, सो शिवकी अधिकताकूं प्रतिपादन करैं हैं. काहेते, तिन ग्रंथनमें विष्णु सेव्य कह्या है, सो विष्णु भारतप्रसंगते शिवका भक्त है. याते जिस शिवकी भक्तिते विष्णु सेव्य होवै है; सो शिवही परमसेव्य है. इसरीतिसे अप्पयदीक्षितने सकलवैष्णव ग्रन्थनका प्रतिपाद्य शिव कह्या है.

चौपाई।

शिव सबको प्रतिपाद्य बखान्यो। भक्तनमैं उत्तम हरि मान्यो॥
ईश देव पद सबमैं कहिये। महतसहित इक शिवमैं लहिये४९

टीका--महादेव,महेश शिवकूं कहैं हैं. औरनकूं देव ईश कहैं हैं.

चौपाई।

शिवतैंभिन्नअशिवजोकहिये। तिहिंतजिशिवकल्याणहिलहिये
जलशायी जिहिं नाम बखान्यो। सो जागैयहमिथ्या गान्यो

टीका—कल्याणकूं शिव कहैं हैं. ताते भिन्न अशिव है. ताका यह अर्थ सिद्ध हुवाः—शिवतें भिन्न औरदेवता अशिव कहिये अकल्याणरूप हैं, तिन अकल्याणरूप देवतानकूं त्यागिके कल्याणरूप शिवकूं उपासे.

चौपाई।

विषलखजबसबकूंउपज्योडर। निर्भयकियेसकलगरधरिगर॥
जाको पूत गणेश कहावै। विघ्नजाल तत्काल नशावै ॥ ५१ ॥
कारजमैं कारण गुण होवै। यों शिव विघ्न मूलते खोवै ॥
जन्ममरणदुख विघ्नकहावै। तिहिं समूलशिवध्यान नशावै ५२
सेवनयोग्य सदाशिव एका। जागै सहित समाधि विवेका ॥
तंत्र पाशुपतरीति जु गावै। त्यौं पूजनकरिध्यान लगावै५३
नारदपंचरात्रमत झूठो। यह परिमल परसंग अनूठो ॥
याते शिवसेवा चित लावै। पुरुषारथ जो चहै सु पावै॥५४॥

टीका—नारदपंचरात्रका मत सूत्रभाष्यमें खंडन किया है. ताके अनुसारी रामानुजआदिक नवीनवैष्णवनका मत कल्पतरुकी टीका परिमलमें खंडन किया है.

चौपाई ।

शिवको पूत गणेश बतायो । कारणगुण कारजमैं गायो ॥
सुनि गणेशको पूजक बोल्यो।असाकियकोपासिंहासनडोल्यो
राजन सुन दोनों ये झूठे । वचन सत्य सम कहत अनूठे ॥
शिवको पूत गणेश बतावै । पराधीनता तामैं गावै ॥ ५६ ॥
कहूं प्रसंगसुनहुइक ऐसो। लिख्यो व्यासभगवत मुनि जैसो॥
चढे त्रिपुर मारणकूं सारे। हरि हर सहित देव अधिकारे॥५७॥
नाहिं गणेशको पूजन कीनों। त्रिपुर न रंचहु तिनते छीनों॥
पुनि पछितायमनायगणेशा।त्रिपुरविनाश्योरह्योनलेशा५८॥
भये समर्थ कियो जिहि पूजा।सेवनयोग्य सु इक नहिं दूजा ॥
रामपूत दशरथको जैसे।विघ्नहरण शिवको सुत तैसे ॥ ५९ ॥
व्यास गणेशपुराण वनायो। सबको हेतु गणेश बतायो ॥
हरिहर विधि रविशक्ति समेता । तुंडीतें उपजत सब तेता ६०
करतध्यान जिहिंछन जनमनमैं । नाशत विघ्न प्रधानगननमैं
विघ्नहरणयों जागतनिशिदिन।भक्तिसहितसेवहुतिहिंअनुछन
हेतु गणेश शक्तिको सुनिके।भगतभागवत उचर्यो गुनिके॥
सुन राजनवाणी मम सांची।तीनों सकल कहतयेकांची६२

टीका—भगतभागवत कहिये भगवतीको भगत.

चापाइ ।

सूने देव शक्तिबिन सारे । मृतक देहसम लखि हत्यारे ॥
शक्तिहीन असमर्थ कहावै । सो कैसे कारज उपजावै ॥६३॥

जिनबहु शक्तिउपासन धारी ताते भये सकल अधिकारी ॥
हरि हरसूरगणेशप्रधाना। तिनमैंशक्ति देखियत नाना॥६४ ॥
शक्ति लोकमें भाषत जाकूं। रूप भगवतीको लखि ताकूं॥

टीका--भगवतीके दो रूपहैं:--१ सामान्य और २ विशेष. सब पदार्थनमें अपना कार्य करनेकी जो सामर्थ्यरूप शक्ति. सो भगवतीका सामान्यरूप है; और अष्टभुजादिकसहित मर्ति विशेष रूप है, सामान्यरूप शक्तिके संख्यारहित अनंत अंश हैं. जामें शक्तिके न्यूनअंश होवें सो अल्पशक्ति होवै है; असमर्थ कहिये है. जामें शक्तिके अधिकअंश होवें, सो समर्थ कहिये है. विष्णु, शिवआदिकनमें शक्तिके अंश अधिक हैं, याते अधिक समर्थ कहिये हैं, इसरीतिसे भगवतीका सामान्यरूप जो शक्ति, ताके अंशनकी अधिकतासे विष्णु, शिव, गणेश, सूर्यकी महिमा प्रसिद्ध है. और शक्तिसे रहित होवे तो, जैसे प्राण विना शरीर अमंगलरूप होवै है, तैसे सारे देव हत्यारे कहिये अमंगलरूप होय जावें याते जिस शक्तिकी अधिकतासे देवनकी महिमा प्रसिद्ध है. सो महिमा शक्तिकी है; तिन देवनकी नहीं. विष्णुशिव आदिकनने भगवतीके सामान्यरूप शक्तिकी अधिक उपासना करी है; याते तिनमें शक्तिके अंशअधिकहैं. यह पूर्वग्रंथनमें भगवतीभक्तका अभिप्राय है

जैसे भगवतीके निराकाररूप शक्तिके अनंतअंश हैं, तैसे साकाररूपके भी अनंतअंश हैं. तिन साकारअंशनमें कालीरूप प्रधान है. और माहेश्वरी, वैष्णवी, सौरी, गाणेशी आदिक भी प्रधानअंश

हैं. विष्णुकूं भगवतीकी उपासनाते, वैष्णवी नाम भगवतीके अंशका लाभ. तैसे अन्यदेवनकूं भगवतीके उपासनाते, निज निज माहेश्वरी आदिक अंशनका लाभ हुवा है. तिनमें भी भगवतीके विष्णु शिव दोनों प्रधान भक्त हैं. काहेते, ध्याताकूं ध्येयरूपकी प्राप्ति उपासनाकी परम अवधि है. विष्ण शिवकूं उपासनासे ध्येयरूपकी प्राप्ति हुई है; याते प्रधान उपासक हैं. यह अढाई चौपाईते प्रतिपादन करैं हैः—

चौपाई ।

लखकरौरिमात्रिकागणपुनि। तंत्रग्रंथलखिअंशसकलगुनि६६
काली ताको अंश प्रधाना । माहेश्वरी आदि लखि नाना॥
हरिहरब्रह्मसकलातिहिंध्यावैं।निजनिजअंशकृपातिहिंपावैं६६
ध्येयरूप ध्याता ह्वै जबहीं । सिद्ध उपासन लखिये तबहीं॥
असउपासनाहरिअरुहरकी। नारीमूर्तिधरीतजिनरकी॥६७॥

दोहा ।

अमृत मथनसंपरकमैं, हरि मोहिनी स्वरूप ॥
अर्ध अंग शिवको लसै, देवीरूप अनूप ॥ ६८ ॥

टीका—मथन करिके अमृत प्रगट किया, तब सुर असुरका विवाद मेटनेमें विष्णु असमर्थ हुये; तब अपने उपास्यरूप भगवतीका ऐसा एकाग्रचित्तसे ध्यान किया, जाते आप विष्णु उपास्यरूपकूं प्राप्त हुवा. तारूपके माहात्म्यसे असुर भी ताके अनुकूल

हुये. तैसे, शिवने भी समाधिमें ऐसा भगवतीका ध्यान किया, जाते अर्थविग्रह शिवका उपास्यरूप हुवा. कदाचित् विक्षेपते समाधिका अभाव होवै है; याते सारा विग्रह शिवका उपास्यरूप नहीं. इसरीतिसे सारे देव भगवतीके उपासक हैं. सो उपासना दो रीतिसे कही है:—दक्षिणआम्नायते, और उत्तर आम्नायते. पर्व दक्षिणआम्नाय कह्या; आगे उत्तर आम्नाय कहैं हैं:—

चौपाई ।

भक्त भगवतीके हर हरि हैं । इन सम कौन उपासन करि हैं ॥
तदपि महामाया जो ध्यावै । तुरत सकल पुरुपारथ पावै ६९॥
नहिं साधन जगमैं अस औरा । उपजै भोग मोक्ष इकठौरा॥
भक्त भगवतीको जो जगमैं।भोगै भोग न आवत भगमैं ७०॥
शिवकृत तंत्ररीति यह गाई । भक्तिभगवती अति सुखदाई ॥
पंचमकार न तजिये कबहूं ।जिनहिं सनातन सेवतसवहूं७१॥
कृष्णदेव बलदेव सुज्ञानी । प्रथमा पिवत सदा जों पानी ॥
और प्रधान पुरातन जेते । सेवत सकल मकारहि तेते॥ ७२॥
तिन सेवनकी जो विधि सारी । शिव निजमुखभाषी उपकारी
शिवको वचन धरै जो मनमैं।लहैसुभोग मोक्ष इक तनुमें७३॥
ग्रंथ भागवत व्यास बनायो । उपपुराण काली समझायो ॥
भक्ति भगवतीकी इक गाई । पूजाविधि सगरी समुझाई ७४॥
ध्याता सकल भगवतीके हैं हरि हर सूर गणेश जिते हैं ॥
सकल पिये प्रथमा मतिवारे। पूजत शक्ति मग्न मन सारे७५॥

जगजननी जागै इक देवी। परमानंद लहै तिहिं सेवी॥
सूर्य भक्तभगवतीको यशसुनि।क्रोधसहितबोल्योइहसुनिपुनि
सुन राजन वाणीइक मोरी। भापूं झूठ न शपथ करोरी॥
अतिपापिष्ठनीचमतयाको।श्रवणसनेह सुन्योतैं जाको॥७७
अवगुण जिते बखानत जगमैं।ते गिनयत गुणगण याभगमैं॥
मद्यमलीनहितीरथराखत।शुद्धनामआमिषकोआखत ७८॥
कहत और यों सब विपरीता।शंभु तंत्र सेवी मतिरीता॥
दक्षिण संप्रदाय जो दूजी।यद्यपि श्रेष्ठ अनेक न पूजी॥७९॥
तथापि विन भानू सब अंधे। इन सबके मन जिनमैं वंधे॥
करतभानुसिगरोउजियारो।ताबिनहोततुरतआँधियारो॥८०॥
और प्रकाशक जगमैं जे हैं। अंश सबै सूरजके ते हैं॥
भानुसमानकौनहितकारी।भ्रमतआपपरहितमतिधारी ८१॥
काल अधीन होत सब कारज।ताहित्रिविधभाषतआचारज॥
वर्त्तमान भावीअरु भूता।सूरज क्रिया करत यह सूता॥८२॥
या विधि सकल भानुते उपजैं।भस्म होतसवजबवहकुपिजैं॥
भानुरूप द्वैभाँतिपिछानहु।निराकार साकारहि जानहु॥८३॥
निराकारपरकाश जु कहिये। नामरूप मैं व्यापक लहिये॥
अधिष्ठानसवको सो एका।जगतविवर्त्तहैजिहिंअविवेका॥८४
"अहंभानु"असवृत्तिउदयजब।तामैंप्रगटिविनाशततमसब८

टीका—सूर्यके दो रूप हैंः—निराकारप्रकाश और साकारप्रकाश. तिन दोनोंमें निराकारप्रकाश सारे नामरूपमें व्यापक है. जाकूं वेदांती

भातिशब्दकरिके व्यवहार करैं हैं. सो निराकारप्रकाशरूप जो सूर्यका सामान्यरूप है, सो सारे जगत्का अधिष्ठान है. ताके आज्ञानते जगत्रूपी विवर्त उपजै है.ः सोई निराकारप्रकाश अंतःकरणकी वृत्तिमें, प्रतिबिंबसहित ज्ञान कहिये है. " अहं भानु " ऐसी अंतःकरणकी वृत्ति प्रकाशके प्रतिबिंबसहित होवै, तब अज्ञानकी निवृत्ति द्वारा जगत्की निवृत्ति होवै है.

चौपाई ।

सुनि साकाररूप यह ताको। होय चांदना दिनमें जाको ॥
ताके अंश और बहुतेरे। चंद तारका दीप घनेरे ॥ ८६ ॥
याते द्विविध भानु बतायो। ज्ञेय ध्येयको भेद जनायो ॥
वेदसकलयाहीकूंभाखत।रूपप्रकाशसत्यातिहिं आखत ८७॥

निराकार साकार भेदते भानुके दोरूप हैं. तिनमें निराकाररूप ज्ञेय है, साकाररूप ध्येय है. याहीकूं वेदांतनमें निर्गुण सगुणभेदते, दोप्रकारका ब्रह्म कहैं हैं.

चौपाई

जामैंलेशनतमकोकबही।लखितिहिंजगजनजागतसबही ८८
कबहु न सोवै सो यों जागै। ध्यान करत ताको तम भागै ॥
औरहि जागत भासत सगरे ।राजनजानि झूठतेझगरे॥८९॥
ऐसे पांच उपासक बोले । निजगुण अवगुण परके खोले ॥
पंडित और अनेकजु आये।भिन्नाभिन्ननिजमतसमझाये९०॥

टीका--जैसे पांचउपासक परस्पर विरुद्ध वचन बोले तैसे अनेकपंडित निज निज बुद्धिके अनुसार विरुद्धही बोले जैसे पांचोंका परस्पर विरुद्धमत है, तैसे स्मार्त जो पंडित, पांचों देवनमें भेदबुद्धि करे नहीं, ताका मतभी इन सबते विरुद्ध है. काहेते,वैष्णवका यह मत है:--विष्णुसमान और देव नहीं, सारे विष्णुके भक्त हैं. और विष्णुके जो राम कृष्ण नारायण आदिक नाम हैं, तिनके समान जो अन्यदेवनके नामकूं जाने, सो नामापराधी है. ताकूं रामादिक नाम उच्चारणका यथार्थफल होवे नहीं. तैसे शैवमतमें, शिवसमान अन्य देव नहीं; और शिवके नामउच्चारणका फल विष्णुनामउच्चारणते होवे नहीं इसरीतिसे सर्वके मतमें अपने अपने उपास्यदेवके समान अन्यदेव नहीं. और स्मार्तमतमें सारे देव सम हैं याते ताके मतमेंभी पांचोंबातें विरुद्ध हैं. तैसे,

सांख्य, पातंजल, न्याय, वैशेषिक, पूर्वमीमांसा, उत्तरमीमांसा; इन षट्शास्त्रनका मतभी परस्पर विरुद्ध है. काहेते, सांख्यशास्त्रमें ईश्वरका अंगीकार नहीं। योगमें निरपेक्ष प्रकृतिपुरुषकेविवेकज्ञानते मोक्ष मानी है और पातंजलशास्त्रमें ईश्वरका अंगीकार, समाधिते मोक्ष मानी है; यह विरोध है. न्यायमतमें चार प्रमाण,और वैशेषिकमतमें दोप्रमाण यह विरोध है. तैसे न्यायवैशेषिकका औरभी आपसमें बहुत विरोध है, जिज्ञासुकूं अपेक्षित नहीं, याते लिखा नहीं. तैसे पूर्वमीमांसामें ईश्वरका अंगीकार नहीं. मोक्षरूप नित्यसुखका अंगीकार नहीं. किंतु कर्मजन्य विषयसुखही पुरुषार्थ है. और उत्तरमी-

मांसामें, ईश्वरका, मोक्षका अंगीकार; विषयसुख पुरुषार्थ नहीं. और उत्तरमीमांसाका मत या ग्रंथमें स्पष्टही है. सर्वशास्त्रनका मत याते विरुद्ध है. औरनमें भेदवाद है; यामें भेदका खंडन और अभेदनका प्रतिपादन है. इस रीतिसे सकलशास्त्रनके सिद्धान्त परस्पर विरुद्ध हैं.

चौपाई ।

वचन विरुद्ध सुने जब राजा। यह संशय उपज्यो तिहिं ताजा॥
इनमैं कौन सत्य बुध भाखत। युक्ति प्रमाण सकल सम आखत ९१
संशयशोकदुखित यों जियमैं। को उपास्य यह लख्यो नाहियमैं॥
चिंता हृदय हुई यह जाकूं। निज संदेह सुनाऊं काकूं॥ ९२॥
यों शास्त्रनिपुण पंडि जग जेते। सुने विरुद्ध बकत यह तेते॥
यों चिंतत बहु काल भयो जब। तर्कदृष्टि तिहिं आय मिल्यो तब ९३

दोहा ।

मिले परस्परते उभै, पुत्र पिता जिहिं रीति
करि प्रणाम आशिष दुहूं, आसन लहे सप्रीति॥ ९४॥
निजपितु चितासहित लखि, सुत बोल्यो यह बात।
को चिंता चित रावरे, मुख प्रसन्न नहिं तात॥ ९५॥

चौपाई ।

शुभसंतति सुतकी सुनि बानी। तिहिं भाषी निज सकल कहानी॥
चितचिंताको हेतु सुनायो। को उपास्य यह तत्त्व न पायो॥ ९६॥

तर्कदृष्टि सुनि पितुके बैना। बोल्यो शुभसंतति सुख दैना॥
कारणरूप उपास्यपिछानहु।ताकेनामअनंतहिजानहु॥९७॥
कारजरूप तुच्छ लखि तजिये। यहसिद्धांतवेदकोभजिये॥
रचे व्यास इतिहास पुराना।तिनमैंयहीमतोनहिंनाना॥९८॥
तिनमैं मर्म न लखत जु पंडित। करतपरस्परमततैंखंडित॥
नीलकंठ पंडित बुधनीको।कियोग्रंथभारतकोटीको॥९९॥
तिनयहप्रथमहिलिख्योप्रसंगा। श्रुतिसिद्धांतकह्योजोचंगा॥

टीका—यद्यपि सकल पुराणका कर्त्ता एक व्यास है; ताने स्कंदपुराणमें शिवकूं स्वतंत्रतादिक ईश्वरधर्म कहे; और अन्यदेवनकूं शिवकृपाते सारी विभूतिकी प्राप्ति कही. याते जीवधर्म कहे तैसे विष्णुपुराण पद्मपुराणमें, विष्णुकूं ईश्वरता कही तैसे किसीकूं पुराणमें, किसकूं उपराणमें, विष्णुशिवते भिन्न जो गणेशादिक हैं, तिनकूं ईश्वरता कही. इसरीतिसे व्यासवाक्यनमें विरोध प्रतीत होवै है. ताका,

यह समाधान करैं हैं:—सारे ही ईश्वर हैं. जा प्रकरणमें अन्यदेवकी निंदा है, ताकी निंदाकरिके, तिसकी उपासनात्यागमें, व्यासका अभिप्राय नहीं; किंतु वैष्णवपुराणमें शिवादिकनकी निंदा विष्णुकी स्तुति करिके, विष्णकी उपासनामें प्रवृत्तिकी हेतु है. तैसे शिवपुराणमें विष्णु आदिकनकी निंदा भी, तिनकी उपासनाके त्यागअर्थ नहीं; किंतु तिनकी निंदा, शिवकी उपासनामें प्रवृत्तिके अर्थ है. जो एकप्रकरणमें अन्यकी निंदा

त्यागवास्ते होवै, तो सर्वकी उपासनाका त्याग होवेगा याते अन्यकी निंदा एककी स्तुतिके अर्थ है, त्याग अर्थ नहीं.

दृष्टांतः—वेदमें अग्निहोत्रके दो काल कहे हैं. एक तो सूर्य उदयसे प्रथम, और दूसरा सूर्य उदयते अनंतरकाल कह्या है. तहां उदयकालके प्रसंगमें अनुदयकालकी निंदा करी है; और अनुदय-कालके प्रसंगमें उदयकालकी निंदा करी है. तहां निंदाका तात्पर्य त्यागमें होवे तो, दोनोंकालमें होमका त्याग होवेगा और नित्य-कर्मका त्याग संभवै नहीं; याते उदयकालकी स्तुतिवास्ते, अनुदय कालकी निंदा है. और अनुदयकालकी स्तुतिवास्ते उदयकालकी निंदा है. तैसे एक देवकी उपासनाके प्रसंगमें अन्यकी निंदाका, एककी स्तुतिमें तात्पर्य है, अन्यकी निंदामें तात्पर्य नहीं जैसे शाखाभेदते, कोई उदयकालमें होम करैं हैं, कोई अनुदयकालमें करैं हैं; फल दोनोंकूं समान होवै है. तैसे,

इच्छाभेदते पांचोंदेवनमें जाकी उपासनाकरै, तिन सबते ब्रह्मलोककी प्राप्ति होवै है. तहां भोग भोगीके विदेहमोक्ष होवै है. यद्यपि विष्णुआदिकनकी उपासनाते; वैकुंठलोकादिकनकी प्राप्ति पुराणमें कही है; ब्रह्मलोककी नहीं; तथापि उत्तमउपासक विदे-हमुक्तिके अधिकारी देवयानमार्गते सारे ब्रह्मलोककूं ही जावैं हैं. परंतु एक ही ब्रह्मलोक वैष्णवउपासककूं वैकुंठरूप प्रतीत होवै है; और लोकवासी सारे तिसकूं चतुर्भुज पार्षदरूप प्रतीत होवैं हैं और आप भी चतुर्भुजमूर्ति होवै है तैसे. शैवउपासककूं ब्रह्मलो-

क ही, शिवलोक प्रतीत होवै है. तिसलोकवासी सारे त्रिनेत्रमूर्ति अपनेसहित प्रतीत होवैं हैं. इसरीतिसे सर्वउपासककूं ब्रह्मलोक ही अपने उपास्यका लोक प्रतीत होवै है. काहेते, यह नियम है—देवयानमार्गविना अन्यमार्गते जो जावैं हैं, तिनका संसारमें आगमन होवै है; और देवयानमार्ग एक ब्रह्मलोकका है; याते विदेहमोक्षके योग्य उपासक, सारे ब्रह्मलोककूं जावैं हैं. तिस ब्रह्मलोकमें ऐसी अद्भुतमहिमा है:—उपासककी इच्छाके अनुसार सारीसामग्री सहित, वह ब्रह्मलोकही तिनकं प्रतीत होवै है; इसरीतिसे पांचोंदेवनके उपासकनकूं समफल होवै है. याकेविषे यह शंका होवै है:—

पांचोंदेवनके नाम रूप भिन्न भिन्न कहैं हैं, और ईश्वर एक है; एक ईश्वरके नानारूप संभवैं नहीं. ताका यह समाधान है:—परमार्थसे नामरूप कोई परमात्मामें है नहीं. मंदबुद्धिकूं उपासनावास्ते, नामरूपरहित परमात्माके मायाकृत कल्पित नामरूप कहे हैं. याते एकपरमात्मामें मायाकृत कल्पितनामरूप नाना संभवैं हैं. इसरीतिसे सर्व पुराणवाक्यका विरोध दूरि होवै है. और—

पुराणवाक्यनमें विरोधशंकाका मुख्यसमाधान तो यह है—विष्णु, शिव, गणेश, देवी, सूर्य, इनते आदिलेके जितने एकएकके नाम हैं; सो सारे कारणब्रह्मके नाम हैं. और कार्यब्रह्मके भी सो सारे नाम हैं. जैसे मायाविशिष्ट कारणकूं ब्रह्म कहैं हैं; और हिरण्यगर्भ कार्य है, ताकूं भी ब्रह्म कहैं हैं. इसरीतिसे कारणब्रह्मकूं विष्णु, शिव, गणेश, देवी, सूर्य पद बोधन करैं हैं. और कार्यब्रह्मकूं भी

पांचोंपद बोधन करैं हैं ऐसे पांचोंपदनके जो नारायण, नीलकंठ विघ्नेश, शक्ति, भानु इत्यादिक अनंतपर्याय हैं:--सो सारे कारणब्रह्म और कार्यब्रह्म दोनोंकूं बोधन करैं हैं. कहूं कारणब्रह्मकूं, कहूं कार्यब्रह्मकूं, प्रसंगते बोधन करैं हैं. जैसे सैंधवपद, अश्व, लवण, दोनोंकूं बोधन करै है. भोजन प्रसंगमें, सैंधवपद लवणकूं बोधन करै है. और गमनप्रसंगमें सैंधवपद अश्वकूं बोधन करै है. वैष्णवपुराणमें विष्णु नारायणादिक पद, कारणब्रह्मके बोधक हैं; शिव, गणेश, सूर्यादिकपद, कार्यब्रह्मके बोधक हैं, याते,

वैष्णवग्रंथनमें विणुकी स्तुति, और शिवादिकनकी निंदाते व्यासका यह अभिप्राय है:--कारणब्रह्म उपास्य है और कार्यब्रह्म उपास्य नहीं. तैसे स्कंदपुराणादिक शैवग्रंथनमें शिवमहेशादिकपद कारणब्रह्मके बोधक हैं,और विष्णु गणेश देवी सूर्यादिकपद कार्यब्रह्मके बोधक हैं. याते तिनमें भी कारणब्रह्मकी स्तुति और कार्यब्रह्मकी निंदा है. तैसे गणेशपुराणमें गणेशपद, कारणब्रह्मका वाचक, और विष्णुशिवादिकपद कार्यब्रह्मके वाचक हैं. याते कारणकी स्तुति, कार्यकी निंदा है तैसे कालीपुराणमें काली, देवी आदिकपद, कारणब्रह्मके बोधक; और विष्णु शिव गणेश सूर्यादिकपद कार्यब्रह्मके बोधक; याते कालीपदबोध्य कारणकी स्तुति, और विष्णुशिवादिकपदबोध्य कार्यब्रह्मकी निंदा है. तैसे सौरपुराणमें, सूर्यभानुपदबोध्य कारण

ब्रह्म है ताकी स्तुति; और अन्यपदबोध्य कार्यकी निंदा हैः— इस रीतिसे सकलपुराणमें, कार्य कारणकी संज्ञारूप संकेतका तो भेद है; उपादेय हेय जो अर्थ ताका भेद नहीं. सकलपुराणमें, कारण ब्रह्मकी उपासना उपादेय है; और कार्यकी उपासना हेय है. याते सारे पुराण एककारणब्रह्मकूं उपास्यता बोधन करैं हैं. तिनका आपसमें विरोध नहीं.

यद्यपि चतुर्भुज, त्रिनेत्र, अष्टभुजादिकमूर्ति मायाके परिणाम हैं, चेतनके विवर्त हैं याते कार्य हैं, और तिनकी भी उपासना कही है. तथापि तिन चतुर्भुजादिक मर्तियोंका जो माया विशिष्टकारण है, तासे विचार कियेते भेद नहीं. याते तिन अकारणोंको बाधिके, कारणरूपते तिनकी उपासनामें तात्पर्य है काहेते आकार कार्य है, याते तुच्छ है, और कारण सत्य है. और जाकी मंदप्रज्ञा आकारमें ही स्थित होवै, सो शास्त्रउक्त आकारकी ही उपासना करै; तासे भी प्रज्ञा निश्चल होयके कारणब्रह्मकी उपासनामें स्थिति होवै है.

कारणब्रह्मकी उपासना इसरीतिसे कही हैः—ब्रह्म जगत्का कारण है; सत्य संकल्प है, सर्वज्ञ है सत्यस्वतंत्र है, सर्वका प्रेरक है, कृपालु है; ऐसे ईश्वरके धर्मनकूं चिंतन करै मूर्त्तिचिंतनमें शास्त्रका तात्पर्य नहीं और अनेक मूर्ति जो शास्त्रमें लिखी हैं;सो उपासनाके निमित्त नहीं; किंतु सारी मूर्ति कारणब्रह्मकी उपलक्षण हैं. जो वस्तु

जाके एक देशमें होवै और कदाचित् होवै और व्यावर्तक होवै, सो, उपलक्षण कहिये है. जैसे "काकवाला देवदत्तका गृह है." या वाक्यमें देवदत्तके गृहका काक उपलक्षण है. काहेते, गृहके एकदेशमें काक होवै है; और कदाचित होवै है. सर्वदा नहीं; और अन्यगृहते देवदत्तके गृहका व्यावर्तक है. तैसे जगत्का कारण ब्रह्म है; ताके एकदेशमें मूर्ति होवै है और कदाचित होवै. और चतुर्भुजादिक मूर्ति कारणब्रह्मविषेही होवैं हैं;अन्यमें नहीं,याते व्यावर्तक होनेते, उपलक्षण है, उपलक्षणका यह प्रयोजन होवै है:—विशेष्यवस्तुके स्वरूपका ज्ञान होवै. जैसे काकते देवदत्तके गृहका ज्ञान होवै अन्य प्रयोजन काकते नहीं. तैसे चतुर्भुजादिक अकारणते, निराकार कारणब्रह्मका ज्ञान ही उपासनाके निमित्त मूर्तिप्रतिपादनका प्रयोजन है; अन्य नहीं. और—

मंदप्रज्ञावाले शास्त्र अभिप्रायकूं समझे विना,तिन आकारनमें आग्रह करैं हैं. और श्याल सारमेयन्यायते परस्पर कलह करैं हैं. स्त्रीके भाईकूं श्याल कहैं हैं. कुक्कुरकूं सारमेय कहैं हैं. दृष्टांतकूं न्याय कहैं हैं. किसीके सालेका नाम उत्फालक था, और सालेके शत्रुका नाम धावक था. तिस पुरुषके गृहके कुक्कुरका नाम धावक, और दूसरे गृहके कुक्कुरका नाम उत्फालक था. तहां तिस पुरुषकी स्त्री गृहविषे प्रथम आई, तब दोनों कुक्कुर आपसमें हमेस लडैं, तहां स्त्रीका पति सुसर आदिक उत्फालककूं गाली देवें, और अपने

धावककी बड़ाई करै तब ता स्त्रीकूं यह भ्रांति हुईः—मेरे भाईकूं गाली देवैं, ताके शत्रुकी बड़ाई करैं हैं. तासे दूषित होयके भर्तासे क्लेश करती हुई. जैसे तिनके अभिप्राय जाने बिना, समानसंज्ञाते भ्रमकारिके स्त्रीने क्लेश किया तैसे वैष्णवग्रंथनमें शिवादिक नामते कार्यब्रह्मकी निंदा करी है; इस अभिप्रायकूं नहीं जानिके शैवादिक दुःखित होवैं हैं. और विष्णुनामते कार्यकी निंदाकूं नहीं जानिके वैष्णव दुःखित होवैं और सकलपुराणनका यह अभिप्राय हैः—कारणब्रह्मउपास्य है; कार्यब्रह्म त्याज्य है. मायाविशिष्टचेतन कारण ब्रह्म कहिये है. मायाकृत कार्यविशिष्टचेतन कार्यब्रह्म कहिये है. यही अर्थ भारतकी टीकाके आरंभमें लिखा है. और सारे वेदांतनका यही सिद्धांत है.

चौपाई।

शुभसंतति सुनि सुतके बैना। उपज्यो जिसमैं किंचित् चैना
पुनितिनप्रश्नकियोनिजपूतहि। शास्त्र परस्पर कहत असूतहि

टीका—पुराणमें विरोधशंकाके नाशते; चैन कहिये सुख हुवा-और पट्शास्त्रनकी परस्पर बिरोध शंका मिटी नहीं यातेकिंचित चैन हुवा; सर्वथा नहीं. असूत कहिये विरुद्ध कहैं हैं.

चौपाई।

तिनमें सत्य कौन सो कहिये। जाको अर्थ बुद्धिमैं लहिये॥
तर्कदृष्टिसुनिनिजापितुबानी बोल्योवचनसुपरमप्रमानी १०२

उत्तरमीमांसा उपदेशा । वेदविरुद्ध न जामैंलेशा ॥ १०३॥
शास्त्रपंच ते वेदविरुद्धं । याते जानहु तिनहि अशुद्धं ॥
किंचित् अंश वेदअनुसारी । लखि वहु ग्रहत मंदअधिकारी

टीका–यद्यपि षट्शास्त्रनके कर्ता सर्वज्ञ कहे हैं. सांख्यका कर्ता कपिल, पातंजलका कर्ता पतंजलि शेषका अवतार; न्यायका कर्ता गौतम; वैशेषिकशास्त्रका कर्ता कणाद, पूर्वमीमांसाका कर्ता जैमिनि, उत्तरमीमांसाका कर्ता व्यास, इन सबनका माहात्म्य प्रसिद्ध है, याते इनके वचनरूप शास्त्रभी सारे समानप्रमाण चाहियें तथापि सर्व वाक्यनमें प्रबलप्रमाण वेदवाक्य हैं. काहेते, वेदका कर्ता सर्वज्ञ ईश्वर है. ताकेविषे भ्रम संदेह विप्रलिप्सादोष संभवै नहीं. इन शास्त्रनके कर्ता जीव हैं तिन विषे भ्रम आदिक दोषनका संभव है. यद्यपि शास्त्रकार भी सर्वज्ञ कहे हैं. तथापि तिनकूं सर्वज्ञता योगमाहात्म्यसे हुई है. याते युंजानयोगी हुये हैं. और ईश्वरकूं सर्वज्ञता स्वभावसिद्ध है. यातें युक्तयोगी है. जाकूं चिंतन किये पदार्थनका ज्ञान होय. सो युंजानयोगी कहियै है. जाकूं सर्वदा एकरस सारे पदार्थ अपरोक्ष प्रतीत होवें सो युक्तयोगी कहिये है. ऐसा ईश्वर है. युक्तयोगीकृत वेदवचन प्रबल, और यंजानयोगी कृत शास्त्रवचन दुर्बल हैं. याते–

वेदअनुसारीशास्त्र प्रमाण. और वेदविरुद्ध अप्रमाण पांचशास्त्र जैसे वेदविरुद्ध हैं. तैसे शारीरक आदिक ग्रंथनमें स्पष्ट है. और

उत्तरमीमांसा किसी अंशमें वेदविरुद्ध नहीं. याते प्रमाण है. और शास्त्र भी किसी अंशमें वेदके अनुसारी देखिके मंदबुद्धि तिनमें विश्वास करें हैं. परंतु बहुतअंशमें वेदविरुद्ध हैं याते त्याज्यहैं किसी अंशमें वेद अनुसारी होनेते उपादेय होवें तो जैनशास्त्र भी अहिंसा अंशमें वेद अनुसारी है. उपादेय हुआ चाहिये और त्याज्य है उपादेय नहीं; यद्यपि सुगत ईश्वरका अवतार है. जाकूं बुद्ध कहैं हैं.ताके वचन भी वेद समान प्रमाण चाहियें तथापि बुद्ध विप्रलिप्सा निमित्तते हुआ है, याते ताके वचन सर्वथा, अप्रमाण हैं; (वंचनकी इच्छा कूं विप्रलिप्सा कहैं हैं, जाकूं बहकावनेकी इच्छा कहैं हैं) याते सर्व अंशमें वेद अनुसारी उत्तरमीमांसा ही सर्वथा मुमुक्षुकूं उपादेयहै यद्यपि उत्तरमीमांसा व्यासकृत सूत्ररूप है, ताका व्याख्यान भी अनेक पुरुषोंने नानारीतिसे किया है. तथापि पूज्यचरणशंकरकृत व्याख्यान ही वेदानुसारी है. और नहीं; यह पंचमतरंगमें प्रतिपादनकरी है. याते और पंच. शास्त्र अप्रमाण हैं. और–

जो इसतरंगमें पूर्व सारेशास्त्र मोक्षउपयोगी कहे, सो तर्कदृष्टि के सारग्राही विवेकते कहे. जैसे किसीका शत्रु तरवारि मारै, तासे रुधिर निकासिके, दैवगतिसे रोगनिवृत्ति होय जावै; तब सारग्राही पुरुष तरवारि मारनेका उपकार मानि लेवे; तैसे अन्यशास्त्रनसे भी किसीरीतिसे अंतःकरणकी शुद्धि, वा निश्चलता हुयेते पुरुष निवृत्त होयके, वेदअनुसार निश्चय करै, तो मोक्ष होवै है. सर्वथा तिनहींमें

आग्रह करै तो, अंधगोलांगूलन्यायते अनर्थकूं प्राप्त होवै है. याते सकलशास्त्र त्यागिके अद्वैतव्याख्यानरीतिसे उत्तरमीमांसा उपादेय है.

अंध गोलांगून्याय यह है:—किसी धनीके भूषणयुक्त पुत्रकूं चोर लेगये, वनमें भूषण ले ताके नेत्र फोडिके छोड़गये, तब ता रुदन करते बालककूं कोई निर्दय वंचक बलउन्मत्त बलीवर्द की लांगूल पकड़ाय देवे और यह कहै:—तू इसका लांगूल मत छोडियो तेरे ग्राममें यह पहुंचाय देवेगा दुःखी बालक ताके वचनमें विश्वास करिके दुःख अनुभव करिके नष्ट होवै है. तैसे विषय रूप चोर विवेकरूप नेत्रको फोडिके संसार वनमें गेरै है. तहां भेदवादी निर्दयवंचक अन्यशास्त्रनके सिद्धांतमें आग्रह करवावैं हैं; यह कहैं हैं:—हमारा उपदेश ही तेरेकूं परमसुख प्राप्तिका हेतु होवेगा ताकूं छोडियो मति तिनके वाक्यनमें विश्वास करिके पुरुषार्थसुखरहित होवै है; और जन्ममरणरूप महादुःखकूं अनुभव करै है. याते अन्यशास्त्र त्याज्य हैं.

दोहा।

तर्कदृष्टिके वचन सुनि, शुभसंतति तिहिं तात।
संशय शोक नश्यो सकल, लह्यो हिये कुशलात॥ १०५॥
कारणब्रह्म उपासना, करी बहुत चित लाय।
तर्कदृष्टि निजलखिगुरू राजसमाज चढाय॥ १०६॥

टीका—यद्यपि तर्कदृष्टि पुत्र था, तथापि उपदेश उत्तम कन्या याते गुरुपदवीकूं प्राप्त हुवा. यह ब्रह्मविद्याका माहात्म्य है.

दोहा।

कछू व्यतीत्यो काल तब, तजि राजा निजप्रान।
ब्रह्मलोकमें सो गयो, मुनि जहँ जात सध्यान ॥ १०७ ॥

टीका—राजाके मरनका देश, काल कहा नहीं, ताकायह अभिप्राय है; उपासकके मरणमें देश कालकी अपेक्षा नहीं, दिनमें मरे अथवा रात्रिमें, दक्षिणायनमें अथवा उत्तरायणमें पवित्र भूमिमें अथवा अपवित्रमें, सर्वथा उपासनाके बलते देवयानमार्ग द्वारा ब्रह्मलोककी प्राप्ति होवे है, और अदृष्टिके प्रसंगमें जो पूर्व देश कालकी अपेक्षा कही सो योगसहित उपासकको कही है केवल ईश्वरशरणउपासककूं देशकालकी अपेक्षा नहीं, यह अर्थ सूत्रकार भाष्यकारने प्रतिपादन किया है.

दोहा।

राजकाज सब तब कियो तर्कदृष्टि हुसियार।
लग्यो न रंचक रंग तिहिं, लह्यो ब्रह्म निरधार ॥ १०८॥
अंत भयो प्रारब्ध को, पायो निश्चल गेह।
आतम परमातम मिल्यो, देह खेहमें छेह ॥ १०९ ॥

टीका—देहका खेह कहिये, राखमें छेह कहिये अंत; आत्मा कहिये, कूटस्थसाक्षी; ताका परमात्मासे अभेद.

यद्यपि कूटस्थका परमात्मासे सदा अभेद है; तथापि उपाधिकृत भेद है. उपाधिके लयते उपाधिकृतभेदका अभाव होवै है. परमात्मासे अभेद कह्या ताका यह अभिप्राय है:—विदेहमुक्तिमें ईश्वरते अभेद होवै है, शुद्धचेतनब्रह्मसे नहीं यह वार्ता शारीरकभाष्यके चतुर्थअध्यायमें प्रतिपादन करी है. तहां यह प्रसंग है:—विदेहमुक्तिमें सत्यसंकल्पादिकरूपकी प्राप्ति जैमिनिके मतमें कही है औडुलोमिके मतमें सत्यसंकल्पादिकनका अभाव कहा है और सिद्धांत मतमें सत्यसंकल्पादिकनके भाव अभाव दोनों कहे हैं, ताका यह अभिप्राय है:—ईश्वरते अभेद होवै है, ईश्वरके सत्यसंकल्पादिक मुक्तमें, अन्य जीवों करि व्यवहार करिये है. सो ईश्वर परमार्थदृष्टिते शुद्ध है, ताके विषे कोई गुण है नहीं; किंतु निर्गुण है याते सत्यसंकल्पादिकनका अभाव है यद्यपि संसारदशाविषे भी जीव परमार्थसे निर्गुण है, शुद्ध है; तथापि जीवकूं संसारदशामें, अविद्यासे कर्तापना भोक्तापना प्रतीत होवै है. ईश्वरकूं कभी भी आत्मामें अथवा अन्यमें संसार प्रतीत होवै नहीं. याते सदा असंग निर्गुण शुद्ध है याते ईश्वरतें जो अभेद है, सोई शुद्धसे अभेद नहीं है, ईश्वरते अभेदकूं शुद्धब्रह्मसे अभेद नहीं मानैं, तो ईश्वरकूं शुद्धब्रह्मकी प्राप्ति कभी भी होवे नहीं. काहेते, जीवकी न्याईं; ईश्वरकूं उपदेशजन्य ज्ञान, और विदेह मोक्ष तो कभी होवे नहीं; सदा प्राप्त जो ताका रूप सो शुद्ध नहीं. याते जीवते भी न्यून ईश्वर सदाबद्ध है, यह सिद्ध होवेगा. याते यह मानना योग्य है:—ईश्वरकूं आवरण नहीं. याते उपदेशज्ञानकी अपेक्षा नही. आवरणके

अभावते भ्रांति नहीं;याते नित्यसर्वज्ञ है. नित्य मुक्त है माया और ताका कार्य आत्मामें प्रतीत होवै नहीं; याते सदा असंग है; याहीते शुद्ध है. इस रीतिसे ईश्वरते ही शुद्धचेतनसे अभेद है. और दृष्टांतसे भीईश्वरते ही अभेद सिद्ध होवै है. जैसे मठमें घटका अभाव होवै तो मठाकाशमें घटाकाशका लय होवै है; महाकाशमें नहीं. तैसे विद्वान्‌का शरीर ईश्वरकृत ब्रह्मांडमें नष्ट होवै है; औरब्रह्मांडसारा ईश्वरशरीर मायाके अंतर्भूत है. विद्वान्‌का आत्मा विदेहमोक्षमें ब्रह्मांडके बाहरि गमन करे नहीं, याते ईश्वरते अभेद होवै है. परंतु जैसैं मठाकाशसे घटाकाशका अभेद हुवा. सो मठाकाशमहाकाश रूपही है. तैसे ईश्वरते अभेदहोवै है, सो ईश्वर शुद्धब्रह्म ही है, याते शुद्धब्रह्मकी प्राप्ति होवै है.

दोहा।

यह विचारसागर कियो, जासैं रत्न अनेक।
गोप्य वेदसिद्धांततैं, प्रगट लहत सविवेक ॥ ११० ॥
सांख्यन्यायमें श्रम कियो, पढ़ि व्याकरण अशेष।
पढ़े ग्रंथ अद्वैतके, रह्यो न एकहु शेष ॥ १११ ॥
कठिन जु और निबंध हैं, जिनमैं मतके भेद।
श्रमते अवगाहन किये, निश्चलदास सवेद ॥ ११२ ॥
तिन यह भाषाग्रंथ किय, रंच न उपजी लाज।
तामैं यह इक हेतु है, दया धर्म शिरताज ॥ ११३ ॥

बिन व्याकरण न पढ़ि सकै, ग्रंथसंसकृत मंद ।
पढ़ै याहि अनयासही, लहै सु परमानंद ॥ ११४ ॥
दिल्लीते पश्चिम दिशा, कोश अठारह गाम ।
तामैं यह पूरो भयो, किहडौली तिहिं नाम ॥ ११५ ॥
ज्ञानी मुक्ति विदेहमैं, जासों होय अभेद ।
दादू आद्रूप सो, जाहि बखानत वेद ॥ ११६ ॥
नामरूप व्यभिचारमैं, अनुगत एक अनूप ।
दादूपदको लक्ष्य है, अस्ति भाति प्रियरूप ॥ ११७ ॥

इति श्रीविचारसागरे जीवन्मुक्तिविदेहमुक्तिवर्णनं
नाम सप्तमस्तरंगः समाप्तः ॥ ७ ॥
समाप्तोऽयं विचारसागरो ग्रंथः

पुस्तक मिलनेका ठिकाना--
खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस खेतवाडी-बंबई.